58▲

॥ श्रीहरिः ॥

अमृत-कण

भगवान् श्रीकृष्णके चरण-चिह्न

हनुमानप्रसाद पोद्दार

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

॥ श्रीहरिः ॥

अमृत-कण

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यत्

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके लेखोंका सुन्दर संग्रह आपकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। ये लेख समय-समयपर 'कल्याण'में प्रकाशित हुए हैं। इस संग्रहमें कतिपय स्फुट विषयोंके साथ-साथ आध्यात्मिक साधन-सम्बन्धी अतिशय उपादेय ठोस सामग्रीका भी समावेश हुआ है।

व्यक्तिके गुणोंका प्रभाव सर्वोपरि होता है और वह अमोघ होता है। श्रीभाईजी अध्यात्म-साधनकी उस परमोच्च स्थितिमें पहुँच गये थे, जहाँ पहुँचे हुए व्यक्तिके जीवनसे जगत्का, परमार्थके पथपर बढ़ते हुए जिज्ञासुओं एवं साधकोंका मंगल होता है। हमारा विश्वास है कि जो व्यक्ति इन लेखोंको मननपूर्वक पढ़ेंगे एवं अपने जीवनमें उन बातोंको उतारनेका प्रयत्न करेंगे, उनको व्यवहार एवं परमार्थमें निश्चय ही विशेष सफलता प्राप्त होगी।

—**प्रकाशक**

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अमृत-कण

भारतीय वर्ण-धर्मका स्वरूप और महत्त्व

सनातनधर्मकी वर्ण-विभाग-व्यवस्था समाज-शरीरकी स्वस्थता तथा सर्वांगीण उन्नतिके लिये अत्यन्त ही उपयोगी और परमावश्यक है तथा यह मानवरचित है भी नहीं। वर्णधर्मकी रचना भगवान्‌के द्वारा हुई है। स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

(गीता ४। १३)

'गुण और कर्मोंके विभागसे चारों वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा ही सृजन किये हुए हैं।' भारतके राग-द्वेष-शून्य सर्वसुहृद् दिव्यदृष्टिप्राप्त, त्यागी-त्रिकालज्ञ महर्षियोंने भगवान्‌के द्वारा सृष्ट इस सत्यका प्रत्यक्ष किया और इसी सत्यपर समाजका निर्माण करके उसे सुव्यवस्थित, शान्ति, शीलमय, सर्वोदय-प्रयासी, सुखी, कर्म-प्रवण, स्वार्थदृष्टिशून्य और सुरक्षित बना दिया। इस वर्ण-विभाग-रचनाका कहीं कोई पक्षपात नहीं है। न किसीके लिये रियायत है, न किसीके स्वत्वका अपहरण है। सबका कल्याण ही इसका लक्ष्य है। सामाजिक सुव्यवस्थाके लिये मनुष्यके चार विभाग सभी देशोंमें और सभी कालोंमें आवश्यक हैं तथा सभीमें किसी-न-किसी प्रकारसे ये चार भाग रहे हैं एवं रहते भी हैं। अवश्य ही सर्वसुखाभिलाषी ऋषियोंके देश—इस भारतवर्षमें ये जिस सुव्यवस्थितरूपमें रहे, वैसे कहीं नहीं रहे।

समाजमें धर्मकी स्थापना और रक्षाके लिये एवं समाजको सुखी बनाये रखनेके लिये जहाँ समाजकी जीवन-पद्धतिमें कोई बाधा उपस्थित हो, वहाँ प्रलयके द्वारा उस बाधाको दूर करनेके लिये, कर्मप्रवाहके भीषण भँवरको मिटानेके लिये, उलझनोंको सुलझानेके लिये और धर्मसंकट उपस्थित होनेपर समुचित व्यवस्था देनेके लिये परिष्कृत और निर्मल मस्तिष्ककी आवश्यकता है। धर्मकी और धर्ममें स्थित समाजकी भौतिक आक्रमणोंसे रक्षा करनेके लिये बाहुबलकी आवश्यकता है। मस्तिष्क और बाहुका यथायोग्य रीतिसे पोषण करनेके लिये धनकी और अन्नकी आवश्यकता है एवं उपर्युक्त कर्मोंको यथायोग्य सम्पन्न करानेके लिये शारीरिक परिश्रमकी आवश्यकता है।

इसीलिये समाज-शरीरका मस्तिष्क ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, ऊरु (जाँघ) वैश्य है और चरण शूद्र है। चारों एक ही समाज-शरीरके चार अनिवार्य आवश्यक अंग हैं और एक-दूसरेकी सस्नेह और सजग सहायतापर सुरक्षित और जीवित हैं। घृणा और अपमानकी तो बात ही क्या है, इनमेंसे किसीकी भी तनिक भी अवहेलना नहीं की जा सकती। न इनमें कहीं कोई नीच-ऊँचकी ही कल्पना है। अपने-अपने स्थान और कार्यके अनुसार चारों ही बड़े हैं। चारोंका ही महत्त्व और गौरवपूर्ण स्थान है। एकका अभाव सबको अपंग बना देता है। ब्राह्मण ज्ञानबलसे, क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य धनबलसे और शूद्र जनबल या श्रमबलसे समाजको जीवनदान देता है। चारोंकी ही पूर्ण उपयोगिता है। इनकी उत्पत्ति भी एक ही भगवान्‌के शरीरसे हुई है—ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के शरीरसे हुई है—ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के श्रीमुखसे, क्षत्रियकी बाहुसे, वैश्यकी ऊरुसे और शूद्रकी चरणोंसे हुई है।

मानते हैं। वह सबका गुरु और पथप्रदर्शक है, परंतु वह धन-संग्रह नहीं करता, न दण्ड ही देता है और न भोग-विलासमें ही रुचि रखता है, स्वार्थ तो मानो उसके जीवनमें है ही नहीं। धनैश्वर्य और पद-गौरवको धूलके समान समझकर वह फल-मूलोंपर निर्वाह करता हुआ सपरिवार शहरसे दूर वनमें रहता है। दिन-रात तपस्या, धर्म-साधन और ज्ञानार्जनमें लगा रहता है तथा अपने शम, दम, शौच, तितिक्षा, क्षमा, सरलता आदिसे समन्वित महान् तपोबलके प्रभावसे ज्ञाननेत्र प्राप्त करता है एवं उस ज्ञानकी दिव्य ज्योतिसे सत्यका दर्शनकर उस सत्यको बिना किसी स्वार्थके सदाचारपरायण, साधु-स्वभाव पुरुषोंके द्वारा समाजमें वितरण कर देता है। बदलेमें कुछ भी चाहता नहीं। समाज अपनी इच्छासे जो कुछ दे देता है या भिक्षासे इसे जो कुछ मिल जाता है, उसीपर वह बड़ी सादगीसे अपनी जीवनयात्रा चलाता है। उसके जीवनका यही धर्ममय आदर्श है।

क्षत्रिय शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, धर्म-युद्धमें अचल प्रवृत्ति तथा दान आदि गुणोंसे समन्वित होकर सबपर शासन करता है। अपराधीको दण्ड और सदाचारीको पुरस्कार देता है। दण्डबलसे दुष्टोंको सिर नहीं उठाने देता और धर्मकी तथा समाजकी दुराचारियों, चोरों, डाकुओं और शत्रुओंसे रक्षा करता है। क्षत्रिय दण्ड देता है, परंतु कानूनकी रचना स्वयं नहीं करता। रागद्वेषशून्य विद्वान् ब्राह्मणके बनाये हुए कानूनके अनुसार ही वह आचरण करता है। ब्राह्मणरचित कानूनके अनुसार ही वह प्रजासे नियत तथा धर्मसम्मत कर वसूल करता है और उसी कानूनके अनुसार प्रजाहितके लिये व्यवस्थापूर्वक उसे व्यय कर देता है। कानूनकी रचना ब्राह्मण करता है और धनका भण्डार वैश्यके पास है। क्षत्रिय तो केवल विधिके अनुसार व्यवस्थापक और सुरक्षक मात्र है।

धनका मूल वाणिज्य, पशु और अन्न—सब वैश्यके हाथमें है। वैश्य धन उपार्जन करता है और उसको बढ़ाता है, किंतु अपने लिये नहीं। वह ब्राह्मणके ज्ञान और क्षत्रियके बलसे संरक्षित होकर धनको सब वर्णोंके हितमें उसी विधानके अनुसार व्यय करता है, न शासनपर उसका कोई अधिकार है और न उसे उसकी आवश्यकता ही है, क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय उसके वाणिज्यमें कभी कोई हस्तक्षेप नहीं करते, स्वार्थवश उसका धन कभी नहीं लेते, वरं उसकी रक्षा करते हैं और ज्ञान-बल एवं बाहु-बलसे ऐसी सुव्यवस्था करते हैं कि जिससे वह अपना व्यापार सुचारुरूपसे निर्विघ्न चला सकता है। इससे उसके मनमें कोई असंतोष नहीं है और वह प्रसन्नताके साथ ब्राह्मण और क्षत्रियका प्राधान्य मानकर चलता है एवं मानना आवश्यक भी समझता है; क्योंकि इसीमें उसका हित है। वह प्रसन्नतासे राजाको कर देता है, ब्राह्मणकी सेवा करता है और विधिवत् आदर तथा स्नेहपूर्वक शूद्रको भरपूर अन्न-वस्त्रादि देता है।

अब रहा शूद्र। शूद्र स्वाभाविक ही जनसंख्यामें अधिक है। शूद्रमें शारीरिक शक्ति प्रबल है, परंतु मानसिक शक्ति कुछ कम है। शारीरिक शक्तिका मूल्य किसीसे कम नहीं है। शूद्रके जनबलके ऊपर ही तीनों वर्णोंकी प्रतिष्ठा है। यही आधार है। पैरके बलपर ही शरीर चलता है। अतएव शूद्रको तीनों वर्ण अपना प्रिय अंग मानते हैं। उसके श्रमके बदलेमें वैश्य प्रचुर धन देता है, क्षत्रिय उसके धनकी रक्षा करता है और ब्राह्मण उसको धर्मका, भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखाता है। न तो स्वार्थ-सिद्धिके लिये कोई वर्ण शूद्रकी वृत्ति हरण करता है, न स्वार्थवश उसे कम पारिश्रमिक देता है और न उसे अपनेसे नीचा मानकर किसी प्रकारका दुर्व्यवहार ही करता है।

सब यही समझते हैं कि सब अपना-अपना स्वत्व ही पाते हैं, कोई किसीपर उपकार नहीं करता। परंतु सभी एक-दूसरेकी सहायता करते हैं और सब अपनी उन्नतिके साथ उसकी उन्नति करते हैं तथा उसकी उन्नतिमें अपनी उन्नति एवं अवनतिमें अपनी अवनति मानते हैं। ऐसी अवस्थामें जन-बलयुक्त शूद्र संतुष्ट रहता है। चारोंमें कोई किसीसे ठगा नहीं जाता, कोई किसीसे अपमानित नहीं होता। एक ही घरके चार भाइयोंकी तरह एक ही घरकी सम्मिलित उन्नतिके लिये चारों भाई प्रसन्नता और योग्यताके अनुसार बाँटे हुए अपने-अपने पृथक्-पृथक् आवश्यक कर्तव्यपालनमें लगे रहकर समाजकी सेवा करते हुए निरन्तर समाजकी शक्तिको बढ़ाते रहते हैं। न तो सब एक-सा कार्य करना चाहते हैं और न अलग-अलग कर्म करनेमें कोई ऊँच-नीच भाव। इसीसे उनका शक्ति-सामंजस्य रहता है और धर्म उत्तरोत्तर बलवान् तथा पुष्ट होता है। यह है वर्ण-धर्मका स्वरूप।

इस प्रकार गुण और कर्मके विभागसे ही वर्णविभाग बनता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि मनमाने कर्मसे वर्ण बदल जाता है। वर्णका मूल जन्म है और कर्म उसके स्वरूपकी रक्षामें प्रधान कारण है। इस प्रकार जन्म और कर्म—दोनों ही वर्णमें आवश्यक हैं। केवल कर्मसे वर्णको माननेवाले वस्तुतः वर्णको मानते ही नहीं। वर्ण यदि कर्मपर ही माना जाय तब तो एक दिनमें एक ही मनुष्यको न मालूम कितनी बार वर्ण बदलना पड़ेगा। फिर तो समाजमें कोई शृंखला या नियम ही न रहेगा, सर्वथा अव्यवस्था फैल जायगी। परंतु भारतीय वर्णधर्ममें ऐसी बात नहीं है। यदि केवल कर्मसे वर्ण माना जाता तो युद्धके समय ब्राह्मणोचित कर्म करनेको तत्पर हुए अर्जुनको गीतामें भगवान् क्षत्रिय-धर्मका उपदेश न करते। मनुष्यके पूर्वकृत शुभाशुभ

कर्मोंके अनुसार ही उसका विभिन्न वर्णोंमें जन्म हुआ करता है। जिसका जिस वर्णमें जन्म होता है, उसको उसी वर्णके निर्दिष्ट कर्मोंका आचरण करना चाहिये; क्योंकि वही उसका स्वधर्म है और स्वधर्मका पालन करते-करते मर जाना भगवान् श्रीकृष्णने कल्याणकारक बतलाया है—'**स्वधर्मे निधनं श्रेयः।**' साथ ही परधर्मको भयावह भी बतलाया है। यह ठीक ही है, क्योंकि सब वर्णोंके स्वधर्म-पालनसे ही सामाजिक शक्ति-सामंजस्य रहता है और तभी समाज-धर्मकी रक्षा एवं उन्नति होती है। स्वधर्मका त्याग और परधर्मका ग्रहण व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकारक है। यह है प्राचीन भारतके वर्ण-धर्मका स्वरूप और महत्त्व।

खेदकी बात है, आर्यजातिकी यह महान् वर्ण-व्यवस्था इस समय शिथिल हो चली है। आज कोई भी वर्ण अपने धर्मपर आरूढ़ रहना नहीं चाहता। सभी मनमाने आचरणपर उतर रहे हैं और इसका कुफल भी प्रत्यक्ष ही दिखायी दे रहा है। प्राचीन कालमें राजाओंमें युद्ध हुआ करते थे, समाजमें कोई युद्ध या कलह नहीं होता था। सब अपने-अपने वर्णोचित कार्यमें लगे रहते थे। सबकी जीविका चलती थी, वैर-विरोधका कोई कारण ही नहीं बनता था। अब भी यदि वर्ण-व्यवस्थाको मानकर सब लोग स्ववर्णोचित कार्य करने लगें तो न किसीके स्वत्वका हरण हो और न कलह-क्लेश ही हो। समाजमें शान्ति-सुखका साम्राज्य छा जाय। भगवान् सबको सुबुद्धि दें।

क्या हम बुद्धिमान् हैं?

भारतके आर्य-ऋषियोंने अपनी त्यागमयी, पवित्र तथा तीव्र साधनाके बलसे उस परात्पर परमतत्त्वका साक्षात्कार किया था, जो एकमात्र नित्य सत्य है। उन्होंने अपने उसी दिव्य अनुभवके आधारपर यह निश्चयरूपसे जाना था और जानकर इस सिद्धान्तकी सुप्रतिष्ठा की थी। मानव-जीवनका लक्ष्य वही एकमात्र परमतत्त्व परम सत्यस्वरूप ब्रह्म या भगवान् है। इसीसे उन्होंने भारतीय संस्कृतिके प्रत्येक क्षेत्रमें मानवके जीवनको चलाया था ब्रह्मकी ओर, भगवान्‌की ओर। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त प्रत्येक स्थितिमें प्रत्येक कर्म किया जाता था—आध्यात्मिक भूमिके आधारपर भगवान्‌की प्राप्ति या भगवत्प्रीतिके लिये। धर्मके द्वारा नियन्त्रित भागवत-केन्द्रित 'अर्थ' और 'काम'का यथायोग्य निर्दोष अर्जन और उपयोग करते हुए मनुष्य अपने लक्ष्य 'मोक्ष' या भगवान्‌की ओर बढ़ता था। गुरुकुलमें प्रवेश, गृहस्थाश्रमके कर्तव्यपालन, वानप्रस्थ, संन्यास सभीमें प्रधान हेतु रहता था—भगवत्प्रीति। इसीसे जीवनमें 'त्याग'की प्रधानता थी और 'कर्तव्यपालन'का भाव था। आजकी संस्कृतिमें 'भगवान्'के बदले 'भोग' जीवनका लक्ष्य है। इसीसे 'त्याग'के स्थानपर 'अर्थ' और 'कर्तव्य'के स्थानपर 'अधिकार'ने दृढ़ आसन जमा लिया है। इसीका परिणाम है व्यष्टि और समष्टि—सभीके जीवनकी अनवरत दुःखमयता, संघर्ष-वृत्ति, हिंसा और अशान्ति। इसीके कारण हमारी सम्पत्तिकी—समृद्धिकी कल्पना आज दैवी न होकर आसुरी हो गयी है। परंतु यथार्थमें न तो आसुरी सम्पदा वास्तविक सम्पत्ति है और न आसुरी सम्पदायुक्त मानवके जीवनमें 'शान्ति'को ही स्थान है।

भौतिक विषयोंमें सुख होता, लौकिक धन-सम्पत्तिमें सुख होता एवं इनसे शान्ति प्राप्त होती तो असुरोंका समुदाय सदा सुख-शान्तिका अनुभव करता। असुरोंमें जो कभी सुख तथा आनन्दके या शान्तिके कल्पित दर्शन होते हैं वे वैसे ही हैं जैसे शराबके नशेमें बेहोश पड़े हुए शराबीकी शान्ति—मुर्दनी या गन्दे नालेमें पड़े बड़बड़ाते हुए शराबीका आनन्द प्रकट करना। वस्तुतः असुरभावापन्न मानवकी भोग-सम्पत्ति नित्य दुःख तथा अशान्तिका ही उत्पादन करती है। अशान्ति, असन्तोष, दुःखके अवश्यम्भावी परिणाम हैं। आजके व्यष्टि और समष्टि जगत्में जो घोर अशान्ति, शत्रुता, एक-दूसरेका नाश करनेकी प्रतिस्पर्धा और प्रचेष्टा, सर्वत्र शंकाशीलता, भय, युद्ध आदि छाये हैं, इसका कारण यह त्यागशून्य भोग-सम्पत्तिकी लालसा ही है। आज भौतिक विज्ञान तथा भौतिक समृद्धिमें सबसे बढ़कर देश अमेरिका और रूस माने जाते हैं। पर अमेरिकाके आँकड़े बताते हैं कि खून, बलात्कार, डकैतियाँ, मोटरोंकी चोरियाँ, ठगी और आत्महत्याकी संख्या अन्य देशोंकी अपेक्षा वहाँ अधिक है। पागलपनका रोग तो इतना बढ़ता जा रहा है कि लोग यह आशंका करने लगे हैं कि यही गति बनी रही तो आगामी कुछ समयमें अमेरिका पागलोंका देश हो जायगा। प्रकारान्तरसे यही स्थिति रूसकी है। क्रियाके बाहरी स्वरूपोंमें अन्तर है—पर असन्तोष, जलन, अशान्ति, द्वेष, वैर, प्रतिहिंसा, हिंसावृत्तिमें दोनों एक-दूसरेसे बढ़-चढ़कर हैं। भौतिक विज्ञान चाहे और भी आश्चर्यजनक प्रगति कर ले, पर दुःख तथा अशान्तिका नाश भागवत-केन्द्रित आध्यात्मिकताके बिना असम्भव है।

अर्जुनके पूछनेपर भगवान्ने गीतामें बतलाया है कि '**विषयासक्तिरूप रजोगुणसे उत्पन्न काम ही क्रोध बन जाता है और**

यह विषयकामना ही समस्त पापोंके उत्पादनमें मूल कारण है।'
आज सारा विश्व भोगकामके पीछे उन्मत्त है।

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।

मोहमयी प्रमादकी मदिराको पीकर सारा जगत् पागल हो रहा है और पागल अपनेको पागल नहीं मानता। अतएव यह पागलपन दूर भी कैसे हो?

भारतीय संस्कृतिमें कठोर-से-कठोर भौतिक कर्म भी आध्यात्मिक भूमिकामें निष्कामभावसे ईश्वर-प्रीत्यर्थ होते थे। भगवान्ने युद्धरूप महान् घोर कर्मके लिये आदेश देते हुए अर्जुनसे कहा था—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

(गीता ३। ३०)

'तुम मनको अध्यात्ममें रखे हुए—मुझमें जोड़े हुए जो कुछ भी कर्म करो, किसी फलके लिये न करके उन सबका मुझमें भली-भाँति त्याग करते रहो। मेरे लिये ही कर्म करो और भोगकी सारी आशा, लौकिक प्राणिपदार्थोंकी ममता और कामना आदिसे होनेवाले सारे मानस-तापोंको त्यागकर युद्ध करो।' युद्ध भी भगवान्के लिये और उसमें मानस-तापोंका सर्वथा अभाव।

आज ठीक इसके विपरीत सर्वत्र, धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें भी—सेवा, त्याग, ज्ञान-प्रसार आदिके प्रसंगोंमें भी मनुष्य अशान्ति और अन्तर्दाहसे संतप्त हो रहा है। इसका कारण यही है कि उसका लक्ष्य भगवान्के बदले भोग हो गया है, उसके जीवनकी आधारभूमि आध्यात्मिकके बदले सर्वथा भौतिक हो गयी है। वह आज धर्म तथा अध्यात्मकी बात भी अनिश्चयात्मिका भौतिक बुद्धिसे सोचकर ही करता है—इसीसे सभी जगह अशान्ति

है, दुःख है। सम्पत्तिमें भी विपत्ति है, सुखमें भी दुःख है, जो अवश्यम्भावी है।

शान्ति किसे मिलती है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

'सारी कामनाओंको छोड़कर जो मनुष्य निःस्पृह होकर विचरता है तथा जिसमें ममता और अहंकार नहीं है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।' अथवा—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

भगवान् कहते हैं—'जो मुझ समस्त यज्ञ-तपोंके भोक्ता, समस्त लोकोंके महान् ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को सब प्राणियोंका (और सबके नाते अपना भी) सुहृद् मान लेता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

अन्यथा, कामोपभोगपरायण व्यक्ति या देश तो जीवनभर सर्वथा अपार चिन्ताओंसे घिरे रहते हैं।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६।११, १२, १६, २०)

'अर्जुन! मृत्युके अन्तिम क्षणतक अपरिमित चिन्ताओंसे ग्रस्त रहते हुए वे कामोपभोगपरायण मानव निश्चितरूपसे मानते हैं कि बस, यही सब कुछ है। इसीसे सैकड़ों आशाकी फाँसियोंसे बँधे हुए वे काम-क्रोधको ही अपना बल मानते हैं और विषयोंकी प्राप्तिके लिये अन्यायपूर्वक (भ्रष्टाचार-अनाचारसे) अर्थ-संचय करनेका प्रयास करते हैं। मोहजालसे ढका हुआ उन लोगोंका चित्त सदा अशान्त भटकता रहता है। इस प्रकार विषयभोगोंमें आसक्त वे (यहाँ चिन्ता-कष्ट-अशान्ति भोगते हुए मरते हैं और फिर) महान् अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं। वे (मानव-जीवनके एकमात्र साध्य) मुझ भगवान्‌को न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनियोंमें उत्पन्न होते और फिर नीच गतिमें जाते हैं।'

इस प्रकार ऐसे मानव-जीवनभर दुःख, चिन्ता, अशान्तिसे जीवन बिताते हुए मरनेके बाद अपवित्र नरकोंमें पड़ते हैं और बार-बार दुःखमयी आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं। यह वस्तुतः मानव-जीवनकी सबसे बड़ी असफलता और उसका दुष्परिणाम है। आजका मानव, जो केवल भौतिक प्रगतिको ही उन्नति, भौतिक विकासको ही विकास मानकर अन्धा होकर उसीके लिये जीवनका प्रत्येक पल लगा रहा है, वह वास्तवमें बुद्धिमान् नहीं है और वह सचमुच प्रगतिकी ओर न जाकर, विकासकी ओर न जाकर इनके नामपर यथार्थमें अधोगति और विनाशकी ओर ही दौड़ा जा रहा है। बुद्धिमान्‌की परिभाषा करते हुए भगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'कौन्तेय! जितने भी ये संस्पर्शज भोग हैं; सब दुःखयोनि—दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं और आदि-अन्तवाले हैं, इनमें बुद्धिमान् पुरुष कभी नहीं फँसता।'

फिर बुद्धिमान् क्या करते हैं—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(गीता १०। ८)

'मैं (भगवान्) ही सबका उत्पत्तिस्थान हूँ और समस्त जगत्की मुझ (भगवान्)-से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने सब कर्मोंद्वारा सर्वत्र सदा मेरा ही भजन-सेवन करते हैं।'

अब हमें अपने जीवनपर विचार करके देखना है कि हम वास्तवमें बुद्धिमान् हैं या निरे मूर्ख? और यदि मूर्ख हैं तो इस मूर्खताके भीषण परिणामपर विचार करके हमें तुरन्त इस मूर्खताका त्याग कर देना चाहिये। तभी हम सच्चे धनसे सम्पन्न समृद्धिशाली होंगे—बादशाहोंके भी बादशाह होंगे और तभी हम वास्तविक परम शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।

चाह गई चिन्ता गई मनवा बेपरवाह।
जिसको कुछ नहिं चाहिए सो जग शाहंशाह॥
जिसमें भोगासक्ति नहिं जिसके मनमें त्याग।
परम शान्तिको प्राप्त हो वही मनुज बड़भाग॥

अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

मानव-जीवनके सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें व्याप्त अनादिकालीन सनातन परम्परासे प्रचलित नित्य सर्वभूतमयी, धर्ममयी सुसंस्कृत 'विचार और आचारप्रणाली'का नाम भारतीय या आर्यसंस्कृति है। यही सर्वांगपूर्ण तथा चिरजीवी आद्य मानव-संस्कृति है।*

इस संस्कृतिके परम कल्याणकारी मुख्य लक्षण हैं—अनन्त विभिन्न विचित्र जगत्के समस्त प्राणिपदार्थोंमें एक नित्य सत्य परमात्माको देखना, समस्त विषमताओंमें नित्य सर्वत्र परिपूर्ण सत्यके दर्शन करना, सतत मृत्युके प्रवाहमें बहते हुए विश्वमें नित्य अमर अविनाशी सच्चिदानन्द-तत्त्वकी उपलब्धि करना, व्यावहारिक जगत्की व्यवहार-भिन्नताका स्वीकार तथा तदनुरूप विषम आचरण करते हुए भी समस्त चराचरमें समरूपसे स्थित एक आत्मामें नित्य एकत्वकी अनुभूति करना, सहज ही सबके हितमें रत रहते हुए संयमित जीवनके द्वारा जीवनके चरम और परम लक्ष्य परमात्माकी ओर—पूर्णत्वकी ओर अविराम अग्रसर होते रहना एवं अपने निर्दोष तथा निष्कामभावसे आचरित सम्पूर्ण कर्मोंके द्वारा भगवान्को पूजकर मोक्ष, परम शान्ति अथवा भगवत्साक्षात्कार प्राप्त कर लेना।

---

*ऐसा होनेपर भी भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनतामें और उसकी नित्य महत्तामें अनास्था उत्पन्न करनेवाले तीन भ्रम बहुत कुछ कारण बने हैं—१. आर्य लोग बाहरसे आये, २. क्रमविकासवाद या उत्क्रान्तिवादका सिद्धान्त और ३. चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं मिलता। ये तीनों सत्यसे सर्वथा दूर अतएव भ्रममात्र हैं, जो भारतको अपने गौरवसे गिरानेकी दुष्ट अभिसंधिसे या अज्ञानसे प्रचारित किये गये हैं। इन तीन महाभ्रमोंसे सर्वथा बचनेकी आवश्यकता है।

इसीसे भारतीय संस्कृतिमें त्यागकी महत्ता है, भोगकी नहीं। भारतीय संस्कृतिमें मानव यथायोग्य अधिकारानुसार प्रचुर सुख-समृद्धि, सौभाग्य-सम्पत्ति, अधिकार-ऐश्वर्य, शक्ति-सामर्थ्य, विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, यश-मान आदि भौतिक पदार्थोंका अर्जन करता है, पर वह उनका न तो संग्रह करता है और न अपने व्यक्तिगत भोग-विलासमें ही उनका उपयोग करता है, वरं वह उन समस्त पदार्थोंको प्राणिमात्रमें स्थित परमात्माकी सेवामें देश, जाति, जनमानव या प्राणिमात्रके माध्यमसे समर्पित कर देता है। उसका समस्त अर्जन उत्सर्गमय ही होता है। इसीलिये 'अर्थ' एवं 'काम'की अवहेलना न करके उन्हें धर्म-नियन्त्रित रखकर मोक्षकी ओर अग्रसर होते रहनेकी साधन-पद्धति स्वीकार की गयी है। भारतीय संस्कृतिमें अर्थ-धर्म-काम-मोक्षको 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' कहा गया है। धर्मसम्मत 'अर्थ-काम' और लक्ष्य 'मोक्ष'। मनु महाराज कहते हैं कि जो 'अर्थ' और 'काम' धर्मके विरोधी हों, उन अर्थ और कामका त्याग कर देना चाहिये—

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।

(मनुस्मृति ४। १७६)

धर्म वस्तुतः वही है जो मनुष्यकी जीवन-धाराका मुख भोग-जगत्‌से मोड़कर भगवान्‌की ओर कर दे एवं जिससे सतत अविराम अविच्छिन्न गतिसे जीवन-प्रवाह निरन्तर समुद्रकी ओर बहनेवाली गंगाजीकी धाराके सदृश उसी ओर—भगवान्‌की ओर ही बहता रहे—

मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ।

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप बतानेवाली वेदवाणी है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(यजुर्वेद ४०। १)

'इस अखिल विश्वमें जो कुछ भी जड-चेतन जगत् (प्राणी-पदार्थ और गति-विधि) है, वह सब ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए, त्यागपूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत होओ। किसी अन्यके धनकी इच्छा मत करो।'

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(यजुर्वेद ४०। २)

'इस जगत्‌में इस प्रकार ईश्वर-प्रीत्यर्थ कर्म करते हुए सौ वर्षोंतक (पूर्णायु) जीनेकी इच्छा करो। यों त्यागपूर्वक किये गये कर्म मनुष्यमें लिप्त नहीं होते। इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है।'

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

(यजुर्वेद ४०। ६)

'जो सब प्राणियोंको आत्मामें ही देखता है और सब प्राणियोंमें आत्माको देखता है, वह किसीकी निन्दा नहीं करता।'

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

(यजुर्वेद ४०। ७)

'जिस कालमें सर्व प्राणी आत्मस्वरूप ही जाननेमें आते हैं, वहाँ एकत्व देखनेपर मोह और शोक कहाँ रह सकते हैं?'

भारतीय संस्कृति मनुष्यको धर्महीन, जडवादी, कामोपभोग-परायण, संकुचित स्वार्थपर, देहात्मवादी और नास्तिक नहीं देखना चाहती। भारतीय संस्कृति चाहती है—मनुष्य धर्मपरायण हो, परार्थ-त्याग करनेवाला हो। व्यक्तिगत जीवनके स्वार्थ, भोगविलासकी अभिलाषा, किसी भी प्रकारसे यश-मान-प्रतिष्ठाकी चाह, दूसरेके विनाशमें अपना विकास देखना, दूसरेके दुःखको अपना सुख समझना;

द्वेष, द्रोह, वैर, घृणा, हिंसा, मतान्धता, अपकारप्रियता, असहिष्णुता आदि दोषोंका सर्वथा त्याग करके अद्वेष्टापन, मैत्री, करुणा, अहिंसा, सत्य, सेवा, क्षमा, दया, तितिक्षा, तप, परमत-सहिष्णुता, इन्द्रिय-संयम, चित्तसंशुद्धि आदि सद्‌गुण तथा सद्‌विचारोंका सेवन करते हुए समस्त द्वन्द्वोंसे ऊपर उठकर भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करके सबमें सुख वितरण कर भगवान्‌को प्राप्त करे। मनुष्यमें आसुरी भाव, पाशविक भावका सर्वथा अभाव हो। वह सचमुच मनुष्य बनकर देवत्व और अन्तमें ईश्वरत्वको प्राप्त कर ले। यही भारतीय संस्कृतिका महान् उद्देश्य है।

भारतीय संस्कृतिमें धनकी उपेक्षा नहीं है, पर वह धनको जीवनका उद्देश्य नहीं स्वीकार करती। धनको ही प्रधानता देनेवाला पूँजीवाद, भोगवाद या भोगप्रधान साम्यवाद भारतीय संस्कृतिको स्वीकार नहीं है। उसमें अर्थकी प्रधानता नहीं है, प्रधानता है अध्यात्मकी। इसीसे उसमें धनसंचय और धन-भोगकी अपेक्षा धनके त्यागकी विशेष महत्ता है। अधिक धन-उपार्जन करनेकी अपेक्षा यथासाध्य आवश्यकताओंको कम करके सादी सरल पवित्र जीवन-पद्धति समाज तथा व्यक्ति सभीके लिये सुखप्रद तथा वांछनीय है। 'जीवनका स्तर उच्च' करनेके नामपर भोगविलासके लिये अर्थकी आवश्यकताको अत्यन्त बढ़ा लेना और चोरी, ठगी, डकैती, विश्वासघात, परस्वापहरण, धोखा, मिलावट, रिश्वत आदिके द्वारा धनोपार्जनका प्रयास करते रहना—भारतीय संस्कृतिको स्वीकार नहीं है।

भारतीय संस्कृति अर्थोपार्जनके लिये कहती है—पर केवल अपने लिये नहीं। गीतामें भगवान्‌के वाक्य हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(३। १३)

देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य एवं इतर—पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, ओषधि आदि समस्त प्राणियोंका हमारे उपार्जनमें भाग है; इन सभीका हमपर ऋण है; क्योंकि हम इन सभीसे यथायोग्य सहयोग-सहायता प्राप्त करके ही जीवन-यापन और अर्थोपार्जन कर सकते हैं। अतएव इनका भाग इन्हें यथायोग्य दे देना यज्ञ है—पंचमहायज्ञ हमारी नित्यकी दिनचर्यामें है। अतः जो मनुष्य इस यज्ञसे अवशिष्ट—इन सबका भाग दे देनेके बाद बचे हुए अन्नको खाता है, वह अमृत खाता है, पर जो कमाईका प्राप्य उचित भाग इन्हें न देकर—इनका ऋण न चुकाकर सब अकेला हड़प जाता है, वह पाप खाता है। श्रीमद्भागवतमें तो अपना पेट जितनेसे भरे, उससे अधिकपर अपना अधिकार माननेवालेको चोर तथा दण्डका पात्र कहा गया है—**'स स्तेनो दण्डमर्हति।'** गीतामें भी देवताओंको न देकर स्वयं भोगनेवालेको चोर कहा गया है—**'यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।'**

भारतीय संस्कृति केवल मनुष्यमें ही अपने आत्माको देखकर—उसकी सेवा-संरक्षण करके संतुष्ट नहीं है। वह प्राणिमात्रमें आत्माको देखकर—भगवान्‌को देखकर सबके प्रति प्रेम करनेकी, सबकी सेवा करनेकी आज्ञा देती है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(६। २९)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६। ३०)

'योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शी पुरुष सबमें—समस्त प्राणियोंमें आत्माको देखता है और समस्त प्राणियोंको आत्मामें देखता है।'

'जो पुरुष सर्वत्र (सब प्राणि-पदार्थ-परिस्थितियोंमें) मुझ (भगवान्)-को देखता है और सबको मुझ (भगवान्)-में देखता है, उसके लिये मैं कभी ओझल नहीं होता और वह मुझसे कभी ओझल नहीं होता।'

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(६। ३२)

'अर्जुन! आत्माकी उपमासे अर्थात् अपने ही सदृश सम्पूर्ण प्राणियोंको जो समभावसे देखता है और उनके सुख या दुःखमें भी जो अपने ही समान समभाव रखता है, मेरे मतमें वही योगी सर्वश्रेष्ठ है।' श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत्॥

(७। १४। ९)

'हरिन, ऊँट, गधा, बंदर, चूहा, साँप, पक्षी और मक्खी आदिको अपने निज पुत्रके समान समझे। उनमें और पुत्रमें अन्तर ही कितना है।'

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम्।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः॥
ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥
नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि॥
विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(११। २९। १२, १४,१५, १६)

'शुद्धहृदय पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके और अपने हृदयमें आकाशके समान बाहर और भीतर परिपूर्ण आवरणशून्य मुझ भगवान्‌को ही स्थित देखे। जो पुरुष ब्राह्मण, चाण्डाल, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, चिनगारी, कृपालु और निर्दय सबमें समान दृष्टि रखता है, वही वस्तुतः पण्डित है। सभी नर-नारियोंमें जब मेरी (भगवान्‌की) भावना की जाती है, तब थोड़े ही समयमें मनुष्यके मनसे स्पर्धा, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर हो जाते हैं। 'लोकनिन्दा, उपहास आदिकी परवा न करके तथा देहदृष्टि एवं लोकलज्जाको छोड़कर कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधेको भी (उनमें भगवान् समझकर) पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करे।'

केवल चेतन प्राणी ही नहीं, जड पदार्थोंमें भी भगवान्‌को ही देखे—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(११।२।४१)

'ऐसा पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी, समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं, यों सबमें भगवान् समझकर अनन्यभावसे सबको प्रणाम करता है।'

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

मनु महाराजने मनुष्यमात्रके दस धर्म बतलाये हैं, जो भारतीय मानव-संस्कृतिके स्वरूपको स्पष्ट करते हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ६। ९२)

'धृति, क्षमा, दम (मनका संयम), अस्तेय (किसीको भी वस्तु या हकको किसी प्रकार भी लेनेका विचार तथा प्रयत्न न करना), शौच (बाहर और भीतरकी शुद्धि), इन्द्रियोंका निग्रह, धी (बुद्धि), विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

कहाँ तो भारतीय संस्कृतिके ये पवित्र उदार सर्वभूतहितमय भाव और कहाँ आजका कलह-हिंसामय जीवन! आज अपने नीच स्वार्थके लिये एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके तथा बन्दर, हरिण और अन्यान्य पशु-पक्षियोंके प्राण-हरण करनेमें हिचकता नहीं। इतनी ही बात नहीं है, वह अपने स्वार्थके लिये न मालूम प्राणिहिंसाके कितने-कितने आयोजन करता है, जिनके द्वारा लाखों-करोड़ों जीवोंकी हत्या होती रहती है और वह इसे अपना कर्त्तव्य तथा इसमें गौरव मानता है।

व्यवहारमें व्यावहारिक जगत्‌के नियमानुसार असमता रखना अनिवार्य है। माता और पत्नी दोनों समान अवयववाली स्त्री हैं, परंतु भाव और व्यवहारमें अनिवार्य सहज भेद है। हाथी, गौ, कुत्तेमें एक ही आत्मा है, पर उनके आकार-प्रकार, मूल्य तथा उपयोगमें अनिवार्य भेद है। हाथ, पैर, मस्तक, मुख, गुदा आदि सबमें एक ही आत्मा है तथा सबके सुख-दुःखमें समान अनुभूति है, परंतु व्यवहारमें अनिवार्य भेद है। पर यह सब होनेपर भी उनमें किसीमें न परस्पर द्वेष है, न किसीका अहित करनेकी चेष्टा है। इसी प्रकार समस्त प्राणियोंमें समभावसे आत्मा या भगवान्‌का दर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति विविध साधनोंसे सबकी सेवा—व्यष्टिके द्वारा समष्टिकी सेवा, सबका सहज हित करनेका आदेश देती है।

८. संसारके विभिन्न मतवादों तथा उपासना-पद्धतियोंके प्रति उदारता, सहिष्णुता तथा उन्हें अपनेमें समा लेनेकी चेष्टा।

९. 'अर्थ' तथा 'अधिकार'को प्रधानता न देकर 'त्याग' और 'कर्त्तव्य'को प्रधानता देना।

उपनिषद् कहते हैं—

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

'कर्मसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, त्यागसे ही कोई अमृतत्वको प्राप्त होते हैं।'

भारतीय संस्कृतिमें विवाह कोई समझौता या कंट्रैक्ट नहीं है। भोग-विलासके लिये एक-दूसरेका स्वीकार नहीं है। नारी पुरुषकी सहधर्मचारिणी सेविका है और पुरुष नारीका स्वामी होनेपर भी उसका सेवक है। दोनों अभिन्नात्मा हैं। एक-दूसरेके पूरक हैं। इसीसे उनका प्रथम मिलन—विवाह एक पवित्र 'धार्मिक संस्कार' है। परस्पर आत्मदान है।

भारतीय संस्कृतिमें देहकी स्वतन्त्रता सर्वथा मान्य है, परंतु उससे भी अधिक आवश्यकता है मस्तिष्कके स्वातन्त्र्यकी।

आज हमारा देश विदेशी दासतासे मुक्त है, स्वतन्त्र है, पर यह राजनीतिक स्वतन्त्रता आध्यात्मिक स्वतन्त्रताके बिना सर्वथा अपूर्ण है। आध्यात्मिक दासत्वसे हम मुक्त नहीं हुए हैं। इसीसे आज विदेशी वेशभूषा, आचार-विचार, नियम-कानून, विदेशी जीवनचर्याका प्रभाव हमारे जीवनमें सर्वत्र छाया है। हम शरीरसे मुक्त होते हुए भी मस्तिष्कसे गुलाम हैं। अपनी भारतीय संस्कृतिके प्रति अनास्था ही इसका कारण है।

सबसे अधिक गम्भीरताके साथ विचार करनेयोग्य बात तो यह है कि हमारी भारतीय संस्कृतिपर एक नवीन आधुनिक सर्वथा विपरीत आसुरी संस्कृतिका आक्रमण हो रहा है और वह देशकी राजनीतिक

मुक्ति होनेके बाद तो और भी प्रबल हो गया है। इस आसुरी संस्कृतिका लक्ष्य है—केवल भौतिक सुखोपभोग। घृणा, असहिष्णुता, प्रमाद, हिंसा इसके आधार हैं और इन्हींके परायण हुई यह संस्कृति अपना विस्तार कर रही है—(**कामक्रोधपरायणाः**)। अपनी संस्कृतिपर अनास्था उत्पन्न करनेवाली शिक्षा, बाह्य विज्ञानका चमत्कार, हमारे देशकी दरिद्रता एवं राजनीतिक कारणोंसे उत्पन्न कलह-विद्वेष इस विषवृक्षको सींच रहे हैं। इसीसे आज देश सर्वत्र दलबंदी, कलह, ध्वंस, अराजकता और अनैतिकताकी ओर अग्रसर हो रहा है। दैवी सम्पत्तिका विनाश करके आसुरी सम्पत्तिका विकास और फलतः चिरकालीन पवित्र आध्यात्मिक जीवनका सर्वनाश ही इस रूपमें उदित आसुरी संस्कृतिका उद्देश्य है। दुःखकी बात है कि हमारा मस्तिष्क आज इस आसुरी भावनाका आश्रय करके सच्चे कल्याण-पथसे विमुख हुआ जा रहा है।

ऐसे विकट समयमें यह परमावश्यक हो गया है कि हमारे देशके शीर्षस्थानीय नेताओंका और जनताका ध्यान भारतीय संस्कृतिकी महत्ता, उपादेयता और कल्याणकारिताकी ओर खींचा जाय।

यह स्मरण रखना चाहिये कि एकमात्र अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृतिकी रक्षा, प्रचार और स्वीकार ही सम्पूर्ण जगत्‌को भीषण विध्वंससमूहसे बचाकर, उसके समस्त दुःख-क्लेशोंका निवारण कर, उसे नित्य शाश्वत सुख-शान्ति देनेमें समर्थ है। '**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**'

हरिः ॐ तत्सत्

संत विनोबा भावे 'हिंदू' शब्दका अर्थ करते हैं—

यो वर्णाश्रमनिष्ठावान् गोभक्तः श्रुतिमातृकः।
मूर्तिं च नावजानाति सर्वधर्मसमादरः॥
उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म तस्मान्मोक्षणमीहते।
भूतानुकूल्यं भजते स वै हिंदुरिति स्मृतः॥
हिंसया दूयते चित्तं तेन हिंदुरितीरितः॥

'जो वर्ण और आश्रमकी व्यवस्थामें निष्ठा रखनेवाला, गोसेवक, श्रुतियोंको माताकी भाँति पूज्य माननेवाला तथा सब धर्मोंका आदर करनेवाला है, देवमूर्तिकी जो अवज्ञा नहीं करता, पुनर्जन्मको मानता और उससे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है तथा जो सदा सब जीवोंके अनुकूल बर्तावको अपनाता है, वही हिंदू माना गया है। हिंसासे उसका चित्त दुःखी होता है, इसलिये उसे 'हिंदू' कहा गया है।'

इस हिंदूने जिस जीवन-पद्धतिको—जिस आचार-विचार-पद्धतिको अपना रखा है, वही हिंदू-संस्कृति, भारतीय-संस्कृति या मानव-संस्कृति है।

इस भारतीय संस्कृतिकी अपनी कुछ विशेषताएँ ये हैं—

१. सबमें एक आत्मा होनेका विश्वास।

२. कर्मफलमें विश्वास।

३. पुनर्जन्ममें विश्वास।

४. मोक्ष या भगवत्प्राप्तिमें विश्वास।

५. राग-द्वेषरहित जीवन, धारणोपयोगी वर्णधर्म तथा आश्रम-धर्मकी व्यवस्था।

६. विवाह-संस्कार।

७. बड़ोंकी सेवा तथा गो-सेवा।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

(ऋ० सं० १०।९०।१२)

परंतु इनका यह अपना-अपना बल तथा कार्य न तो स्वार्थसिद्धिके लिये है और न किसी दूसरेको दबाकर स्वयं ऊँचा बननेके लिये ही है। समाज-शरीरके आवश्यक अंगोंके रूपमें इनका योग्यतानुसार कर्म-विभाग है और यह है केवल धर्मके पालने-पलवानेके लिये ही। ऊँच-नीचका भाव न होकर यथायोग्य कर्म-विभाग होनेके कारण ही चारों वर्णोंमें एक शक्ति-सामर्थ्य रहता है। कोई भी किसीकी न अवहेलना कर सकता है न किसीके न्याय्य अधिकारपर आघात कर सकता है। इस कर्मविभाग और कर्माधिकारके सुदृढ़ आधारपर रचित यह वर्णधर्म ऐसा सुव्यवस्थित है कि इसमें शक्ति-सामंजस्य अपने-आप ही अक्षुण्ण रहता है। स्वयं भगवान्ने और धर्मनिर्माता ऋषियोंने प्रत्येक वर्णके कर्मोंका पृथक्-पृथक् स्पष्ट निर्देश करके तो सबको अपने-अपने धर्मका निर्विघ्न पालन करनेके लिये और भी सुविधा कर दी है तथा स्वकर्मका पालन करनेके लिये भी सुविधा कर दी है एवं स्वकर्मका पूरा पालन होनेसे शक्ति-सामंजस्यमें कभी बाधा आ ही नहीं सकती।

यूरोप आदि देशोंमें स्वाभाविक ही मनुष्य-समाजके चार विभाग रहनेपर भी निर्दिष्ट नियम न होनेके कारण शक्ति-सामंजस्य नहीं है। इसीसे कभी ज्ञानबल सैनिकबलको दबाता है और कभी जनबलको परास्त करता है। भारतीय वर्णविभागमें ऐसा न होकर सबके लिये पृथक्-पृथक् कर्म निर्दिष्ट है।

ऋषिसेवित वर्ण-धर्ममें ब्राह्मणका पद सबसे ऊँचा है, वह समाजके धर्मका निर्माता है, उसीकी बनायी हुई विधिको सब

॥ श्रीहरि: ॥

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ-संख्या
१—	भारतीय वर्ण-धर्मका स्वरूप और महत्त्व	७
२—	क्या हम बुद्धिमान् हैं?	१४
३—	अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति	२०
४—	भोगवाद और आत्मवाद	३१
५—	जनतन्त्र या असुरतन्त्र	४२
६—	जनतन्त्रकी रक्षा कैसे हो?	४९
७—	परमधाम	५२
८—	कौन कर्मबन्धनसे मुक्त होते तथा स्वर्गको जाते हैं	५५
९—	धृतिका स्वरूप	५९
१०—	परस्वापहरण-त्याग या अस्तेय-धर्म	६२
११—	सेवाका स्वरूप	६७
१२—	श्रीमद्भगवद्गीतामें मानवका त्रिविध स्वरूप और साधन	७३
१३—	मेरी प्रत्येक चेष्टा भगवान्‌की सेवा है	७७
१४—	वैष्णवताका स्वरूप	७८
१५—	गीतामें भगवान्‌के स्वरूप, परलोक-पुनर्जन्म तथा भगवत्प्राप्तिका वर्णन	९३
१६—	पति-पत्नी (तथा सब)-के लिये हितकर अठारह अमृत-संदेश	११८
१७—	भोजन-शुद्धि	१२१
१८—	मांस-अंडेका भोजन और चमड़ेका व्यवहार तुरंत त्याग करें	१२३
१९—	पुराणोंमें दिव्य उपदेश	१२६
२०—	खान-पानमें भयानक अशुद्धि	१३०
२१—	भोजन एक पवित्र यज्ञ है	१३५
२२—	मांसाहारका तथा गोमांसका घृणित प्रचार	१३७
२३—	पतनकारी सिनेमा और गंदे पोस्टरोंका घोर विरोध परमावश्यक	१४०

क्रम	विषय	पृष्ठ-संख्या

२४—अहिंसा परम धर्म और मांसभक्षण महापाप १४३
२५—अशोक होटलमें गोमांस १५६
२६—ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्ण १५७
२७—श्रीमद्भागवतकी महत्ता १७४
२८—योगवासिष्ठका साध्य-साधन १९५
२९—शिवपुराणमें शिवका स्वरूप २०६
३०—शिवतत्त्व और शैवोपासना २३८
३१—पुरुषोत्तम-मासके कर्तव्य २४५
३२—सत्कथाका महत्त्व २४८
३३—भगवान् बुद्धदेव और उनका सिद्धान्त २६५
३४—बदला लेने या देनेवाले सात प्रकारके पुत्र २८०
३५—गया-पिण्ड सभीको दीजिये २८१
३६—अन्य धर्मावलम्बी भी सद्गतिके लिये गया-पिण्ड चाहते हैं २८२
३७—प्रारब्ध नहीं बदल सकता २८३
३८—कर्म रहते जीवकी मुक्ति नहीं २८४
३९—मरनेके समय रोगी क्या करे? २८५
४०—अच्छी संतानके लिये क्या करे? २८६
४१—मृतात्माका आवाहन क्या सत्य है? २८७
४२—मृत्युके बाद क्या किया जाय? २८८
४३—श्राद्धकी अनिवार्य आवश्यकता २८९
४४—वैरसे भयानक दुर्गति २९१
४५—सुपुत्रके लक्षण तथा उसकी प्राप्तिका उपाय २९२
४६—'हरि: शरणम्' मन्त्रसे महामारी भाग गयी ३००
४७—पापोंके अनुसार नारकीय गति ३०३
४८—एंटीबायोटिक दवाओंके कारखाने रोगनाशके लिये या विस्तारके लिये? ३१५
४९—महामना मालवीयजीके कुछ संस्मरण ३१८
५०—चोखी सीख ३२३

क्रम	विषय	पृष्ठ-संख्या
५१	हिंदू साधु-संन्यासियोंका नियन्त्रण	३२४
५२	स्त्रियोंके लिये चार आवश्यक नियम	३२७
५३	दोष देखना दोष है	३२९
५४	दहेजका बढ़ा हुआ पाप	३३०
५५	जर्मन विद्वान्‌का हिंदी और भारतीय संस्कृतिसे प्रेम	३३२
५६	समझने-सीखनेकी चीज	३३४
५७	रेशमी कपड़ा अपवित्र क्यों है?	३३८
५८	दो मित्रोंका आदर्श प्रेम	३३९
५९	गुरुजीका उपदेश	३४३
६०	माँ-बेटेकी बातचीत	३४६
६१	क्या मत करो और क्या करो	३५०

भोगवाद और आत्मवाद

भारतीय संस्कृतिका लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति और आजके जगत्‌का लक्ष्य है भोगप्राप्ति। इसीसे भारतीय सिद्धान्त है आत्मवाद या ईश्वरवाद और आजके जगत्‌का सिद्धान्त है भोगवाद। भगवान्‌ने गीतामें सर्वथा पतन या सर्वनाशका कारण बतलाया है भोगचिन्तन या विषयचिन्तनको। भगवान् कहते हैं—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २। ६२-६३)

'भोगोंके—विषयोंके चिन्तनसे उन विषयोंमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्तिसे (उनको प्राप्त करनेकी) कामना पैदा होती है। कामना (सफल होनेपर लोभ और उस)-की विफलतामें, कामपर चोट लगनेपर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध (या लोभ)-से सम्मोह होता है—पूरी मूढ़ता छा जाती है। मूढ़तासे स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृतिभ्रंश होनेपर बुद्धि मारी जाती है और बुद्धिके नाशसे सर्वनाश होता है।'

ये सर्वनाशके आठ स्तर हैं। इनमें सबसे पहला है विषयोंका-भोगोंका चिन्तन। इसीसे अन्तमें बुद्धिनाश होकर सर्वनाश होता है। भोग जिसके जीवनका लक्ष्य होगा, भोगवाद ही जिसका सिद्धान्त होगा—वह व्यक्ति हो, चाहे व्यक्तियोंका समुदाय समाज हो, समाजोंसे भरा देश हो, देशोंका समूह राष्ट्र हो या राष्ट्रोंका समुदाय विश्व हो—जहाँ भोगवाद है, वहाँ भोगचिन्तन है और

जहाँ भोगचिन्तन है, वहीं परिणाममें सर्वनाश है। भगवान्ने भोगजनित सुखको पहले मधुर लगनेवाला परंतु परिणाममें विषके सदृश बतलाया है। वे कहते हैं—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

'विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर जो पहले अमृतके समान (मधुर) लगता है, परंतु जो परिणाममें विषके तुल्य (कार्य करता) है, वह सुख राजस कहलाता है।'

एक जगह भोग-सुखको भगवान्ने दुःखोंकी उत्पत्तिका स्थान—दुःखरूप फलका खेत बतलाया है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न जो सब भोग हैं, वे निःसंदेह दुःखके उत्पत्ति-स्थान हैं तथा आदि-अन्तवाले अनित्य हैं, भैया अर्जुन! बुद्धिमान् पुरुष उनमें प्रीति नहीं करता।'

अवश्य ही भारतीय संस्कृतिमें भोगका बहिष्कार नहीं है—अर्थ और कामका तिरस्कार नहीं है, परंतु वे जीवनके लक्ष्य नहीं हैं। भोग रहें, पर रहें धर्मके नियन्त्रणमें और उनका लक्ष्य हो मोक्ष या भगवत्प्राप्ति। पुरुषार्थचतुष्टयमें इसीलिये अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारोंको स्थान है। धर्मनियन्त्रित अर्थ-काम भगवत्सेवामें नियुक्त होकर मोक्षकी प्राप्तिके साधन बनते हैं और वे ही 'अर्थ-काम' जीवनके लक्ष्य बनकर मनुष्यको घोर अशान्ति तथा चिन्तामय जीवन बितानेको बाध्य करके अन्तमें नरकोंकी यन्त्रणामें पहुँचा देते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है-'अर्थ' और 'काम'में फँसे लोग कुत्ते और

बंदरोंके समान हो जाते हैं। (१।१८।४५) धन-लक्ष्मी रहे, वह परम मंगलमयी है, पर वह तभी मंगलमयी है, जब सर्वव्यापी—प्राणिमात्रके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् विष्णुकी सेविका होकर रहती है। नहीं तो, उसे अपनी भोग्या बनाकर तो मनुष्य महापाप करता है, जिससे उसका निश्चित पतन होता है।

हमारे इस 'धर्म'से किसी वादका लक्ष्य नहीं है या केवल अध्यात्मविचार ही धर्म नहीं है। धर्म उस निष्ठा, विचार और क्रिया-पद्धतिका नाम है जो सबको धारण करता है। जिससे मनुष्यका सात्त्विक उत्थान हो, जो प्राणिमात्रका हित तथा सुखका साधन हो तथा अन्तमें निःश्रेयस या मोक्षकी प्राप्ति करनेवाला हो, वही धर्म है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः

(वैशेषिक० १।२)

श्रीवाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीरामजी लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके
समीक्षिता धर्मफलोदयेषु।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे
भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा॥
यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा
धर्मो यतः स्यात् तदुपक्रमेत।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके
कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता॥

(अयोध्याकाण्ड २१।५७-५८)

'धर्मके फलस्वरूप सुख-सौभाग्यादिकी प्राप्तिमें जो धर्म, अर्थ और काम देखे जाते हैं, वे तीनों एक धर्ममें वर्तमान हैं। धर्मके अनुष्ठानसे ही तीनोंकी सिद्धि होती है, इसमें संदेह नहीं है। वैसे ही जैसे पतिके अधीन रहनेवाली भार्या अतिथि-

पूजनादि धर्ममें, मनोऽनुकूल होनेसे काममें और सुपुत्रवती होकर अर्थमें सहायिका होती है। जिस कर्ममें धर्म, अर्थ, काम—तीनों संनिविष्ट न हों, परंतु जिससे धर्मकी सिद्धि होती हो, वही कर्म करना चाहिये। जो केवल अर्थपरायण होता है, वह लोकमें सबके द्वेषका पात्र बन जाता है और धर्मविरुद्ध कामभोगमें आसक्त होना भी प्रशंसा नहीं निन्दाकी बात है।'

भोगवादी इस धर्मकी परवा नहीं करता। उसका निश्चित सिद्धान्त ही होता है कामोपभोग—

कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥

(गीता १६। ११)

विषयभोगोंमें लगे मनुष्य बस, यही सब कुछ है—ऐसा निश्चितरूपसे मानते हैं।

यह आसुरी सम्पदावाले असुर-मानवका निश्चित सिद्धान्त है।

भोगवाद ही आसुरी सम्पदा है या आसुरी सम्पत्ति ही भोगवाद है।

भोगवादी या असुर-मानव धर्मको नहीं मानता, वह भगवान्‌का भजन तो करता ही नहीं। भगवान्‌ने उसके लिये कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

(गीता ७। १५)

'आसुरीभावका समाश्रयण किये हुए मायाके द्वारा अपहृत ज्ञानवाले दूषित कर्म करनेवाले नराधम मूढ़ मुझ (भगवान्)-को भजते ही नहीं।' भगवान्‌को नहीं भजते, भोगमें ही लगे रहते हैं, इसीसे वे नराधम तथा मूढ़ हैं।

ऐसे भोगवादी असुर-मानवको जीवनमें मिलते हैं—चिन्ता, अशान्ति, कामनाजनित पाप तथा मृत्युके बाद नरकोंकी प्राप्ति तथा बन्धन। यथा—

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।

(गीता १६। ११)

मृत्युके अन्तिम क्षणतक अपरिमित चिन्ताओंसे घिरे रहते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।

(गीता १६। १६)

मोहजालसे समावृत अनेक प्रकारसे भ्रमितचित्त (अशान्त) रहते हैं।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

श्रीभगवान्ने कहा—रजोगुण (विषयासक्ति)-से उत्पन्न यह काम ही (चोट खाकर) क्रोध बन जाता है। यह काम कभी तृप्त न होनेवाला महापापी है। (मनुष्यके द्वारा होनेवाले पापोंमें) यह काम ही वैरीका काम करता है—इसीसे पाप होते हैं, ऐसा समझो।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

(गीता १६। १६)

विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त लोग अपवित्र नरकोंमें पड़ते हैं।

दैवीसम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता॥

(गीता १६। ५)

दैवी सम्पदासे मोक्ष मिलता है और आसुरीसे बन्धन। यही मत है। भोगवादी असुर-मानवका 'कामक्रोधपरायण' होना अनिवार्य है।

भोगवादका विष हमारी भारतीय संस्कृतिमें नहीं था, यह पाश्चात्त्य जगत्से यहाँ आया है और अब तो समस्त विश्वमें इतने भयानकरूपमें इसका प्रसार हो रहा है कि दिन-रात सर्वत्र सभी क्षेत्रोंमें भोगचिन्तन ही मनुष्यका स्वभाव-सा बन गया है और यह निश्चित है कि भोग-चिन्तनका परिणाम बुद्धिनाशके

द्वारा सर्वनाश होता है। भोगवादका यह विषमय परिणाम है कि आज भारतमें भी पाश्चात्त्य जगत्की भाँति प्रायः सभी वाद, चाहे वह कांग्रेस हो, कम्यूनिज्म हो, कम्यूनलिज्म हो, कैपिटेलिज्म हो, सोशलिज्म हो या कोई भी 'साम्प्रदायिक' कहा जानेवाला वाद हो, सभी भोगदृष्टिसे ही अपने कर्तव्यका विचार करते हैं। इसीसे सर्वत्र दलबंदी, कलह, द्वन्द्व, एक-दूसरेको गिरानेकी चेष्टा, एक ही धर्म-मतमें परस्पर निन्दा तथा पतनकी चेष्टा आदि हो रही है। यह धर्मरहित राजनीतिका अवश्यम्भावी परिणाम है। हमारे यहाँ मनुमहाराजने राजाको शिकार, द्यूत, दिवानिद्रा, परदोष-कथन, स्त्रीसहवास, मद्यपान, नाच, गान, व्यर्थ भ्रमण—इन कामजनित दस दोषोंसे तथा चुगली, अनुचित साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरेके गुणोंमें दोषारोपण, द्रव्यहरण, गाली, कठोरता—इन क्रोधजनित आठ दोषोंसे बचनेके लिये कहा है। पर आज यही सब दोष जीवनके आवश्यक अंग या स्वभाव-से बन गये हैं। अभी चुनावके तामस यज्ञमें इनका विविध प्रकारसे अकाण्ड ताण्डव प्रत्यक्ष देखा गया। हमारे प्रतिदिनके राजनीतिक जीवनमें भी ये दोष अंगस्वरूप ही बन गये हैं। ऐसा होना भोगवादी असुर-मानवके लिये अनिवार्य है; क्योंकि वह तो इन्हींको गुण मानता है।

यह चीज केवल धर्महीन राजनीतिक क्षेत्रमें ही नहीं है, भोगवादीके द्वारा केवल भोगप्राप्तिके लिये स्वीकृत कोई भी जीवन-निर्वाहकी या लौकिक उत्थान-अभ्युदय अथवा प्रगतिकी पद्धति भोगचिन्तन तथा अन्तमें बुद्धिनाशके द्वारा सर्वनाश करानेवाली होती है। इसी कारण आज हमारे सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक, नैतिक—सभी क्षेत्रोंमें बड़ी तेजीके साथ दैवी सम्पत्तिका ह्रास तथा आसुरीका विकास हो रहा है। जो अन्तमें महान् विनाश या घोर पतनका कारण होगा।

भोगवादी असुर-मानव क्या सोचता, करता है तथा उसका परिणाम क्या होता है। इसपर भगवान् कहते हैं—

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। १३—१५, १८-२०)

'मैंने आज यह कमाया है, मेरे इस मनोरथको भी मैं अवश्य प्राप्त करूँगा। मेरे पास यह इतना धन तो है, फिर और मिलेगा। (मेरे काममें बाधा देनेवाला) वह शत्रु तो मेरे द्वारा समाप्त कर दिया गया है, जो दूसरे और हैं उनको भी मैं मार डालूँगा। मैं शासक ईश्वर हूँ, मैं ऐश्वर्यका भोगी हूँ, मैं सफलजीवन हूँ, मैं बलवान् और सुखी हूँ, मैं बड़ा धनवान् हूँ, मैं अभिजनवान्—जनताका नेता हूँ, मेरे समान दूसरा है कौन? मैं (बड़े-बड़े) यज्ञ-सेवाके कार्य करूँगा, मैं बड़े-बड़े दान दूँगा और मेरे मोदका पार नहीं रहेगा। इस प्रकार अज्ञानसे मोहित वे असुर-मानव मनोरथ किया करते तथा डींग हाँका करते हैं।'

'इस प्रकार जो अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोधके

आश्रित, गुणियोंमें भी दोषारोपण करनेवाले तथा दूसरोंके शरीरोंमें स्थित मुझसे (भगवान्‌से) बड़ा द्वेष करते हैं, उन द्वेष करनेवाले, अशुभकर्ता, निर्दय, नराधमोंको मैं (भगवान्) संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ। भैया अर्जुन! वे मूढ़ पुरुष मुझ (भगवान्)-को न पाकर जन्म-जन्ममें (बार-बार) आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं; तदनन्तर और भी अधम गति (नरकादि)-में जाते हैं।'

आजके युगके भोगवादी मानवका यह प्रत्यक्ष चित्र है। सारा विश्व ही आज इन आसुरी भावोंका समाश्रयण किये हुए अपने विनाशका पथ प्रशस्त कर रहा है। सभी भोग-चिन्तनपरायण हैं; कोई मान-यशकी कामना करता है तो कोई अधिकार-सत्ताकी, तो कोई धन-वैभवकी—इसीसे सभी ओर छीना-झपटी हो रही है।

भारतीय संस्कृतिका जो 'कर्तव्य' तथा 'त्याग'का उज्ज्वल आदर्श था, उसकी जगह आज 'अधिकार' तथा 'भोग'ने ले ली है। सभी लोग 'अधिकार' और 'अर्थ' या 'भोग'के पीछे उन्मत्त हैं। 'कर्तव्य' तथा 'त्याग' होनेपर उचित अधिकार तथा अर्थ-भोग अपने-आप आते हैं। राम और भरतका इतिहास इसका साक्षी है। कर्तव्य तथा त्यागके कारण दोनोंके अधिकार कायम रहे—दोनों ही उचित अर्थके भागी हुए।

हमारा आदर्श ही था कर्तव्यमय त्याग। अमृतत्वकी प्राप्ति त्यागसे ही होती है। उपनिषद्‌की वाणी है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

कर्मसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, एक त्यागसे ही कोई अमृतत्वको प्राप्त होते हैं—इसीसे वेदका उपदेश है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(शुक्लयजुर्वेद ४०। १)

'अखिल विश्वमें जो कुछ भी जड-चेतन जगत् है, वह सब ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत होओ। किसीके धनकी इच्छा न करो।'

आज यह बात उपहासकी-सी वस्तु बन गयी है। आज तो प्रत्येक वस्तुका मूल्यांकन होता है—आर्थिक या भोगदृष्टिसे ही। आत्माका प्रकाश करनेवाली 'शिक्षा' भी आज भोगदृष्टिसे ही होती है। प्रत्येक वस्तुपर इसी दृष्टिसे विचार किया जाता है कि इसमें आर्थिक लाभ है या नहीं? पंचवर्षीय योजनाएँ, शिक्षा-कला-विस्तार, नये-नये कारखाने, दवा-उद्योग, कसाईखाने, हिंसा-उद्योग सब इसी दृष्टिसे खोले तथा चलाये जाते हैं। धर्मकी कहीं कोई आवश्यकता ही नहीं। यह सब भोगवादके विषका ही विषैला प्रभाव है।

भोगवादके विषसे आक्रान्त होनेके कारण ही आज भारतके बड़े-बड़े अध्यात्मवादी विद्वान् भी, पाश्चात्त्य भोगवादी विद्वान् बुरा न बता दें, इसके लिये अपनी संस्कृतिके परम्परागत सम्मान्य सिद्धान्तोंको तथा इतिहासोंको भी यथार्थरूपमें प्रकाश करनेमें हिचकते हैं और उन्हें विकृत करके उनके मतानुकूल बतानेका प्रयत्न करते हैं। यह मस्तिष्कका दासत्व बड़ा ही शोचनीय तथा घातक है। इसीसे हमारे प्राचीन इतिहास तथा ऐतिहासिक घटनाओंके काल बदलनेकी और सबको तीन हजार वर्षके अन्दर लानेकी चेष्टा की जा रही है और दुःखका विषय है कि हमारे विद्वान् इन बातोंको स्वीकार करते चले जा रहे हैं। किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रको यदि गिराना हो तो उसका प्रधान साधन है—उसके आत्मगौरव तथा आत्मविश्वासको मिटा देना—उसके अपनेमें हीनताका बोध करा देना। यह काम पाश्चात्य विद्वानोंने सफलतापूर्वक सम्पन्न किया और इसीसे भारत अपनेमें हीनताका बोध करके सहज ही मस्तिष्कका दासत्व स्वीकार

कर परमुखापेक्षी तथा परानुकरणपरायण हो गया। विदेशी भाषा, विदेशी वेशभूषा, विदेशी खान-पान, विदेशी रहन-सहन तथा विदेशी ज्ञानका गौरवके साथ ग्रहण करना—हमारी इस आत्महीनताके बोधका ही सहज परिणाम है। पाश्चात्य विद्वानोंने भ्रमसे या किसी कुटिल अभिसंधिसे इन तीन महाभ्रमोंका प्रतिपादन और प्रचार-प्रसार किया—

(१) आर्यजाति बाहरसे आयी है। भारतवर्ष उसका मूल निवासस्थान नहीं है।

(२) चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं है।

(३) जगत्‌में उत्तरोत्तर विकास—उन्नति हो रही है।

मस्तिष्ककी गुलामीके कारण भारतीय विद्वानोंने अधिकांशमें इन तीनों बातोंको स्वीकार कर लिया। इसीका फल है कि आज हम भारतीयोंकी अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने पूर्वज तथा अपने गौरवमय महाभारत-रामायणादि प्राचीन इतिहास, अपने धर्मग्रन्थ वेद-स्मृति तथा पुराण आदिपर अश्रद्धा और अनास्था बढ़ रही है और इसीसे भोगवादके विष-विस्तारमें बड़ी सुविधा हो गयी है। इसीसे आज हम तमसाच्छन्न होकर सभी कुछ विपरीत देखने, विपरीत सोचने और विपरीत करनेमें गौरव मान रहे हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(१८। ३२)

'अर्जुन! तमोगुणसे आवृत जो बुद्धि अधर्मको धर्म (अवनतिको उन्नति, विनाशको विकास, पतनको उत्थान, पापको पुण्य इस प्रकार—) सभी अर्थोंमें विपरीत मानती है, वही तामसी बुद्धि है।'

आजका संसार भोगवादके विषसे जर्जरित होनेके कारण तमसाच्छन्न होकर इसी तामसी बुद्धिके द्वारा अपने कर्तव्यका

निश्चय करता और तदनुसार चल रहा है। भारतवर्ष भी आत्मविस्मृत होकर इसी तामसी बुद्धिका आश्रय ले रहा है।

भारतने यदि अपने पूर्वज ऋषि-महर्षि तथा अपनी प्राचीन संस्कृति एवं धर्मग्रन्थोंपर विश्वास करके अपनी अत्यन्त प्राचीन सर्वांगसम्पन्न, सर्वांगसुन्दर आत्मवादी आदर्श संस्कृतिको न अपनाया तो इसका परिणाम उसके लिये तथा समस्त जगत्के लिये भी बहुत बुरा होगा; क्योंकि यही देश तथा यहींकी संस्कृति अनादिकालसे अध्यात्म-प्रधान आत्मवादी रही है। आज भी वर्तमान जगत्की स्थितिसे असंतुष्ट यूरोप तथा अमेरिकाके बहुत-से सज्जन सच्चे शान्ति-सुखकी प्राप्तिके लिये आत्मवादी भारतवर्षकी ओर ताक रहे हैं और बहुत-से तो यहाँ आ-आकर अध्यात्मकी शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। पर जब भारत ही भोगवादी हो जायगा, तब तो जगत्की सारी आशा ही लुप्त हो जायगी। भारत आज इसी भोगवादके मोहजालमें फँसा है। भारतके मनीषियोंको गम्भीरतापूर्वक इसपर विचार करके किसी प्रकाशमय पथका पता लगाकर उसपर आरूढ़ होना चाहिये।

हरिः ॐ तत्सत्

जनतन्त्र या असुरतन्त्र

मानव-सृष्टिमें प्रधानतया दो प्रकृतियोंके मनुष्य हैं—'दैवी सम्पदायुक्त' और 'आसुरी सम्पदायुक्त।' दैवी सम्पदा बन्धनसे छुटकारा दिलाती है और आसुरी सम्पदा बन्धनमें डालती है—**'दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।'** (गीता १६। ५) दैवी सम्पदायुक्त मानव भगवत्परायण रहकर सद्विचार और सत्कर्म करता है और आसुरी सम्पदायुक्त असद्विचार, असत्कर्ममें ही प्रवृत्त रहता है। दैवी सम्पत्तिवालेका लक्ष्य होता है—भगवत्प्राप्ति या मोक्ष एवं आसुरी सम्पत्तिवालेका लक्ष्य होता है—कामोपभोग। **'कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।'**

जिसका लक्ष्य 'मोक्ष या भगवत्प्राप्ति' है, वह देव-मानव 'त्याग' और 'कर्तव्य' का ध्यान रखकर सब काम करता है और जिसका लक्ष्य 'कामोपभोग' है, वह हर चेष्टामें केवल 'अर्थ' और 'अधिकार' का अनुसन्धान करता है। इस प्रकार मानव-जीवन जब केवल 'अर्थ' और 'अधिकार' परायण हो जाता है, तब क्रमशः उसकी न्यूनाधिकरूपमें अर्थपैशाचिकता और अधिकारोन्मत्तता बढ़ने लगती है। तब वह मानवतासे गिरकर दानव, असुर, राक्षसके रूपमें परिणत होकर काम, लोभ तथा क्रोधको जीवनका सम्बल मान लेता है। इसीसे आसुरी सम्पदाके तीन नाम हैं—'मोहिनी' (कामग्रस्त पुरुषमें प्रधानरूपसे रहनेवाली), 'आसुरी' (लोभग्रस्तमें प्रधानरूपसे रहनेवाली) और 'राक्षसी' (क्रोधग्रस्तमें प्रधानतासे रहनेवाली)। ये काम, क्रोध और लोभ—तीनों ही नरकके द्वार हैं और आत्माका पतन करनेवाले हैं **'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः'** और इन तीनोंके त्यागकी भगवान्ने आज्ञा दी है—

'तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्'

पर असुर-मानव इन तीनोंको ही जीवनमें ग्रहण किये रहता है

और 'अर्थ' तथा 'अधिकार' के लिये अपवित्र उग्र कर्मोंमें लगा रहता है। दिन-रात चिन्ता तथा द्वेषकी आगमें जलता रहता है, अभिमानमें चूर वह अन्याय तथा असत्यका आश्रय लेकर विपक्षी, प्रतिपक्षी या भिन्न मतावलम्बी लोगोंको व्यर्थ ही अपना शत्रु मानकर उनको हानि पहुँचाने, उनका अपमान करने, उन्हें गिराने या मारनेकी चिन्ता तथा चेष्टामें प्रवृत्त रहता है। ऐसा अशान्तचित्त पुरुष मृत्युके अन्तिम समयतक यहाँ दिन-रात चिन्ताग्रस्त रहता है, मरनेके बाद अपवित्र नरकोंमें पड़ता है और भावी सन्ततिके लिये बुरा आदर्श छोड़ जाता है। यह दशा असुर-मानवकी निश्चित होती है।

जितना-जितना ही मनुष्यमें 'त्याग' और 'कर्तव्य' का भाव बढ़ता है, उतना-उतना ही उसका जीवन पवित्र होता है और वह दैव-मानव बनता है। क्रमशः वह भगवत्प्राप्तिकी ओर बढ़ता है एवं उससे केवल उसके निकटस्थ रहनेवाले प्राणियोंका ही नहीं देशवासियोंका—अखिल विश्वका उसकी अर्जित दैवी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार कल्याण-साधन होता है और इसके विपरीत जितना-जितना ही 'अर्थ' तथा 'अधिकार' की लिप्सा बढ़ती है, उतना-उतना ही जीवन अपवित्र होता है और वह असुर-मानव बनता जाता है एवं दुःख-यातना, चिन्ता और नरकयन्त्रणाकी ओर बढ़ता है तथा उससे उसके निकटस्थ प्राणियोंका तो अकल्याण होता ही है, वह विश्व-प्राणियोंके अकल्याण और दुःखमें भी न्यूनाधिक रूपसे कारण बनता है।

अभी-अभी देशमें जो आम चुनाव हुआ है, उसमें जो कुछ भी काण्ड हुए उनसे पता लगता है कि त्याग-प्रधान ऋषियोंका देश 'अर्थ' और 'अधिकार' के लिये अन्धा-सा होकर किधर दौड़ा जा रहा है। कौन कितने जीते, कितने हारे यह प्रश्न नहीं है। प्रश्न है—'त्याग' तथा

'कर्तव्य' पर कितना ध्यान है, सत्य तथा न्यायपर कितनी दृष्टि है और देश तथा देशवासियोंकी कितनी चिन्ता है और व्यक्तिगत 'अर्थ' तथा 'अधिकार' की प्राप्तिके लिये असत्य-अन्यायका कितना ग्रहण है तथा देशकी कितनी विस्मृति है। प्रथम तो सबको मत देनेके अधिकार तथा बहुमतसे चुनावकी पद्धति ही गलत है, क्योंकि जनसमूहका मत कभी गम्भीर विचारपूर्ण तथा गहरी समझदारीका नहीं हुआ करता। जनसमूहका विचार तो बनाया जाता है और जिधरकी हवा जोरकी चलती है, उधर ही समूह चल पड़ता है। इसीसे जनसमूहके मतका कोई नियत मूल्य नहीं आँका जाता। इसीलिये मनुमहाराजने कहा है—

एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥

(१२। ११३)

'वेदका ज्ञाता एक भी ब्राह्मण जिसको धर्म निश्चित कर दे, उसीको श्रेष्ठ धर्म समझना चाहिये, दस सहस्र मूर्खोंके द्वारा कहा हुआ धर्म नहीं है।'

अतएव बहुमतकी पद्धति यथार्थ प्रतिनिधिका चुनाव करनेमें समर्थ नहीं होती। फिर यहाँ तो बहुमत भी किसको समझा जाय और किनको बहुमतसे निर्वाचित प्रतिनिधि माना जाय। मान लीजिये कहीं एक हजार मत है—उसमें एक ओर ५०१ मत है और विपक्षमें ४९९ है, बराबर मतमें केवल एक मतका अन्तर है, तो क्या एक मत अधिक होनेसे वे वास्तवमें एक हजारकी पूर्ण जनताके प्रतिनिधि हैं? आजकल और भी गड़बड़ी है। मान लें एक हजार मत है और छः प्रत्याशी हैं। पाँच प्रत्याशी १५०-१५० या कुछ कम-ज्यादा—कुल मिलाकर ७५० मत प्राप्त करते हैं, एकको २५० मत मिल जाते हैं और चूँकि वे पाँचों ही २५०

से कम मत प्राप्त करते हैं, इसलिये २५० वाले चुन लिये जाते हैं। पर वस्तुतः क्या वे बहुमतसे चुने गये हैं। तीन चतुर्थांश मत उनके विरुद्ध है, केवल एक चतुर्थांश उनके पक्षमें है। इसपर भी वे वहाँकी प्रजाके बहुमतसे चुने हुए प्रतिनिधि माने जाते हैं। यह यथार्थ प्रतिनिधित्व है या प्रतिनिधित्वका उपहास? विचारणीय विषय है। यह तो मतोंकी बात हुई, अब अन्यान्य विषयोंपर विचार कीजिये।

कहा जाता है कि इस बारके चुनावमें सब मिलाकर ६६ करोड़से अधिक रुपये खर्च होंगे। कुछ लोगोंका अनुमान है कि यह रकम भी कम है, इससे कहीं अधिक व्यय होगा। नौ करोड़ रुपये तो शायद सरकारी अनुमान है। प्रत्येक प्रत्याशी अमुक सहस्त्र संख्यासे अधिक खर्च दिखा नहीं सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा हो और ऐसा सुना गया है कि जितना दिखाया जायगा उससे कई गुना अधिक तो सैकड़ों प्रत्याशियोंके खर्च लगेगा और कुछके तो एकसे पचीस-पचीस लाखोंतक एवं करोड़ोंतक रुपये खर्च होंगे। एक तरफ सूखा तथा अकालके कारण त्राहि-त्राहि मची हुई है, करोड़ों हम-जैसे ही मानव नर-नारी, बच्चे भूखके मारे छटपटा रहे हैं और दूसरी ओर इतना भयानक अपव्यय—सो भी चोरी, असत्यके आधारपर।

मान लीजिये—किन्हीं प्रत्याशीको दस-बीस हजार या दस-बीस लाखकी जरूरत है, वे अपनी आवश्यकता-पूर्तिके लिये जाते हैं उनके पास या उन्हें बुलाकर कहते हैं जिनके पास रुपये हैं और चोरीके रुपये हैं, जो बिना किसी खातेमें दर्ज किये उन्हें दे सकते हैं। उनसे यह जानते-समझते हुए वे रुपये लेते हैं कि ये रुपये ईमानदारीके नहीं हैं। वे ही पहले सम्भवतः कहीं मिनिस्टर हैं और आगे बननेवाली सरकारमें भी कहीं मिनिस्टर होंगे, वरं वे उन व्यापारी महोदयको चोरीसे रुपये कमाते कैसे

रोकेंगे? वरं उन्हें सुविधा प्रदान करनेका सौजन्य दिखानेमें भी शायद बाध्य कैसे नहीं होंगे? यों हजारों-लाखों रुपये चुनावके लिये देनेवाले धनी लोग दान तो देते ही नहीं, वे तो इन्वेस्ट करते हैं या एक सट्टा खेलते हैं बहुत अधिक प्राप्त करनेके लिये। इतनी रिस्क तो वे उठाते ही हैं कि कलको ये मिनिस्टर न बने तो शायद हमारे इस इन्वेस्टमेंटका फल तुरंत नहीं मिलेगा। कहीं-कहीं पूरी रकम डूबनेका भय भी रहता ही है।

कुछ प्रत्याशी जिनको धनियोंसे रुपये नहीं मिलते, अतः वे ऋण लेकर चुनाव लड़ते हैं। वे भी इसी आशापर कि यदि जीत गये तो बहुत कमा लेंगे। उनके सामने अमुक-अमुकके उदाहरण हैं कि जो पहले अत्यन्त अभावग्रस्त थे, पर विधानसभा या संसदके सदस्य चुने जानेके बाद पैसेवाले हो गये। कइयोंके मकान बन गये। जिस सूत्रसे उनके पास पैसे आये, उन्हीं सूत्रोंसे ये भी अर्थप्राप्तिकी आशा रखते हैं। यह सब क्या है? असत्य, चोरी और बेईमानीका सीधा प्रोत्साहन है या नहीं है?

इस बार जगह-जगह हिंसापूर्ण उपद्रव हुए हैं। शायद कोई पार्टी बची हो जिसके सदस्यों या समर्थकोंने चोट न की हो या चोट न खायी हो। पत्थर, ईंट बरसाना साधारण-सी बात हो गयी। प्रधानमन्त्री श्रीइन्दिराजीपर पत्थरोंकी वर्षा हुई, श्रीमधुलिमयेपर घातक प्रहार हुआ और बहुत जगह पत्थर-ईंट फेंके गये, छुरे भोंके गये। लाठियाँ चलीं, गोलियोंकी बौछार हुई, कई जगह घर फूँके गये, पोलिंगके खेमेमें आग लगा दी गयी। गन्दे नारे लगाना, गालियाँ बकना तो आम बात थी। तामसिकताका यह ताण्डव नृत्य जनतन्त्र या लोकतन्त्रके नामपर हुआ। बड़ी ही लज्जाकी—डूब मरनेकी बात है। भारतका पुराना अहिंसावाद तो कभीका भुला दिया गया था—गाँधीजीका ताजा अहिंसावाद भी दफनाया गया—इतनी जल्दी।

अब 'सत्य' पर आइये। भारतीय-संस्कृतिके अनुसार तो अपने मुँहसे अपनी सच्ची प्रशंसा करना आत्महत्याके सदृश है तथा दूसरोंकी सच्ची निन्दा करना भी उनकी हत्या करना है। फिर अपने मुँहसे अपनी मिथ्या प्रशंसा और प्रतिपक्षी व्यक्ति अथवा दलके सारे गणोंमें दोषारोपण करके उनकी मिथ्या निन्दा करना तो सचमुच सत्यका नाश करनेके साथ ही एक बड़ा अपराध है और आजके हमारे इस जनतन्त्रके चुनावकी तो आधारशिला ही यह है। लिख-लिखकर, गला फाड़-फाड़कर, छपवा-छपवाकर अपनी सर्वथा मिथ्या प्रशंसाके पुल बाँधना और प्रतिपक्षीकी सर्वथा मिथ्या निन्दाकी मूसलाधार झड़ी लगा देना और कोई कुछ बोले तो मार-पीटके लिये तैयार रहना। किसलिये?—देशके लिये? राष्ट्रके लिये, गरीब जनताके लिये? या अपने लिये? 'अर्थ' और 'अधिकार' की पिशाचिनी पिपासाको उत्तरोत्तर बढ़ानेके लिये। इसका उत्तर अपने ही मनमें प्रत्येक प्रत्याशी अपनी आभ्यन्तरिक परिस्थिति देखकर अपने-आप ही दे लें। मेरा विश्वास है कि सभी दलोंमें ऐसे सज्जन महानुभाव हैं—जो सच्चे हैं, जिनके हृदयमें देशभक्तिकी सच्ची लगन है, जो देशका सचमुच कल्याण चाहते हैं और देशकी सेवाकी पवित्र भावनासे ही चुनावक्षेत्रमें उतरे हैं। पर उनमेंसे भी अधिकांशका चुनावकी पद्धति-दोषोंसे बचना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। उस दिन मेरे एक प्रेमी सज्जन, जो स्वयं चुनावसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, मेरे पास आये हुए थे। मैंने पद्धतिकी एक बात सुनी थी, जो मेरी समझमें गलत थी, मैंने उनसे कहा— 'यह नहीं करना चाहिये।' इसपर वे कुछ सकुचाते हुए-से बोले—'काँटेसे ही काँटा निकालना चाहिये।' मैंने उनसे कहा— 'भाई मैं तो चाहता हूँ कि शूलके बदले भी फूल दिये जायँ।'

मतदानमें भी बहुत प्रकारकी अवांछनीय बातें हुईं। मरे हुए लोगोंके मत दिये गये, एकके बदले दूसरेने मत दिया, स्त्रीके वेषमें पुरुषने तथा पुरुषके वेषमें स्त्रीने मतदान किया, मतदान न करनेवालोंको लानेके लिये गुंडे तैनात किये गये। मतदाताओंको रुपये बाँटे गये, अन्यान्य प्रकारसे उन्हें लालच-रिश्वत दी गयी। शराब बाँटी गयी, नाच दिखाये गये। प्रत्येक वोटपर अमुक संख्यामें रुपयेके हिसाबसे गुंडोंके द्वारा नकली मतदाता लाये गये। एक जगह एक लड़की दूसरेके नामपर मतदान करते पकड़ी गयी, बेचारी इतनी लजा गयी कि उसने आत्महत्या कर ली। इसके अतिरिक्त मत प्राप्त करनेके अन्य बहुत प्रकारके जघन्य साधनोंके समाचार मिले हैं। यदि यह सब सत्य है तो कहना ही पड़ेगा कि हमारा घोर पतन हो गया है और हम उत्तरोत्तर और भी पतनके गर्तमें गहरे गिरे जा रहे हैं। यह सब हो रहा है देश-सेवाके पवित्र नामपर और जनतन्त्रके नामपर। गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित आसुरी सम्पदाके लक्षणोंका वर्णन पढ़ा जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो वह वर्णन हमारे वर्तमान विकास (या विनाश) की ओर द्रुत गतिसे जाते हुए समाजको लक्ष्य करके ही लिखा गया है। पूरे-पूरे मिलते हैं असुर-मानवके लक्षण। फिर स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि इसे जनतन्त्र (डेमोक्रेसी) कहा जाय या असुरतन्त्र (डेमोनोक्रेसी)? चुनावके बाद नयी सरकारें बनेंगी। उसमें भी हमारे मनोंमें व्यवस्थित राग-द्वेषका प्रभाव रहेगा ही और पता नहीं, उसका क्या परिणाम होगा, क्योंकि परिपंथी राग-द्वेष तो अध्यात्म-धन—दैवी सम्पदाको लूटेंगे ही। भगवान् सबको सुबुद्धि दें।

जनतन्त्रकी रक्षा कैसे हो ?

देशमें चुनाव समाप्त हो गये। सभी जगह नयी सरकारें बन गयीं—कहीं कांग्रेसकी, कहीं विविध दलोंकी मिली-जुली, पर अभीतक कहीं भी शान्तिके साथ केवल देश-कल्याणकी भावनासे सरकारें काम नहीं कर पा रही हैं। इसका कारण है—पद-लोलुपता, अभिमान, आपसकी फूट, एक-दूसरेको अपदस्थ करनेकी इच्छा और क्रिया, परस्परमें कटु आलोचना और एक-दूसरेपर मिथ्या अथवा बढ़ाया हुआ दोषारोपण। इस अवस्थामें स्वाभाविक ही देश तथा देशहित सामने नहीं रहता—रहता है व्यक्तित्व, रहता है अहं और रह जाता है दलगत या अधिकांशत: व्यक्तिगत स्व-अर्थ। यह निश्चित है कि 'स्व' जितना सीमित होता है, उतना ही गंदा होता और जितना विस्तृत तथा व्यापक होता है, उतना पवित्र। 'स्व' जहाँ देशसे निकलकर दलमें या व्यक्तिमें आ जाता है, वहाँ देशका हित विस्मृत या अत्यन्त गौण हो जाता है और दलका या व्यक्तिका स्वार्थ मुख्य बन जाता है। यही आज प्राय: हो रहा है।

कांग्रेस हो या अन्य कोई भी दल, हम हैं तो सब भारतीय ही। हमारा सभीका लक्ष्य होना चाहिये—'भारतका कल्याण' (और भारतके कल्याणद्वारा विश्वका कल्याण)। पर जबतक हमारे चरित्रमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, भोग-लिप्साका और अर्थका त्याग, सादगी, मितव्ययिता, संयम, परमत-सहिष्णुता, अधिकार-मदका अभाव, अभावग्रस्त दुःखी जनताके दुःखोंको अपना दुःख माननेकी वृत्ति; समन्वयात्मक सहयोगकी भावना तथा ईश्वरका भय नहीं आता, तबतक कांग्रेसकी या किसी भी दलकी सरकारें हों और वे

एक-दूसरेपर चाहे जितना दोषारोपण करती रहें, उनसे देशका कल्याण नहीं होगा।

जैसे चुनावके समय स्वतन्त्र तथा स्वस्थ निष्पक्ष चुनाव नहीं हुआ और जनतन्त्रके नामपर ऐसी-ऐसी बातें हुईं, जो जनतन्त्रके सिद्धान्तका ही नाश करनेवाली थीं। साम, दाम, दण्ड और भेद—चारों ही उपायोंसे काम लिया गया। वैसा ही सरकारोंके निर्माणके समय भी हुआ। एक-एक वोटके लिये लाख-लाख रुपयोंका प्रलोभन दिया गया, भय दिखाया गया, अपने दलकी मिथ्या प्रशंसा तथा प्रतिपक्षी दलकी अनर्गल मिथ्या निन्दा की गयी, भेद-नीतिसे बरगलाया गया, आपसमें फूट पैदा की गयी और आगे वैर लेनेकी धमकियाँ दी गयीं आदि। और वस्तुतः इन नीतियोंपर बनी सरकारोंका सहज ही वास्तविक देशहितके काममें लग जाना बहुत ही कठिन है, क्योंकि सरकारमें जिन्होंने विभिन्न पद प्राप्त किये हैं, प्रायः सभीका चित्त अभी अशान्त है।

वे निश्चिन्त तथा शान्त मनसे देशके हितकी बात सोचें कैसे? यह किसी दल या व्यक्ति-विशेषकी बात नहीं है। दल तथा व्यक्ति—सब हम ही तो हैं। पराया है कौन? सीमित स्वार्थने हमारी बुद्धिको तमसाच्छन्न कर दिया है और इसीसे हम अच्छी नीयत होनेपर भी तथा बुराई करनेकी इच्छा न होनेपर भी—**'अनिच्छन्नपि'**, **'बलादिव'** भलाईका त्याग और बुराईका ग्रहण कर रहे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। ऐसी परस्पर विरोधी सरकारें बननेके बदले सबकी मिली-जुली राष्ट्रीय सरकारें बनतीं तथा महात्मा गाँधीके आदर्शको सामने रखकर रचनात्मक कार्यक्रम सामने रखतीं तो बड़ा कल्याण होता। अभी तो हमारी सारी शक्ति, साधन, विचार, क्रिया परस्परके गिरानेमें खर्च हो रही हैं।

इसका कारण यही है कि हमारा जीवन-स्तर ही नीचा हो गया है। यह सभामंचके व्याख्यानों तथा वक्तव्योंसे नहीं उठ सकता, न कोई कानून ही हममें सुधार कर सकता है। यही कारण है कि अंग्रेजोंके जानेके बादसे घूसखोरी, विलासिता, चरित्रहीनता, वैरविरोध, हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दोष हमारे अंदर बढ़े हैं। यह राष्ट्रव्यापी रोग बातोंसे दूर नहीं होगा। इसके लिये चरित्रशुद्धि तथा चरित्रकी उच्चताकी परमावश्यकता है, जिसका आधार हमारी शिक्षा है। अतएव शिक्षा-पद्धतिमें शीघ्र-से-शीघ्र आमूल परिवर्तन करना होगा। जबतक धर्मशिक्षा नहीं होगी, तबतक सुधारकी आशा बहुत ही कम है।

वर्तमानमें तो सबसे पहले यह काम होना चाहिये कि दलोंकी भावनाको भूलकर सभी सरकारें परस्परमें सहयोग, प्रेम तथा समन्वयात्मक नीतिसे शासन करें। परस्परमें प्रेम तथा आदरका व्यवहार करें। सरकारके उच्चाधिकारी खण्डन-मण्डन छोड़कर केवल देशहितकी पवित्र दृष्टिसे ही सब बातें सोचें तथा करें। एक प्रदेश दूसरे प्रदेशके अभावको पूर्ण करे तथा एक ही शरीरके विभिन्न अंगोंकी भाँति सब सबकी पुष्टि तथा सबके स्वास्थ्य-साधनमें लगे रहें। स्वयं अपने उज्ज्वल तथा पवित्र चरित्रसे सभी विभागोंके सरकारी कर्मचारियोंके तथा जनताके चरित्रको उज्ज्वल तथा पवित्र बनायें और भगवान्से प्रार्थना करें कि वे किसीका भी विनाश न करके, सबको सद्बुद्धि प्रदान कर, सबको सबका हितैषी तथा सबका कल्याण-साधन करनेवाला बनायें। भगवान् सबका मंगल करें।

परमधाम

निर्गुण-निराकार स्वरूपके एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकता समझमें आनेवाली बात है; परंतु विविध विचित्र रूपोंमें प्रकट त्रिगुणातीत सगुण-साकारका एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकताकी बात समझमें नहीं आती। पर यह परम सत्य है कि वह सगुण-साकार तत्त्व नित्य अनेक होते हुए ही नित्य एक है और एक देशमें होते हुए ही सर्वत्र है। वह सबमें और उसमें सब है—इस अचिन्त्य, अनिर्वचनीय परमरहस्यका ज्ञान भगवत्कृपा-साध्य ही है।

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण अयोध्यानिवासियोंसे एक ही साथ पृथक्-पृथक् मिले। भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलमें सहस्र-सहस्र कृष्णरूपमें प्रकट थे। क्या यह भगवान्‌की माया थी ? जादू था ? नहीं, यह वास्तवमें भगवान्‌की स्वरूप-स्थिति है। वे एक रहते हुए ही अनन्त स्थानोंमें, अनन्त भक्तोंके सामने पृथक्-पृथक् स्थिर रहकर उनकी पूजा-अर्चना स्वीकार करते हैं। एक ही समय, एक ही साथ परस्पर-विरोधी गुणधर्मोंका आश्रय उनका स्वरूप है—'**अणोरणीयान् महतो महीयान्।**' वे ही एक भगवान् विभिन्न नित्य दिव्य लीलारूपोंमें लीलायमान हैं। सत्यस्वरूप, सत्यसंकल्प भगवान्‌का कुछ भी असत्य नहीं है। लीलाके अनुरूप ही उनके अनादि-अनन्त विभिन्न दिव्य नित्यलोक हैं—उनमें सृष्टि-प्रलयका कोई संस्पर्श नहीं है। इन सत्य दिव्यलोकोंकी भाँति ही इनकी विभिन्न विचित्र रचना, वहाँकी प्रत्येक अणु-महान् वस्तु, प्रत्येक स्थान, प्रत्येक पार्षद-परिकर, प्रत्येक निवासी, वहाँकी सभी लीलाएँ भी सत्य दिव्य हैं। सभी भगवत्स्वरूप हैं। इसी प्रकार वे एकदेशीय होनेपर भी सर्वदेशीय तथा सर्वदेशीय होनेपर भी एकदेशीय हैं, क्योंकि सब भगवत्स्वरूपकी ही अभिव्यक्ति है।

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप या मणिद्वीप आदि सभी

दिव्य परमधाम हैं। पृथक्-पृथक् होते हुए ही वे नित्य एक ही दिव्य परमधामके स्वरूप हैं। परमधाम कोई महाविशाल, अतिविस्तृत प्राकृतिक महाद्वीप, लोक, देश या स्थानविशेष नहीं है। जैसे भगवान् प्रकृतिसे प्रकृतिजनित तीनों गुणोंसे तथा सभी आवरणोंसे अतीत एवं प्राकृतिक पांचभौतिक आकार-शरीरसे अतीत निजस्वरूपभूत गुण-देह हैं, वैसे ही उनके ये धाम तथा धामगत पदार्थमात्र भी भगवत्स्वरूप ही हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

जहाँ भगवान्‌की नित्य दिव्य व्यक्त लीला है, वहीं दिव्य 'रस' और 'भाव' का प्रकाश है। 'रस'-स्वरूप भगवान् देव हैं और 'भाव'-स्वरूपा उनकी अभिन्न-तत्त्वह्लादिनी देवी हैं। भगवान् शक्तिमान् हैं, ह्लादिनी शक्ति हैं। दोनोंका नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण और प्रेममयी श्रीराधा, भगवान् श्रीविष्णु और भगवती श्रीलक्ष्मीजी, भगवान् श्रीराम और देवीशिरोमणि श्रीसीताजी, भगवान् श्रीशंकर और उनकी प्रिया सतीशिरोमणि श्रीसती देवी शक्तिमान् और शक्ति-स्वरूप हैं। श्रीदेवी-स्वरूपमें विपरीत लीला है। वहाँ शक्तिका स्वामित्व है, शक्तिमान्‌की वश्यता है, पर वहाँ भी है—वही अभिन्न शक्ति शक्तिमान् तत्त्व ही। ये सभी एक ही नित्य दिव्य लीलाके नित्य स्वरूप हैं, परम सत्य हैं, महात्माओं तथा संतोंके द्वारा अनुभूत उपलब्ध और सेवित हैं।

जैसे एक ही भगवान्‌के प्रत्येक स्वरूपमें उस एकको प्रधानता तथा अन्यान्य सभी रूपोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है, वैसे ही उनके प्रत्येक दिव्यलोकमें उस एकको प्रधानता तथा अन्यान्य लोकोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है। उनमें कोई श्रेष्ठ और कनिष्ठ नहीं है। सभीमें नित्य एकत्व, समत्व तथा श्रेष्ठत्व है। भक्त अपने भावानुसार एकको सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ देखता तथा दूसरोंको उससे कनिष्ठ देखता

कौन कर्मबन्धनसे मुक्त होते तथा स्वर्गको जाते हैं

जो मनुष्य सब प्रकारके बाहरी बनावों—चिह्नोंसे रहित, सत्यधर्मके परायण तथा शान्त हैं, जिनके सभी संशय नष्ट हो गये हैं, वे अधर्म या धर्मसे नहीं बँधते। जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग हैं, वे पुरुष कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसीकी हिंसा नहीं करते तथा किसीके प्रति आसक्त नहीं होते, वे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। जो प्राणिसंहारसे दूर रहनेवाले, सुशील, दयालु, प्रिय और अप्रियको समान समझनेवाले तथा जितेन्द्रिय हैं, वे भी कर्मोंसे नहीं बँधते। जो सब प्राणियोंपर दया रखते, सब जीवोंके लिये विश्वासपात्र बने रहते और हिंसापूर्ण बर्तावका त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोक जानेवाले हैं। जो पराये धनके प्रति कभी ममता नहीं रखते और परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहते हैं तथा जो धर्मतः प्राप्त अर्थका ही उपभोग करनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो पर-स्त्रियोंके प्रति सदा माता, बहिन और पुत्रीका-सा बर्ताव करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते, ऋतुकाल आनेपर ही पत्नीके साथ समागम करते तथा विषयसुखोंके उपभोगमें आसक्त नहीं होते, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके यात्री होते हैं। जो अपने सदाचारके कारण परायी स्त्रियोंकी ओरसे सदा आँखें बंद किये रहते हैं, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखते और शीलकी सदा रक्षा करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह देवमार्ग है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।* जो वासनाद्वारा

* विद्वान् पुरुषोंको सदा उसी मार्गका सेवन करना चाहिये।

निर्मित न हो, जिसमें किसीका भी अपकार न होता हो और जहाँ दान, सत्कर्म, तपस्या, शील, शौच और दया-भावका दर्शन होता हो। स्वर्गमार्गकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसके विपरीत मार्गका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

जो अपने अथवा दूसरेके लिये अधर्मयुक्त बात नहीं कहते और कभी झूठ नहीं बोलते, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो जीविका अथवा धर्मके लिये स्वेच्छासे ही कभी असत्य भाषण नहीं करते, अपितु स्पष्ट, कोमल, मधुर, पापरहित एवं स्वागतपूर्ण वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो कठोर, कड़वी तथा निष्ठुर बात मुँहसे नहीं निकालते, चुगली नहीं खाते, साधुतासे रहते हैं, कठोर भाषण और परद्रोह त्याग देते हैं तथा सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंके प्रति सम एवं जितेन्द्रिय होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो शठोंसे बात नहीं करते, विरुद्ध कर्मोंको त्याग देते, कोमल वचन बोलते, क्रोध न करके मनोहर विनम्र वाणी मुँहसे निकालते और कुपित होनेपर भी शान्ति धारण करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह वाणीद्वारा पाला जानेवाला धर्म है। शुभ तथा सत्य गुणोंवाले विद्वान् मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।

निर्जन वनमें रखे हुए पराये धनपर जब दृष्टि पड़े, उस समय जो मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। इसी प्रकार जो परायी स्त्रियोंको एकान्तमें पाकर मनके द्वारा भी कामवश उन्हें नहीं ग्रहण करते, जो शत्रु और मित्रको सदा एकचित्तसे अपनाते, शास्त्रोंका अध्ययन करते, पवित्र एवं सत्यप्रतिज्ञ होते और अपने-अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं, जिनसे दूसरे जीवोंको कभी कष्ट नहीं पहुँचता और जिनके चित्तमें सदा मैत्रीका भाव बना रहता है, जो सब प्राणियोंपर निरन्तर दयाभाव बनाये

रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो ज्ञानवान्, क्रियावान्, क्षमावान्, सुहृद्, प्रेमी, धर्माधर्मके ज्ञाता और शुभाशुभ कर्मोंके फलसंग्रहके प्रति उदासीन रहते हैं, जो पापियोंको त्याग देते, देवताओं और द्विजोंकी एवं गौओंकी सेवामें संलग्न रहते और गुरुजनोंके आनेपर खड़े होकर उनका स्वागत-सम्मान करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं।

जो शुभ कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करता है, प्राणियोंकी हिंसासे सदा दूर रहता है, जो शस्त्र और दण्डका त्याग करके कभी किसीकी हिंसा नहीं करता, न मरवाता है, न मारता है और न मारनेवालेका अनुमोदन ही करता है, जिसका सभी प्राणियोंके प्रति स्नेह है तथा जो अपने और परायेमें समान भाव रखता है, ऐसा पुरुष सदा देवपदको प्राप्त होता है। वह अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त देवोचित सुख-भोगोंका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। वह यदि कभी मनुष्य-लोकमें आता है तो उसकी बड़ी आयु होती है। यह बड़ी आयुवाले सदाचारी एवं पुण्यात्मा मनुष्योंका मार्ग है। जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे इसकी प्राप्ति होती है।

जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुःखी और आतुर आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है, जो यज्ञमण्डप, धर्मशाला, पौंसला तथा पुष्करिणी बनवाता है, मन और इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्धभावसे नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करता है, आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, खेतीकी उपज तथा खेत आदि वस्तुओंका सदा ही शान्तचित्तसे दान करता है, ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि वनोंमें प्रसन्नतापूर्वक विहार करता है। वहाँसे च्युत होनेपर यह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवांछित गुणोंसे युक्त,

प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। जो दानशील महाभाग प्राणी है, ब्रह्माजीने उसे सर्वप्रिय बतलाया है।

जो न दम्भी है, न मानी है, जो देवता और अतिथियोंका पूजक, लोकहितैषी, सबको नमस्कार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी चेष्टाओंसे दूसरोंका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंको सदा प्रिय माननेवाला, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, कोमलस्वभाव, सबसे स्वागतपूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिवत् सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देनेयोग्य पुरुषोंको मार्ग देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथिको अन्नका अग्रभाग अर्पित करनेवाला है ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है।

जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है, सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है, पिताके समान निर्वैर होता है, दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डराता है और न मारता ही है, जिसके हाथ-पैर वशमें होते हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंका विश्वासपात्र है, रस्सी, डंडा, ढेला अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता, शुभ कर्म करता और सबपर दया रखता है—ऐसे शील और आचरणवाला मनुष्य स्वर्गमें जाता है। वहाँ देवताओंकी भाँति वह दिव्य भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुण्यक्षयके पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें क्लेशरहित एवं निर्भय होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युदयशील होता है। वह सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है।

जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके शुभ कर्मका सेवन करते हैं, वे इस लोकमें सुखसे रहते और अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर कभी मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब सुखी तथा बुद्धिमान् होते हैं।

धृतिका स्वरूप

धृति कहते हैं—धैर्यको और धारणशक्तिको। जगत्‌की निन्दा-स्तुतिमें, विपरीत परिस्थितियोंमें, बड़ी-से-बड़ी विपत्तियोंमें और बार-बार प्राप्त होनेवाली असफलताओंमें भी धैर्यवान् पुरुष न्यायपथसे—धर्मके मार्गसे विचलित नहीं हुआ करते। यह धैर्य धर्मका ही एक स्वरूप है।

धारणशक्ति तीन प्रकारकी होती है। भगवान्‌ने गीतामें अर्जुनको इसके तीन भेद बतलाये हैं—

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥

(१८। ३५)

'पार्थ! दुर्बुद्धि मनुष्य जिस धृतिसे स्वप्न, भय, शोक, विषाद और मदको नहीं छोड़ता, इन्हें धारण ही किये रहता है, वह धृति तामसी है।'

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥

(१८। ३४)

'अर्जुन! (भोगोंकी) अत्यन्त आसक्तिसे फलकी इच्छावाला पुरुष जिस धृतिके द्वारा धर्म, अर्थ और कामको धारण किये रहता है, पार्थ! वह धृति राजसी है।'

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

(१८। ३३)

'पार्थ! जिस अव्यभिचारिणी धृतिसे पुरुष योगके द्वारा मन,

प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको धारण करता है, वह धृति सात्त्विकी है।' उपर्युक्त त्रिविध धृतिका आशय है—

जो बुद्धि अधर्मको धर्म, पापको पुण्य, अकर्तव्यको कर्तव्य—इस प्रकार सर्वत्र विपरीत निश्चय करती है तथा जीवनको विपरीत ही दिशामें—पतनोन्मुख या नरकोन्मुख ही चलाती है—ऐसी तामसी दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य या तो निद्रा, आलस्य, अकर्मण्यतामें जीवन खोता है या दूसरोंके अहितकी भावना और चेष्टामें प्रकारान्तरसे अपने ही अनिष्ट-सम्पादनमें लगा रहता है। वह अपनी दुर्बुद्धिके कारण पद-पदपर अनेकों शत्रुओंका और प्रतिकूल स्थितियोंका निर्माण करता रहता है। इससे उसको प्राप्त धन, जन, मान, अधिकार आदि पदार्थोंके नाशका, मरणका, सुखके विनाश और दुःख-प्राप्तिका भय निरन्तर लगा रहता है। वह विभिन्न प्रकारकी नयी-नयी बुरी चिन्ताओंसे सदा शोकाकुल रहता है और धन, जन, मान, अधिकारादिके नाशसे विषादमें डूबा रहता है। साथ ही, धन, जन, मान, अधिकार आदिके प्राप्त होते ही उनके नशेमें चूर होकर उन्मत्तकी भाँति यथेच्छाचार करने लगता है।

इन सब अनर्थोंमें ही उसकी धारणशक्ति निरन्तर लगी रहती है। यह तामसी धृति है, जो सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि वह अधर्ममयी ही है। अधर्म वही है, जिससे अपना तथा दूसरोंका परिणाममें अहित हो।

रजोगुणका रूप ही है—भोगासक्ति। '**रजो रागात्मकं विद्धि**' और आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है—'**संगात् संजायते कामः**' अतः जिसका मन भोगोंमें अत्यन्त आसक्त है और भोगरूपी फलकी ही सदा आकांक्षा करता है, ऐसा मनुष्य भोगोंको ही जीवनका एकमात्र लक्ष्य मानकर यथेच्छ भोग-प्राप्तिके लिये ही सदा धर्मका सेवन करता है, भोगके लिये ही अर्थका अर्जन करता है और भोगोंके उपभोगमें अटलरूपसे लगा रहता है। इसी धारणशक्तिसे वह भोग-कामनाओंसे

अंधा हुआ समस्त ज्ञान-विज्ञानका इसीके लिये प्रयोग करता है, इन्हीं धन, पद, अधिकार, शरीरका आराम, इन्द्रियोंके विषय आदि भोगोंके लिये दलबंदी करता, चोरी-बेईमानी करता, लोगोंको धोखा देता, व्यापारमें नाना प्रकारकी बेईमानी करता, चीजोंमें मिलावट करता, घूस-रिश्वत लेता, भाँति-भाँतिके भ्रष्टाचार-अनाचार-दुराचार करता, वैर-विरोध तथा कलह-युद्धमें प्रवृत्त रहता और ऐसे काम कर बैठता है, जो परिणाममें आलस्य, प्रमाद, भय, शोक, विषाद, अशान्ति आदिकी उत्पत्ति करके उसके लोक-परलोकको दुःखमय बना देते हैं। इस प्रकारके कार्योंमें लगी हुई धारणशक्ति राजसी है। यह भी त्याज्य ही है।

मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—भगवत्प्राप्ति या आत्म-साक्षात्कार। इस भगवत्प्राप्तिकी अनन्य इच्छासे पुरुष भगवान्‌के साथ आभ्यन्तरिक संयोग किये हुए अध्यात्मचेतसा मन, प्राण और इन्द्रियोंके द्वारा यथायोग्य यथाधिकार यथारुचि विभिन्न कार्योंका सम्पादन करता है। अर्थात् मनके द्वारा भगवत्प्राप्तिके अनुकूल साधनोंकी बात ही सोचता है, उन्हींको जीवनमें उतारता है और इन्द्रियोंके द्वारा सदा उन्हीं कार्योंमें लगा रहता है। एक क्षणके लिये भी तनिक भी इस भगवत्प्राप्तिरूप उद्‌देश्य तथा इसीकी प्राप्तिके साधनरूप कर्मोंसे विचलित नहीं होता, सदा अटल रहता है, उसकी धारणशक्ति सात्त्विकी है। ऐसा पुरुष सदा ऊँचा उठता रहता है—'**ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः**'। उसके द्वारा जो कुछ भी कार्य होते हैं, सब उसके तथा जगत्‌के सभी प्राणियोंके लिये हितकर, कल्याणकर होते हैं। यह धृति ही परम धर्म है और इस धृतिके सम्पादनका प्रयत्न धर्म है।

परमार्थके साधकमात्र इस धृतिके उदाहरण हैं।

परस्वापहरण-त्याग या अस्तेय-धर्म

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भागवत ७। १४। ८)

'मनुष्योंका अधिकार या हक उतने ही धनपर है, जितने-से उनके पेट भर जायँ, इससे अधिकको जो अपना मानता है, वह चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये।'

श्रीमद्भागवतमें ये देवर्षि नारदके वचन हैं युधिष्ठिरके प्रति। यह केवल अस्तेय-व्रतका ही लक्षण नहीं है, यह वह सिद्धान्त है, जिसका पालन करनेपर विश्वकी सारी आर्थिक विषमताओंका नाश हो जाता है और विभिन्न वादोंकी जो अर्थ-व्यवस्थाको लेकर परस्पर झगड़ते रहते हैं—सारी समस्याओंका समाधान हो जाता है। हमारे भारतीय ऋषियोंका यही साम्यवाद है, जिसमें कहीं भी हिंसा-प्रतिहिंसा नहीं है और सबको सबकी न्यायप्राप्त अर्थ-सम्पत्ति तथा सुख-सुविधा मिल जाती है। जब समाजमें सभी लोग पेट भरने-जितने धनपर ही अपना अधिकार मानें, तब न तो किसीके पास अधिक संग्रह होगा न कोई अभावग्रस्त ही रहेगा। इसी साम्यवादके प्रचार-प्रसार तथा जीवनमें धारण करनेकी आवश्यकता है। आज इस साम्य-धर्मका जो सनातन धर्मका एक स्वरूप-लक्षण है, लोप-सा हो गया है। इसीसे चारों ओर नीच स्वार्थका विस्तार हो रहा है और इसीसे कई प्रकारकी सभ्यताकी पोशाकमें छिपे हुए परस्वापहरण या चोरी-जैसे पापको आजके लोगोंने न्यायसंगत मान लिया है। इसीसे 'अस्तेय' व्रत केवल ग्रन्थोंमें पढ़नेकी चीज रह गया है। यहाँ अस्तेयका आजकल कैसे नाश हो रहा है, अति संक्षेपमें इसपर कुछ विचार किया जाता है।

दूसरेकी किसी भी वस्तु जड-चेतन, प्राणिपदार्थ या स्वत्व-अधिकार आदिका हरण कर लेना 'स्तेय' है। स्तेयका अर्थ है—चोरी और चोरी न करनेका नाम 'अस्तेय' है। चोरीके कई प्रकार हैं। अन्यायी राजा या शासनके द्वारा प्रजाके न्याय्य अधिकारोंका हरण किया जाना, प्रजापर बड़े-बड़े अनुचित कर लगाकर अपना स्वार्थ-साधन करना, भूमि-अधिकारियोंका गरीबोंसे न्यायके विरुद्ध कर वसूल करना, न्यायाधीशों तथा अन्य अधिकारियोंका रिश्वत लेकर अन्याय करना, कर्तव्यपालनमें प्रमाद करना और अवैध कार्य करनेवालोंकी सहायता करना, बड़े-बड़े उद्योगोंके संचालकोंका झूठे कागजात बनवाकर शेयर-होल्डरोंके न्याय नफेके पैसोंको स्वयं हड़प लेना तथा मजदूरोंको पेटभर मजदूरी न देना, मजदूरोंका वेतन या पारिश्रमिक लेकर भी स्वीकृत कार्य पूरा समय देकर सुचारुरूपसे न करना, व्यापारियोंका बढ़िया ले लेना, नाप-तौल या संख्यामें अधिक ले लेना या कम देना, किसीको रिश्वत देकर अन्यायपूर्वक आर्थिक लाभ उठाना, एक चीजमें दूसरी चीज मिलाकर देना, एक चीजको दूसरी बताकर बेचना, सस्ता समझकर चोरीका माल खरीदना, जबान पलट जाना, झूठे समाचार गढ़कर लोगोंको धोखेमें डालना, अधिक ब्याज लेकर गरीबोंकी सम्पत्तिका हरण करना, झूठे दस्तावेज लिखना-लिखवाना, किसी दूसरे कार्यके लिये मिली हुई चीजोंको उस काममें न लगाकर ऊँचे दरमें बाजारमें बेच देना।

रास्तेमें या रेलके डिब्बेमें मिली हुई दूसरोंकी चीजको पुलिस आदिमें जमा न करवाकर स्वयं रख लेना, लोभी व्यापारी तथा रेलवे अधिकारियोंद्वारा बिना माल चालान किये ही मालकी, कम चालान करके ज्यादा मालकी और दूसरी चीज चालान करके दूसरी चीजकी बिल्टी (रेलवे-रसीद) बनवा लेना और रेलवेसे रुपये वसूल करके न्यूनाधिक रूपमें आपसमें बाँट लेना, लोभी वकीलोंका रुपयोंके

लोभसे अनुचित सलाह देकर मुकदमे लड़वाना तथा अपने मुवक्किलोंको झूठे दस्तावेज और झूठे गवाह बनाकर न्यायसे बचनेके एवं असत्य तथा चोरीके नये-नये तरीके बतलाना और न्यायाधीशोंको रिश्वत देने-दिलानेकी व्यवस्था करना, डॉक्टर-वैद्योंका लोभवश रोगीको झूठे रोग बढ़ाकर रोग बतलाना, इंजीनियरों, ओवरसियरों, अन्य अधिकारियों, लेखा-जोखा रखनेवालों तथा क्लर्कोंसे मिलकर ठीकेदार या माल सप्लाई करनेवाले लोगोंका बिना काम किये या बिना माल सप्लाई किये झूठे बिल बनाकर रुपये हड़प लेना, पूरा काम बिना किये, पूरा माल बिना दिये, खराब काम किये तथा घटिया माल दिये जानेपर भी पूरी कीमत ले लेना, रिश्वत देकर दूसरोंकी अपेक्षा अधिक कीमतपर टेंडर पास करवा लेना तथा फिर मनमानी करना—इस प्रकार अन्यायका धन लेकर न्यूनाधिक रूपमें बाँट लेनेवाले ठेकेदार, आर्डर-सप्लायर और इंजीनियर, ओवरसियर, लेखा-जोखा करनेवाले, बिल आदि पास करनेवाले, क्लर्क एवं रुपये चुकानेवाले—सभी चोरीके अपराधी होते हैं।

इस प्रकारकी चोरियाँ आजकल बहुत बढ़ गयी हैं और सुरसाके वदनकी तरह बढ़ती ही जा रही हैं। मानो सारा समाज ही इस मधुर परंतु भीषण विषसे आक्रान्त हो गया है। लोगोंके मनोंसे इस प्रकारके कार्योंसे पापबुद्धि और घृणा निकल गयी है और वे इसमें बुद्धिमानी तथा गौरवका अनुभव कर रहे हैं। सभ्य पोशाकोंसे सजे हुए लोग शानदार आफिसोंमें बैठकर कागज-कलमकी सहायतासे आज जो विभिन्न प्रकारकी असंख्य चोरी-डकैतियाँ कर रहे हैं, वे बड़ी ही भयानक हैं। सबसे बुरी बात तो यह है कि समाज आज इन पापभरी क्रियाओंको चतुरता या धनार्जन-कुशलता मानने लगा है और ऐसी चोरी करके धनी बने हुए लोगोंका समाजमें बड़ा आदर-सम्मान

है—उन दिव्य लोकोंका तथा भक्तहृदयका यह अनुपमेय अनन्य वैचित्र्य सदा ही आह्लादजनक है, पर वैसे यह नित्य अभेदमें ही भेद-दर्शन है।

जहाँ 'वैकुण्ठ' की प्रधानता है, वहाँ गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप आदि उसमें गौणरूपसे विद्यमान हैं और चतुर्भुज 'भगवान् विष्णु' ही वहाँ सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ गोलोककी प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, साकेत, कैलास, देवीलोक गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'मुरलीमनोहर द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'साकेत' की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, गोलोक, कैलास, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'धनुर्धर भगवान् श्रीराम' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'कैलास' का प्राधान्य है, वहाँ वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'कर्पूरगौर भगवान् श्रीशंकर' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। इसी प्रकार भगवती श्रीदेवीजी तथा देवीलोककी प्रधानतामें कैलास, वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत आदि गौणरूपसे विद्यमान हैं। दिव्य गणपति तथा दिव्य सूर्यलोकके लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये। पर यह केवल समझनेकी बात या कोई 'अर्थवाद' नहीं है। वास्तवमें यह नित्य परम सत्य है।

प्रत्येक दिव्यलोक—परमधाम उसके प्रधान भगवत्-स्वरूपकी महत्ताको घोषित करता हुआ उस रूपकी आराधना करनेवालोंकी निष्ठाको पुष्ट तथा संतुष्ट करता है और उन भक्तोंके तत्त्वज्ञानमें तनिक भी त्रुटि न रहनेपर भी उनके नित्य-नित्य लीलानन्द-महासुधार्णवमें निमग्न रखता है।

वास्तवमें भगवान्के स्वरूपका रहस्य भगवान् ही जानते हैं। भगवान्की दृष्टि भगवान्से अभिन्न है और उनकी दृष्टिमें जो कुछ है, वही सत्य है। उनकी दृष्टिमें ऐसा ही विश्वास होता है कि उनके अपने सिवा कुछ है ही नहीं!

होता है! वे ही धर्मात्मा, नेता, अग्रणी या पंच माने जाते हैं। इससे स्वाभाविक ही अन्य लोगोंके मनमें भी इस प्रकार धनी बनकर भोग-विलास या मौज-शौक करने और आदर-सम्मान पानेकी कामना-लालसा उत्पन्न होती है। ऐसी चोरी-डकैतियाँ प्राय: पकड़ी भी नहीं जातीं, क्योंकि ये प्राय: होती हैं उन्हीं लोगोंके द्वारा जो समाजमें ऊँची रहन-सहनवाले, सभ्य, शिक्षित, अधिकारी, न्यायकारी, धर्मात्मा, उदार, लोकसेवक या देशभक्त कहे जाते हैं। जितने ही अधिक कानून बनते हैं, उतना ही इस प्रकारकी चोरी-डकैतियोंकी नयी-नयी सफल क्रियाओंका आविष्कार होता जाता है। कानून किताबोंमें रहता है और कानून बनाने-मनवानेवाले तथा कानून माननेवाले लोग आपसमें स्वार्थ-साधनका समझौता कर लेते हैं। पकड़े प्राय: वे ही जाते हैं, जो ऐसा समझौता नहीं कर पाते।

चोरीसे घृणा निकल जाने तथा उसमें गौरवबुद्धि हो जानेके कारण जिन क्षेत्रोंमें पहले रिश्वत-चोरी आदिकी सम्भावना या कल्पना भी नहीं थी, वहाँ भी चोरियाँ होने लगी हैं। शिक्षा-विभाग, डाक-विभाग आदि प्राय: चोरियोंसे सर्वथा अछूते समझे जाते थे। पर अब तो उनमें भी चोरी होती है। परीक्षामें पास होने-करानेमें सिफारिशोंके साथ ही घूस चलती है, अध्यापकोंकी नियुक्ति और वेतन-वितरणमें भी रिश्वत तथा चोरी चलती है। डाक-विभागमें भी तरह-तरहसे बीमा-रजिस्ट्री आदिकी चोरियोंके साथ ही अन्यान्य प्रकारोंसे भी चोरी होती है। रेलवेमें तो चोरियोंकी भरमार है। साहित्यिक चोरी भी कम नहीं होती। दूसरोंके मतों, विचारों, शब्दों तथा भावोंका अपहरण मजेमें चलता है। मन्दिरों, कीर्तनों, आध्यात्मिक आत्माओंके नामपर तथा उनमें भी कितनोंमें ही चोरी चलती है। 'कल्याण' में जो शिवके नामसे 'कल्याण' शीर्षक लेख छपता है, कई लोग अपनेको शिव बताकर उसके लेखकके नाते लोगोंको ठग चुके हैं।

जो लोग कपड़े, खानेकी चीजें, दवाइयाँ तथा अन्यान्य नित्य व्यवहारके पदार्थोंका अनावश्यक संग्रह करते हैं तथा जो लोग उच्चस्तरकी रहन-सहनके नामपर और देखा-देखी, झूठी शान दिखानेके लिये आवश्यकतासे अधिक अनाज-कपड़े आदि खरीदते, भाँति-भाँतिके कपड़े सिलवाते, बिना ही प्रयोजन भोज देते-लेते, विवाह-शादियोंमें अनाप-शनाप वस्तुओंका अपव्यय करते तथा विलासिताके वश होकर अनावश्यक आवश्यकता बढ़ाते रहते हैं, वे भी समाजकी बड़ी चोरी करते हैं। अनावश्यक संग्रह तथा व्यवहारके कारण प्रयोजनीय वस्तुओंका अभाव हो जाता है और उस अभावके कारण लाखों-करोड़ों मनुष्य भूखों मरते तथा पूरा अंग ढकनेके लिये वस्त्र नहीं पाते एवं इस प्रकार दैनिक जीवन-निर्वाहमें भी कष्ट भोगते हैं। सब लोग अनावश्यक संग्रह और व्यवहार करना छोड़ दें, आवश्यकताओंको बढ़ायें नहीं, क्रमशः घटाते हुए यथासाध्य कम-से-कम कर दें तो लोगोंको इतनी तंगी न भोगनी पड़े।

चोरी तो वह भी है जिसमें घरके लोगोंसे छिपाकर घरकी चीजको लेकर अपनी पेटीमें रख लिया जाता है और खाने-पीनेकी चीज हो तो उसे छिपाकर खा-पी लिया जाता है, सबसे अधिक भयानक मानस चोरी है, जो शारीरिक चोरीका मूल है। दूसरोंकी वस्तुओंपर मन चलाते रहना, उन्हें प्राप्त करनेके लिये मन-ही-मन कामना करना तथा उपाय सोचना।

अभिप्राय यह कि किसी भी कारणसे या किसी भी नामसे परस्वापहरणकी जो कुछ भी कामना, चेष्टा या क्रिया होती है, वह सभी चोरी और पाप है—इन सभी प्रकारकी चोरियोंसे बचना चाहिये।

सेवाका स्वरूप

भगवान्का भक्त, जो भगवान्की सेवाको ही जीवनका स्वरूप बना लेता है, निरन्तर भगवत्सुखार्थ भगवान्की सेवामें संलग्न रहता है। ऐसे सेवापरायण सेवकका कैसा भाव-स्वभाव होता है, भक्तराज प्रह्लादकी निम्नलिखित पावन वाणीमें उसके दर्शन कीजिये। भक्तवांछा-कल्पतरु भगवान् श्रीनृसिंहदेवने भक्तराज प्रह्लादसे जब वर माँगनेको कहा, तब प्रह्लादजी अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें भगवान्से कहते हैं— 'भगवन्! मैं तो जन्मसे ही भोगासक्त हूँ, मुझे आप वरोंका प्रलोभन मत दीजिये। मैं तो भोगोंके संगसे डरकर उनके द्वारा होनेवाली तीव्र वेदनाका अनुभव कर उनसे छूटनेकी इच्छासे ही आपकी शरणमें आया हूँ। जगद्गुरो! आप मेरी परीक्षा ही करते होंगे, नहीं तो दयामय! भोगोंमें फँसानेवाले वरकी बात आप मुझसे कैसे कहते? परंतु प्रभो—

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः॥

अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव॥

(श्रीमद्भागवत ७। १०। ४—६)

'जो सेवक स्वामीसे अपनी कामनाएँ पूर्ण कराना चाहता है, वह चाकर—सेवक नहीं है, वह तो लेन-देन करनेवाला बनिया है। जो स्वामीसे कामनापूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं और जो सेवकसे सेवा

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः॥

(श्रीमद्भागवत ३। २९। २१-२२)

'मैं आत्मारूपसे सदा सभी जीवोंमें स्थित हूँ, इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनादर करके केवल प्रतिमामें मेरा पूजन करते हैं, वह पूजन विडम्बनामात्र है। मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी जीवोंमें स्थित हूँ, ऐसी स्थितिमें जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमाके पूजनमें ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्ममें ही आहुति डालता है।'

इसीलिये चराचर प्राणिमात्रमें भगवान्‌को देखकर उनकी सेवा करनी चाहिये।

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥'

यह भगवत्सेवा ही वास्तविक सेवा है। यही सबसे ऊँची प्रेमभृत्यता है। भगवान् इस प्रेमसेवाके दिव्य मधुर रसका आस्वादन करनेके लिये नित्य निष्काम तथा नित्य तृप्त होनेपर भी सकाम और अतृप्त हो जाते हैं। इस दिव्य परम सेवाका उपदेश महात्माओंके पुण्य जीवनसे प्राप्त होता है।

रुचि-वैचित्र्य, तम-रज-सत्त्व गुण तथा मनुष्यकी मानस स्थितिके अनुसार सेवाके निकृष्ट-उत्कृष्ट बहुत-से रूप लोकमें प्रचलित हैं। जैसे—सेवा करना नहीं, पर सेवक कहलाना, सेवकके रूपमें अपनेको व्यक्त करना। यह दम्भ, पाखण्ड और पाप है।

किसी बड़े स्वार्थसाधनके उद्देश्यसे ही या बड़ा बदला पानेके लिये ही किसीकी कुछ सेवा करना—जैसे अधिकारियोंकी सेवा, व्यक्तिगतरूपमें मन्त्रियों आदिकी सेवा, इसी लक्ष्यसे संस्थाओंको तथा राजनीतिक पार्टियोंको दान आदि देना,

चुनावमें सहायता करना। चुनावमें जीतने या वोट पानेके लिये कहीं कुछ जनसेवा करके उसका विज्ञापन करना आदि। यह वास्तवमें न सेवा है, न दान। यह एक प्रकारसे थोड़ी पूँजी लगाकर बड़ा नफा करनेका व्यवसाय या जुआ है।

अपनेको उपकार करनेवाला मानकर सेवाका अभिमान करके सेव्यको अपनेसे नीचा मानना, उसपर अहसान करना; उसके द्वारा कृतज्ञता तथा प्रत्युपकार प्राप्त करनेका अपनेको अधिकारी समझना और न मिलनेपर उसे कृतघ्न मानना यह भी शुद्ध सेवा नहीं है, व्यापार ही है।

सेव्यके सुख-हित या उसके मनके प्रतिकूल अपने इच्छानुसार बर्ताव करके उसको सेवाके नामसे सेव्यपर लादना—यह भी सेवाकी विडम्बना ही है।

सेवा करनेकी शुद्ध इच्छासे अपनेको प्राप्त तन-मन-धनके द्वारा यथायोग्य सेव्यकी आवश्यकतानुसार सेवा करके प्रसन्नता या आत्मसंतोष प्राप्त करना—यह अच्छी सेवा है।

श्रद्धापूत हृदयसे सेव्यके सुख-हितके लिये अपनी इच्छाके विपरीत भी उसके मनोऽनुकूल सेवा करना तथा उसको सुखी देखकर परम सुखी होना—यह भी सराहनीय सेवा है।

अपनी प्राप्त वस्तुओंके द्वारा किसी अभावग्रस्तकी मूक सेवा करना, जिससे उसको यह पता भी न लगे कि यह सेवा कौन कर रहा है। कुछ वर्षों पूर्व एक अभावग्रस्त सम्भ्रान्त सज्जनने बताया था कि उनके पास घर-खर्चके लिये वर्षोंसे प्रतिमास विभिन्न नाम तथा स्थानोंसे अमुक रकम मनीआर्डरसे नियमित आती है, पर बहुत खोजनेपर भी भेजनेवालेका पता नहीं लगा। शबरीजी इसी भाँति

छिपकर चोरीसे ऋषियोंके आश्रमोंमें प्रतिदिन झाड़ू लगाकर कुशकण्टक दूर किया करती थीं। इसमें ख्यातिसे भय रहता है और सेवक कहलानेमें संकोच तथा लज्जाका बोध। यह श्रेष्ठ सेवा है।

जो सेवा सेवाके लिये ही होती है, सेवा किये बिना चैन नहीं पड़ता; रहा नहीं जाता, जो आत्मसंतोषके लिये ही सहजभावसे होती है, यह बहुत श्रेष्ठ सेवा है।

चराचर प्राणिमात्रमें एक आत्मा मानकर अपने-आपकी सेवाकी भाँति आवश्यकतानुसार जो सब प्रकारकी सेवा होती है—यह श्रेष्ठ आत्मसेवा है। इसमें प्राणियोंके सुख-दुःखकी अपनेमें अनुभूति होती है। यह आत्म-तत्त्वज्ञानकी परिचायक उत्कृष्ट सेवा है।

जड-चेतन जीवमात्रमें भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन कर भगवद्‌बुद्धिसे अपने प्रत्येक कर्मके द्वारा उनकी यथायोग्य सहज उत्साह-उल्लासपूर्ण सेवा होती है। उसके प्रत्येक कार्यसे जगत् चराचरके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् प्रसन्न होते हैं। यह सेवा उत्कृष्ट भगवत्पूजा है।

जिस सेवामें सेवकके अहंके सुख-कल्याणकी, स्वर्ग-मोक्षकी और दुःख-नरककी स्मृतिका ही सर्वथा अभाव रहता है; अपने प्रत्येक विचार, कर्म, पदार्थ आदिके द्वारा प्रियतमरूप भगवान्‌को सुख पहुँचाना ही जिसका अनन्य स्वभाव होता है, उसके द्वारा जो स्वाभाविक चेष्टा होती है, वह भुक्ति-मुक्तिको नगण्य मानकर उनके महान् त्यागके परम पवित्र अनन्य मधुर धरातलपर होनेके कारण—परम प्रेमरूप सर्वोत्कृष्ट परम सेवा है। इस सेवाकी कहीं तुलना नहीं है।

मनुष्यको सेवाका यही लक्ष्य सामने रखकर यथायोग्य सेवाके

पवित्र पथपर अग्रसर होते रहना चाहिये। ऐसी सेवा करनेवाले सेवकके पास आत्म-साक्षात्कार—कैवल्य मोक्षरूप सिद्धि तो स्वयमेव आती है और उसे स्वीकार करनेके लिये अनुनय-विनय करती है, उसे नित्य-मुक्त स्वरूप भगवान्‌को वशमें करके उन्हें निरन्तर बाँध रखनेवाला प्रेम प्राप्त होता है, जो मानव-जीवनके लिये साधन तथा साध्य दोनों है। निष्काम-कर्मरूप सेवा, भक्ति-साधनरूप सेवा, आत्मज्ञानरूप सेवाके साथ ही इस परम प्रेमरूप सेवाका आदर्श ग्रहण करके जीवनको धन्य बनाना चाहिये।

साधन सिद्धि राम पग नेहू।

काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते है—

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ रामपद पंकज नेहा॥
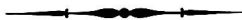
श्रीमद्भगवद्गीतामें मानवका त्रिविध स्वरूप और साधन

आर्यशास्त्रवेत्ता—सनातनधर्मीमात्र यह मानते हैं कि 'मानव-जन्म' भोगवासनाकी चरितार्थता या इन्द्रियोंके द्वारा विषय-सेवनके लिये नहीं मिला है। मानव-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है—'भगवत्प्राप्ति।' इसीको मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, आत्मसाक्षात्कार, स्वरूप-प्राप्ति, ब्रह्मज्ञान आदि विभिन्न नामोंसे साधना तथा रुचिभेदके अनुसार कहा गया है। जो मनुष्य इस परम लक्ष्यको सामने रखकर साधनामय जीवन यापन करता है, वही वस्तुतः 'मानव' कहलानेयोग्य है। भगवान्ने इस साधनाके श्रीमद्भगवद्गीतामें अधिकारी-भेदसे विभिन्न स्वरूप बतलाये हैं; उनमें तीन प्रधान हैं—ज्ञानप्रधान साधन, भक्तिप्रधान साधन और कर्मप्रधान साधन। तीनोंमें ही लक्ष्य भगवत्प्राप्ति ही है। इन तीनोंमेंसे किसी एकके अनुसार आचरण करनेवालेको ही गीतामें 'मानव' कहा गया है। 'मानव' शब्द गीतामें तीन स्थानोंमें आता है।

(१)

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

(गीता ३। १७)

भगवान् कहते हैं—'जिसकी आत्मामें ही रति है, जो आत्मामें ही तृप्त है और आत्मामें ही संतुष्ट है, उस मानवके लिये कुछ भी कर्तव्य (शेष) नहीं है। यह 'ज्ञानी मानव' का स्वरूप है। ऐसा मानव संसारके किसी भी प्राणिपदार्थमें रति नहीं करता, उसका मन किसी भी भौतिक वस्तुमें रमण नहीं करता, वह निरन्तर

कभी मत कहना।' इससे यह सिद्ध है कि जो भगवान्‌में—उनके लीला-गुण आदिमें दोष देखता है तथा श्रद्धा-सम्पन्न नहीं है, वह भगवान्‌के मतानुसार अपना जीवन नहीं बना सकता। परंतु जिनका भगवान्‌में श्रद्धा-विश्वास है, वे ही भगवान्‌की प्रीतिके लिये भगवान्‌के मतका अनुसरण करते हुए नित्य-निरन्तर जीवनके अन्तरतम प्रदेशमें विराजित भगवान्‌का भजन करते हैं और वे इसके फलस्वरूप कर्म-बन्धनसे (जन्म-मृत्युके चक्रसे) मुक्त होकर भगवान्‌के परमधामको, उनके दुर्लभ पार्षदत्वको अथवा अति दुर्लभ प्रेमको प्राप्त कर धन्य हो जाते हैं। ऐसे मानव ही यथार्थ मानव हैं। भगवान्‌ने इनकी महिमा गाते हुए इन्हें 'सर्वश्रेष्ठ योगी' बतलाया है। छठे अध्यायके अन्तमें भगवान् कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६।४७)

'सम्पूर्ण योगियोंमें जो श्रद्धावान् पुरुष मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, उसे मैं परम श्रेष्ठ मानता हूँ।'

ऐसा भक्त कैवल्य-मुक्ति न चाहकर निरन्तर भजनमें—सेवा-परायणतामें संलग्न रहना चाहता है। मानव-जीवनकी सफलता इसीमें है।

(३)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८।४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और यह सारा प्राणिजगत् जिससे व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मके द्वारा पूजा करके मानव परम सिद्धिको प्राप्त करता है।'

यह कर्मनिष्ठ (स्वकर्मके द्वारा चराचररूप भगवान्‌को पूजकर परम सिद्धि—मानव-जीवनकी परम और चरम सिद्धि, सफलताको प्राप्त करनेवाले) मानवका स्वरूप है।

ऐसा मानव यह समझ लेता है कि समस्त प्राणी भगवान्‌से ही निकले हैं और भगवान् ही सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं, अर्थात् प्राणिमात्रके रूपमें भगवान् ही अभिव्यक्त हो रहे हैं; अतः मनुष्य अपने सहज कर्मके द्वारा प्राणिमात्रकी यथोचित सेवा करके भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। जिससे सब निकले हैं और जो सबमें व्याप्त है, वह सर्वत्र तथा सदा है। उसकी पूजाके लिये बाहरी सामग्रीकी आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक कर्मके द्वारा प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थितिमें मानव उन भगवान्‌की पूजा करके जीवनको सफल बना सकता है। कर्मके द्वारा भगवत्पूजा (Work is Worship) का यह सिद्धान्त मानवके कर्मको पवित्रतम और आदर्श बना देता है और उसीके द्वारा प्राणिमात्रकी सफल सेवा होती है। ऐसे मानवमें राग-द्वेषका—सीमित ममता आसक्तिका, अभाव हो जाता है और वह परम श्रद्धा तथा विश्वासके साथ भगवान्‌के आज्ञानुसार उनकी प्रसन्नताके लिये समस्त विश्वके प्राणियोंकी अपने कर्मोंके द्वारा सेवा करके—समस्त प्राणियोंका हित तथा सुखसाधन करके जगत्‌में महान् आदर्श उपस्थित करता है और अपने दुर्लभ मानव-जीवनको सहज ही सफल बना लेता है।

गीतामें इन तीन प्रकारके मानवोंका कथन करके भगवान्‌ने थोड़े-से शब्दोंमें मानव-जीवनका उद्देश्य, मानव-जीवनकी सार्थकता तथा जीवन-सिद्धिके त्रिविध साधनोंका उल्लेख करके मानवको उसके स्वरूप तथा कर्तव्यका ज्ञान कराया है और यथायोग्य आचरण करके मानव-जीवनकी सफलताके लिये दिव्य उपदेश किया है।

मेरी प्रत्येक चेष्टा भगवान्‌की सेवा है

भगवान् सृष्टिके स्वामी हैं, इससे सृष्टिकी प्रत्येक वस्तु उनकी है। पर आजतक मैं अपने 'अहं' को अलग मानकर अपने उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंको 'अपनी' माने हुए था। इससे उन्हें मनमानी मात्रामें प्राप्त करनेमें, उनका यथेच्छ उपभोग करनेमें भाँति-भाँतिके अवांछनीय दुष्कर्म करनेमें नहीं हिचकता था। जो वस्तुएँ मेरे उपभोगसे अधिक थीं, उनका संग्रह करके मैं अपने अहंकारको और भी पुष्ट कर रहा था। अभावके रूपमें भगवान्‌की माँग उन संगृहीत वस्तुओंके लिये बराबर आती थी, किंतु मैं उसे क्यों सुनने लगा। पर भगवान् मुझे कब छोड़नेवाले हैं। आज उन्होंने स्वतः मेरे हृदयमें यह विवेक जाग्रत् कर दिया है कि मैं भगवान्‌का हूँ और जगत्‌की सब वस्तुएँ भगवान्‌की हैं। भगवान्‌ने सदुपयोग तथा सेवाके लिये एक ट्रस्टीकी तरह मुझे सब वस्तुएँ सौंपी हैं। ईमानदार ट्रस्टी या सेवकके नाते जगत्‌की उन वस्तुओंपर मेरा अधिकार है—पर मेरे अपने उपभोगके लिये नहीं, उन वस्तुओंके द्वारा भगवान्‌की सेवा करनेके लिये। मैं भगवान्‌का हूँ तो अब मेरी अपनी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे माध्यमसे होनेवाला प्रत्येक कार्य उन सर्वभूतस्थित भगवान्‌की सेवा है। भगवान्‌की सेवाके लिये अब मेरे शरीरकी उपस्थिति जबतक आवश्यक है, तबतक उसे उचित पोषण देना भी मेरे लिये भगवान्‌की सेवाका ही एक अंग है। इसी भावसे अब मैं शरीरका पालन-पोषण करूँगा। अब मेरे पास उचित उपयोगके अतिरिक्त वस्तुएँ संगृहीत नहीं रहतीं। अब उनका भगवान्‌की सेवामें उपयोग हो रहा है। इतना ही नहीं, अब मेरे जीवनकी प्रत्येक चेष्टा ही भगवान्‌की सेवा है।

वैष्णवताका स्वरूप

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

सर्व-त्याग करि जे सदा, सेवत हरि-पद-मूल।
बंदौं तिन वैष्णव-चरन सुचि पद-पंकज-धूल॥

वैष्णव-धर्मका प्राचीन नाम है—'सात्त्वतधर्म।' इसीके भक्त, भागवत, वैष्णव, पांचरात्र, वैखानस, कर्महीन आदि अनेक भेद प्राचीन शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। वैष्णव-धर्मका मूल वेद है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।

विष्णुके इस परमपदका सन्धान ही वैष्णव-धर्म है। वैष्णवोंने प्रधानरूपमें चार महान् सद्गुरुओंकी परम्परा स्वीकार की है—श्री, ब्रह्मा, रुद्र और सनकादि। इन्हींके नामोंपर सम्प्रदाय चले। आजकल सम्प्रदाय शब्दका बड़ा दूषित अर्थ किया जाता है, किसीको द्वेष-हिंसा करते देखकर ही उसे साम्प्रदायिक कह दिया जाता है। वास्तवमें सम्प्रदायका अर्थ है—

शिष्टानुशिष्टोपदिष्टो मन्त्रः सम्प्रदायः।

पूर्व आचार्यके समीप प्राप्त मन्त्र और साधनाका नाम ही सम्प्रदाय है। इसमें द्वेष-हिंसाकी तो कहीं कल्पना ही नहीं है और वैष्णव-सम्प्रदाय तो भूतमात्रमें भगवान्को देखकर अत्यन्त विनम्रभावसे सबको नमस्कार, सबकी सेवा तथा सबका हित-साधन करता है। उपर्युक्त चार गुरु-परम्पराओंसे बने हुए चार सम्प्रदाय प्रधान माने जाते हैं—

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः॥
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुस्सनः॥

श्रीलक्ष्मीजीकी कृपासे रामानुज, ब्रह्माकी अनुकम्पासे मध्वाचार्य, रुद्रके अनुग्रहसे विष्णुस्वामी और सनकादि मुनियोंके प्रसादसे निम्बार्काचार्य साधनाका सन्मार्ग दिखलाते हुए आचार्यपदपर प्रतिष्ठित हुए। श्रीवल्लभाचार्य, श्रीविष्णुस्वामीके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायके ही आचार्य माने जाते हैं। कुछ महानुभाव इनके पुष्टिमार्गको पृथक् भी मानते हैं। बंगालकी वैष्णव-प्रेम-सुधा-धारा बहुत अंशमें श्रीमध्वाचार्यके मतसे प्रभावित है, ऐसा महानुभावोंका मानना है। इनमें श्रीरामानुजका श्रीसम्प्रदाय विशिष्टाद्वैतवादी और भगवान् लक्ष्मीनारायणका उपासक है। श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवादी और श्रीराधाकृष्णका उपासक है। श्रीविष्णुस्वामी या वल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवादी और श्रीबालगोपालका उपासक है। श्रीनिम्बार्काचार्यका द्वैताद्वैतवादी और श्रीराधाकृष्णका उपासक है एवं बंगालके प्रेमके ठाकुर श्रीगौरांगदेवका गौड़ीय सम्प्रदाय अचिन्त्य भेदाभेदवादी कहा जाता है तथा श्रीराधाकृष्णका उपासक है। ये सभी एक ही परमतत्त्वकी उपासना सुधासरिताकी परम मधुर सुधातरंगें हैं और ये सभी वस्तुतः 'सात्त्वत' सम्प्रदायके ही अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त श्रीरामानन्दाचार्यका सम्प्रदाय भी प्रमुख वैष्णवसम्प्रदाय है। और भी बहुत ही शाखा-उपशाखाएँ वैष्णव-सम्प्रदायोंकी हैं। महाराष्ट्रमें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्तावाई, नामदेव, तुकाराम, गुजरातके श्रीनरसिंह मेहता, उत्तर भारतके सूरदास, तुलसीदास आदि, आसामके श्रीशंकरदेव, राजस्थानकी मीराबाई आदि सभी वैष्णवाग्रणी संत हुए हैं। दक्षिणमें श्रीरामानुजाचार्यसे बहुत पहले श्रीशठकोप, विष्णुचित्ति, भक्तपदरेणु, कुलशेषर और देवी अण्डाल आदि अल्वार वैष्णव महात्मा हो गये हैं, जो प्रेमोन्मत्तताके परम आदर्श हैं। ये सभी वैष्णव-धर्मके परम सुन्दर स्वरूपका ही प्रकाश करते हैं।

वेद, उपनिषद्, नारद-पांचरात्र, महाभारत, रामायण, पुराण, तन्त्र आदि असंख्य महामान्य ग्रन्थोंमें वैष्णव-धर्मके लक्षणोंका तथा इतिहासका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। श्रीमद्भागवतके, जो वैष्णवोंका सर्वमान्य ग्रन्थ है तथा जो परमहंससंहिताके नामसे प्रख्यात है, ग्यारहवें स्कन्धमें भागवतधर्मके वर्णन-प्रसंगमें वैष्णवता या वैष्णवोंका स्वरूप-लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(११। २। ४५)

'आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे—नियन्तारूपसे स्थित हैं। जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ताको ही देखता है और साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान्में ही स्थित है—वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही है—इस प्रकारका जिसका अनुभव है, उसे भगवान्का परम प्रेमी उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव समझना चाहिये।'

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥

(११। २। ४६)

'जो भगवान्से प्रेम, उनके भक्तोंसे मित्रता, दुःखी और अज्ञानियोंपर कृपा तथा भगवान्से द्वेष करनेवालोंकी उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटिका भागवत—वैष्णव है।'

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥

(११। २। ४७)

'जो भगवान्के अर्चा-विग्रह—मूर्ति आदिकी पूजा तो श्रद्धासे

करता है, परंतु भगवान्‌के भक्तों या दूसरे लोगोंकी विशेष सेवा-शुश्रूषा नहीं करता, वह साधारण श्रेणीका भगवद्भक्त—वैष्णव है।'

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः॥

(११।२।४८)

'जो कर्ण, नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोंका ग्रहण तो करता है, परंतु प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान्‌की लीला—माया है, वह पुरुष उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव है।'

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो
जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः
स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः॥

(११।२।४९)

संसारके धर्म हैं—'जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट, भय और तृष्णा। ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं। जो पुरुष भगवान्‌की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे तनिक भी मोहित नहीं होता, वह उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव है।'

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥

(११।२।५०)

'जिसके मनमें विषय-भोगकी इच्छा, विषयार्थ कर्म-प्रवृत्ति और उनके बीज—वासनाओंका उदय नहीं होता और जो

एकमात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त—श्रेष्ठ वैष्णव है।'

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः।
सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे वै स हरेः प्रियः॥

(११। २। ५१)

'जिसका इस शरीरमें न तो सत्कुलमें जन्म एवं तपस्या आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एवं जातिमें ही अहंभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान् श्रीहरिका प्यारा वैष्णव है।'

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥

(११। २। ५२)

'जो धन, सम्पत्ति अथवा शरीर आदिमें यह अपना है और यह पराया—इस प्रकारका भेद-भाव नहीं रखता, समस्त पदार्थोंमें समस्वरूप परमात्माको देखता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्पसे विक्षिप्त न होकर शान्त रहता है, वह भगवान्का उत्तम भक्त—श्रेष्ठ वैष्णव है।'

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

(११। २। ५३)

राजन्! बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं—'भगवान्के ऐसे चरणकमलोंमें आधे क्षण, आधे पलके लिये भी जो कभी नहीं हटता, निरन्तर उन चरणोंकी संनिधि और सेवामें ही संलग्न रहता है; यहाँतक कि त्रिभुवनकी राज्यलक्ष्मी दी जानेपर भी वह भगवत्स्मृतिमें निरन्तर

'पहले शरीर, संतान आदिमें मनकी अनासक्ति सीखे। फिर भगवान्‌के भक्तोंसे प्रेम कैसा करना चाहिये—यह सीखे। इसके पश्चात् प्राणियोंके प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनयकी निष्कपट भावसे शिक्षा ग्रहण करे।'

शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः॥

(११।३।२४)

'मिट्टी, जल आदिसे बाह्य शरीरकी पवित्रता, छल-कपट आदिके त्यागसे भीतरकी पवित्रता, अपने धर्मका अनुष्ठान, सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें हर्ष-विषादसे रहित होना सीखे।'

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्।
विविक्तचीरवसनं संतोषं येन केनचित्॥

(११।३।२५)

'सर्वत्र अर्थात् समस्त देश, काल और वस्तुओंमें चेतनरूपसे आत्मा और नियन्तारूपसे ईश्वरको देखना, एकान्त सेवन, यही मेरा घर है—ऐसा भाव न रखना, गृहस्थ हो तो पवित्र वस्त्र पहनना और त्यागी हो तो फटे-पुराने पवित्र चिथड़े, जो कुछ प्रारब्धके अनुसार मिल जाय, उसीमें संतोष करना सीखे।'

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥

(११।३।२६)

'भगवान्‌की प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा और दूसरे किसी भी शास्त्रकी निन्दा न करना, भगवच्चिन्तनके द्वारा मनका, मौनके द्वारा वाणीका और वासनाहीनताके अभ्याससे

कर्मोंका संयम करना, सत्य बोलना, इन्द्रियोंको अपने-अपने गोलकोंमें स्थिर रखना और मनको कहीं बाहर न जाने देना सीखे।'

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥

(११। ३। २७)

'राजन्! भगवान्की लीलाएँ अद्भुत हैं। उनके जन्म, कर्म और गुण दिव्य हैं। उन्हींका श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना तथा शरीरसे जितनी भी चेष्टाएँ हों सब भगवान्के लिये करना सीखे।'

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्॥

(११। ३। २८)

'यज्ञ, दान, तप अथवा जप, सदाचारका पालन और स्त्री, पुत्र, घर, अपना जीवन, प्राण तथा जो कुछ अपनेको प्रिय लगता हो, सब-का-सब भगवान्के चरणोंमें निवेदन करना, उन्हें सौंप देना सीखे।'

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥

(११। ३। २९)

'जिन संत पुरुषोंने सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका अपने आत्मा और स्वामीके रूपमें साक्षात्कार कर लिया हो, उनसे प्रेम और स्थावर, जंगम दोनों प्रकारके प्राणियोंकी सेवा, विशेष करके मनुष्योंकी, मनुष्योंमें भी परोपकारी सज्जनोंकी और उनमें भी भगवत्प्रेमी संतोंकी करना सीखे।'

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥

(११। ३। ३०)

'भगवान्‌के परम पावन यशके सम्बन्धमें ही एक-दूसरेसे बातचीत करना और इस प्रकारके साधकोंका इकट्ठे होकर आपसमें प्रेम करना, आपसमें संतुष्ट रहना और प्रपंचसे निवृत्त होकर आपसमें ही आध्यात्मिक शान्तिका अनुभव करना सीखे।'

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥

(११।३।३१)

'राजन्! श्रीकृष्ण राशि-राशि पापोंको एक क्षणमें भस्म कर देते हैं। सब उन्हींका स्मरण करें और एक-दूसरोंको स्मरण करावें। इस प्रकार साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते प्रेम-भक्तिका उदय हो जाता है और वे प्रेमोद्रेकसे पुलकित-शरीर धारण करते हैं।'

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥

(११।३।३२)

'उनके हृदयकी बड़ी विलक्षण स्थिति होती है। कभी-कभी वे इस प्रकार चिन्ता करने लगते हैं कि अबतक भगवान् नहीं मिले, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मुझे उनकी प्राप्ति करावे? इस तरह सोचते-सोचते वे रोने लगते हैं, तो कभी भगवान्‌की लीलाकी स्फूर्ति हो जानेसे ऐसा देखकर कि परमैश्वर्यशाली भगवान् गोपियोंके डरसे छिपे हुए हैं, खिलखिलाकर हँसने लगते हैं। कभी-कभी उनके प्रेम और दर्शनकी अनुभूतिसे आनन्दमग्न हो जाते हैं, तो कभी लोकातीत भावमें स्थित होकर भगवान्‌के साथ बातचीत करने लगते हैं। कभी मानो उन्हें

सुना रहे हों, इस प्रकार उनके गुणोंका गान छेड़ देते हैं और कभी नाच-नाचकर उन्हें रिझाने लगते हैं। कभी-कभी उन्हें अपने पास न पाकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगते हैं, तो कभी-कभी उनसे एक होकर, उनकी संनिधिमें स्थित होकर परम शान्तिका अनुभव करते और चुप हो जाते हैं।'

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम्॥

(११। ३। ३३)

'राजन्! जो इस प्रकार भागवतधर्मोंकी शिक्षा ग्रहण करता है, उसे उनके द्वारा प्रेम-भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है और वह भगवान् नारायणके परायण होकर उस मायाको अनायास ही पार कर जाता है, जिसके पंजेसे निकलना बहुत ही कठिन है।'

इन लक्षणों तथा साधनोंसे वैष्णवताका स्वरूप भलीभाँति ध्यानमें आ गया होगा। वास्तवमें वैष्णव-भक्त अपनेको प्रभुका सेवक तथा समस्त जगत्‌को अपने परम प्रेमास्पद प्रभुका ही स्वरूप मानता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

केवल मनुष्योंमें ही नहीं, चेतन प्राणियोंमें ही नहीं, भगवान्‌के भक्त वैष्णवजन जड-चेतन सभीमें अपने प्रभु भगवान्‌का दर्शन करके सबको नमस्कार करते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।

सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥

(११।२।४१)

'आकाश, वायु, अग्नि , जल, पृथ्वी, नक्षत्रादि, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदियाँ और समुद्र जो कुछ भी है सभी भगवान् हरिका शरीर ही है, अतः सबको अनन्यभावसे प्रणाम करे।'

श्रीमद्भगवद्गीतामें जिस परमधर्मका उपदेश भगवान्‌ने किया है, उसीका वस्तुतः पांचरात्र आगममें वर्णन है अथवा उस अति प्राचीन आगमोक्त भक्ति-धर्म-विग्रहको ही भगवान्‌ने परम सुन्दर नवीन वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके गीतोपदेशके रूपमें प्रकट किया है। यह भक्ति ही धर्मका सर्वस्व है। श्रीमद्भगवद्गीताके दार्शनिक विचारोंके समर्थनरूपमें ही श्रीमद्भागवतका अवतार है। व्रजकी महाभाग्यवती रससुधामयी श्रीगोपांगनाएँ इसी भक्तिकी माधुर्यमयी मूर्ति हैं। वे गीताकी ही जंगम प्रतिमा हैं। उस श्रीमद्भगवद्गीतामें ग्यारहवें अध्यायके अन्तमें वैष्णवके—अनन्य भक्तके लक्षण बतलाते हुए भगवान्‌ने कहा है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(११।५५)

'अर्जुन! जो केवल मेरे लिये ही कर्म करता है, मेरे ही परायण है और मेरा ही भक्त है, कहीं भी जिसकी आसक्ति नहीं है एवं समस्त प्राणियोंमें जो निर्वैर है, वह मुझे प्राप्त होता है।'

इसी गीताके बारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने वैष्णवोंके—अपने प्रिय भक्तोंके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा है—'जो प्राणिमात्रमें द्वेष नहीं करता, जो सबका मित्र है, किसीको दुःखी देखकर जिसका हृदय करुणार्द्र हो जाता है, जो ममता तथा

अहंकारसे रहित है, अपने दुःख-सुखमें समबुद्धि है, बुरा करनेवालेका भी भला करता है, सदा संतुष्ट है, नित्य मुझ भगवान्से संयुक्त है, मन-इन्द्रियोंका विजेता है, दृढ़निश्चयी है, मुझ भगवान्को ही जिसके मन-बुद्धि समर्पित हैं। जिसके किसी भी आचरणसे लोग उद्विग्न नहीं होते, जो स्वयं लोगोंसे उद्विग्न नहीं होता, हर्ष-अमर्ष, भय-उद्वेगसे मुक्त है। जो किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखता, सदा पवित्र तन-मन है, भगवत्सेवामें चतुर है, रागद्वेषरहित उदासीन है, जिसको कोई भी सांसारिक व्यथा नहीं सताती, जो सकाम भावसे कोई कर्म आरम्भ नहीं करता, जो अनुकूलकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होता, प्रतिकूलसे द्वेष नहीं करता, अनुकूलके विनाश तथा प्रतिकूलकी प्राप्ति होनेपर सोच नहीं करता और अनुकूलकी प्राप्ति एवं प्रतिकूलके नाशके लिये आकांक्षा नहीं करता, इस प्रकार जो शुभाशुभका परित्यागी है, जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःखमें समबुद्धि है, विषयासक्तिसे सर्वथा रहित है, स्तुति-निन्दाको समान मानता है, व्यर्थ भाषण नहीं करता, जिस किसी भी स्थितिमें संतुष्ट है, घर-द्वारमें ममतायुक्त नहीं है, स्थिरबुद्धि है, इस परम धर्मामृतके द्वारा जो श्रद्धापूर्वक नित्य मुझ भगवान्की उपासना करता है, श्रद्धायुक्त है और भगवत्परायण है, वह भक्तिमान् वैष्णव मुझ—भगवान्को अत्यन्त प्रिय है।

ये वैष्णवताके सार्वभौम स्वरूप-लक्षण हैं। यद्यपि जैसे गेरुआ वस्त्र चतुर्थाश्रम—सर्वत्यागरूप संन्यासका प्रतीक है, वैसे ही माला-तिलक आदि भी वैष्णवताके बाह्य चिह्न हैं तथापि केवल बाहरी वेशभूषासे न कोई त्यागी होता है, न वैष्णव। बाहरी दिखावा तो दम्भसे या बुरी नियतसे भी हो सकता है, पुलिसकी पोशाक पहनकर डाकू लोगोंको लूट लेते हैं, खादी धारण करके

जनताको लोग ठग लेते हैं। वैसे ही वैष्णवके तिलक-मालासे जनता ठगी जा सकती है। अतएव भीतरका स्वरूप ही असली स्वरूप है। इसीसे उपर्युक्त श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीतामें निरूपित भक्तके स्वरूप-लक्षणोंमें बाहरी वेशभूषाका वर्णन नहीं है। जीवनका बाह्याभ्यन्तर आचार ही उसका वास्तविक स्वरूप है।

वैष्णवताके इन्हीं स्वरूप-लक्षणोंका वर्णन गुजरातके महान् वैष्णव श्रीनरसिंह मेहताने अपने इस सरल गुजराती भाषामें भजनमें किया है। यह भजन महात्मा गाँधीको बहुत प्रिय था।

वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोकमाँ सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टि ने तृष्णात्यागी, परस्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर-धन नव झाले हाथ रे॥
मोह-माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेनाँ मनमाँ रे।
रामनामसु ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमाँ रे॥
वणलोभीने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैयो तेनुं दरसन करतां कुल एकोत्तर तार्या रे॥

वस्तुतः वैष्णव वही है जिसका जीवन सब समय, सब ओरसे, सभी प्रकारसे केवल भगवान्‌की सेवामें ही लगा है। वह कर्मसे विरत नहीं, परंतु उसका प्रत्येक कर्म, प्रत्येक विचार होता है—केवल भगवत्सेवाके—भगवत्पूजाके लिये ही। वह सदा-सर्वदा अपने प्रत्येक कर्मसे, प्रत्येक व्यवहारसे अपने प्रभु भगवान्‌की पूजा ही करता है। यों तो जिसकी जीभसे भगवान्‌के मधुर मनोहर नामका उच्चारण होता है वह भी वैष्णव तथा परम पूजनीय है। श्रीगौरांग महाप्रभु कहते हैं—

प्रभु कहे यार मुखे सुनि एक बार।
कृष्ण नाम सेई पूज्य श्रेष्ठ सबाकार॥
अतएव यार मुखे एक कृष्ण नाम।
सेई त वैष्णव करिह ताँहार सम्मान॥
कृष्ण नाम निरन्तर याँहार बदने।
से वैष्णवश्रेष्ठ भज ताँहार चरणौ॥

वस्तुतः वैष्णवके स्वरूपका वर्णन सहज नहीं है। यह तो वैष्णव-हृदयके अनुभवकी वस्तु है। अतएव इसका वर्णन करने जाना अपनी अज्ञानताको ही प्रकट करना है। मुझ-सरीखा— अभिमानसे भरा सामान्य प्राणी पवित्रतम वैष्णवधर्मका क्या बखान करे। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'जो अपनेको तृणसे भी अधिक नीचा मानते हैं, जो वृक्षके समान सहनशील हैं, (पत्थर मारनेवालेको सुस्वादु रसपूर्ण फल देते हैं, काटने-चीरने-जलानेवालोंका भी भाँति-भाँतिसे उपकार करते हैं) जो अमानी होकर सबको मान देनेवाले हैं, उन्हींके द्वारा हरि सदा कीर्तनीय हैं। ये ही सच्चे वैष्णवके लक्षण हैं।'

आज सभी विषयकामनाकी आगसे जल रहे हैं। सारा जगत् वस्तुतः आज इस प्रेममय वैष्णवधर्मकी प्रेमसुधा-धाराके अभावसे ही संत्रस्त है। जिस विश्वप्रेममें एक दिन, शान्तिपुर ***'डुबु-डुबु नदे भेसे जाय।'*** इस प्रेमका प्लावन बंगालके नवद्वीपमें आरम्भ हुआ था।

प्रेमके ठाकुर श्रीगौरांगके श्रीचरणोंमें हम सभी प्रार्थना करें कि आजका जलता हुआ जगत्—एक बार फिर उसी पवित्र त्यागरूप प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित हो। हम सभी

श्रीचैतन्य महाप्रभुके आदर्शके अनुसार प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित होकर परम शान्ति तथा परम सुखका अनुभव करें।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भूतानि भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

'समस्त विश्वका कल्याण हो, दुष्ट प्रकृतिके लोग क्रूरताका त्याग करें। सब जीव परस्पर मंगलचिन्तन करें। हमारी बुद्धि अधोक्षज श्रीभगवान्‌में अहैतुकी प्रीतिके साथ भलीभाँति लगी रहे।'

बोलो वैष्णवजन तथा उनके प्रभु प्रेमधाम प्रभुकी जय जय!

गीतामें भगवान्‌के स्वरूप, परलोक-पुनर्जन्म तथा भगवत्प्राप्तिका वर्णन

श्रीमद्भगवद्‌गीता अखिल ब्रह्माण्डनाथ, सर्वलोकमहेश्वर, सूर्य-चन्द्र-इन्द्र-वायु-अग्नि-वरुण-यम आदि सुर, लोकनायक-नायक, सर्वनियन्ता, सर्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वातीत, सर्वगुणमय, सर्वगुणातीत, अनन्त-चेतनाचेतन-नियन्ता तथा भिन्नाभिन्नसम्बन्धी परात्पर परब्रह्म, ब्रह्मप्रतिष्ठा, अनन्ताचिन्त्य-निरवधि-निरंकुश-ऐश्वर्यस्वरूप, युगपत्-विरोधि-गुणधर्माश्रय, शरणागतवत्सल, भक्तवांछाकल्पतरु, प्रेमस्वरूप, भक्तिवश्य, अचिन्त्यानन्त परोक्षापरोक्षलीलास्वरूप 'स्वयं भगवान्' श्रीकृष्णकी वाणी है। इसमें जो कुछ कहा गया है वह परम सत्य है, विविध भाव-विचार-अधिकार-रुचियुक्त प्राणियोंके कल्याणके लिये ज्ञान, भक्ति, निष्काम-कर्म, योगप्रभृति विभिन्न साधनरूपमें परम कल्याणकर है।

वेद भगवान्‌के सिद्धान्तप्रतिपादक 'भगवत्-निःश्वास' हैं, गीता भगवान्‌के सिद्धान्तदर्शक साक्षात् 'भगवद्‌वचन' हैं। उपनिषद् भगवत्-तत्त्व-बोधक हैं। गीता उन्हीं उपनिषद्‌रूप गौओंका दुग्धामृत है। महाभारत अखिल ज्ञान-भण्डार-रूप दुग्धसिन्धु है और गीता उसको मथकर निकाला हुआ सार-सर्वस्व नवनीत है। गीता भगवान्‌का हृदय है, गीता साक्षात् भगवत्स्वरूप है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण किसी मत-विशेषका प्रतिपादन या किसी सिद्धान्तका स्थापन नहीं करते हैं। वे त्रिकालाबाधित नित्य सत्यका अपनी दिव्य भाषामें अपने प्रिय भक्त अर्जुनके हितार्थ प्रकाश करते हैं।

भगवान् सबके हैं, भगवान्‌की वाणी सबके लिये सहज ही कल्याणकारिणी है और त्रिकालाबाधित सत्य-तत्त्व सबके लिये ग्राह्य है। अतएव गीता सहज ही अखिल विश्वके हितमें संलग्न है। अन्धकारमें पड़े हुए प्रत्येक प्राणीको बिना किसी भेदके गीताने प्रकाश दिया है—दे रही है और देती रहेगी।

सत्यका प्रतिपादन या स्थापन नहीं होता, वह तो नित्य अनादि अनन्त है ही। वह किसीकी न तो स्वीकृतिकी अपेक्षा रखता है, न समर्थन या संरक्षणकी। सत्यकी निर्बाध सत्ता है, उसे न माननेवाले उससे वंचित भले ही रह जायँ। सत्य किसीके मानने न माननेकी परवा नहीं करता। वह तो अपने सनातन जीवनमें ही नित्य सुप्रतिष्ठित रहता है, उसी सत्यका प्रकाश गीतामें है। भगवान्‌ने गीतामें यह बताया है कि 'जो कुछ है, सब एकमात्र वे पुरुषोत्तम भगवान् ही हैं।' इसी तत्त्वको उन्होंने विविध प्रकारसे समझाया है—

'लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥'

(१५।१८)

'लोक और वेदमें 'पुरुषोत्तम' नामसे प्रसिद्ध हूँ।'

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(७।७)

'धनंजय! मेरे अतिरिक्त कुछ भी अन्य नहीं है। यह सब जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।'

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।'

(९।४)

'यह समस्त जगत् मुझ अव्यक्त मूर्तिसे (जलसे बरफके समान) परिपूर्ण है।'

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(१०।८)

'मैं ही सबकी उत्पत्तिका मूल हूँ, सब मुझसे प्रवर्तित हैं। इस प्रकार मानकर भावसमन्वित बुद्धिमान् भक्त मुझे भजते हैं।'

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

(१०।२)

'मेरे प्रभवको—उत्पत्तिको न तो देवतागण जानते हैं, न महर्षिगण ही, क्योंकि मैं ही देवताओं और महर्षियोंका भी आदि मूल हूँ।'

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(१०।३)

'जो मुझको अजन्मा (प्राकृतिक जन्मरहित), अनादि (उत्पत्तिरहित सर्वकारणकारण) तथा लोकोंका महान् ईश्वर जानता है, वह धनवान् पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(५।२९)

(जो मुझको) 'सब यज्ञ-तपोंका भोक्ता, समस्त लोकोंका महान् ईश्वर तथा प्राणिमात्रका सुहृद् जानता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६।३०)

'जो सर्वत्र (चराचर जगत्‌में) मुझको देखता है और जो सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं कभी अदृश्य नहीं होता और मेरे लिये वह कभी अदृश्य नहीं होता।'

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(१०। ३९)

'अर्जुन! जो समस्त भूतोंकी उत्पत्तिका बीज है—मूल कारण है, वह मैं ही हूँ; क्योंकि चराचरमें कोई भी ऐसा भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो (सब मेरे ही स्वरूप हैं—सब मैं ही हूँ)।'

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

(९। २३)

'कौन्तेय! जो श्रद्धायुक्त भक्त दूसरे देवताओंकी पूजा करते हैं, वे भी मेरी ही पूजा करते हैं। (पर वे उनको मुझसे अलग मानते हैं) इसलिये उनकी यह पूजा अविधिपूर्वक होती है।'

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(१४। २७)

'ब्रह्मकी, अमृतकी, अविनाशी और सनातनधर्मकी तथा ऐकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा मैं ही हूँ (इन सबका परम आश्रय मैं ही हूँ)।'

इस प्रकार सम्पूर्ण अनन्त विश्वब्रह्माण्ड एकमात्र भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है, भगवान्‌से ही प्रकट है, भगवान्‌में ही स्थित है तथा भगवान्‌में ही पर्यवसित होता है। भगवान्‌में ही भगवान्‌से ही विश्वप्राणियोंका प्रकृतिके द्वारा बार-बार उदय-विलय होता रहता है। यही प्रलय-सृजन है। भगवान् कहते हैं—

करानेके लिये, उसका स्वामी बननेके लिये उसकी कामना पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं। मैं कोई भी कामना न रखनेवाला आपका सेवक हूँ और आप मुझसे कुछ भी अपेक्षा न रखनेवाले स्वामी हैं। हमलोगोंका यह सम्बन्ध राजा और उसके सेवकोंका प्रयोजनवश रहनेवाला स्वामी-सेवकका सम्बन्ध नहीं है।'

ऐसा केवल सेवाव्रती सेवक किस प्रकारका त्यागी होता है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कपिलदेवके रूपमें भगवान् कहते हैं—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते॥

(श्रीमद्भागवत ३। २९। १३-१४)

'मेरे वे सेवक मेरी सेवाको छोड़कर दिये जानेपर भी सालोक्य (भगवान्‌के धाममें नित्य निवास), सार्ष्टि (भगवान्‌के समान ऐश्वर्यप्राप्ति), सामीप्य (भगवान्‌की नित्य समीपता), सारूप्य (भगवान्‌के-से दिव्य रूप-सौन्दर्यकी प्राप्ति) और एकत्व (भगवान्‌के साथ मिल जाना—उनके साथ एक हो जाना या ब्रह्मरूपको प्राप्त होना)—इन पाँचों मुक्तियोंको ग्रहण नहीं करते। यह भक्तियोग ही साध्य है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणोंको लाँघकर मेरे भावको, दिव्य विशुद्ध भगवत्प्रेमको प्राप्त होता है।'

इन भगवान्‌की सेवा किनमें कैसे करनी चाहिये? अवश्य ही अपने इष्ट भगवान्‌के मंगलविग्रह-स्वरूपकी (प्रतिमाकी) पूजा करना भी बड़ा श्रेयस्कर है, पर उतना ही पर्याप्त नहीं है। भगवान् आगे चलकर कहते हैं—

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥

आत्मरमण करता है—आत्मरत ही रहता है। उसके मनमें किसी भी लौकिक-पारलौकिक पदार्थकी किंचित् भी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती; वह पूर्णकाम होता है, इसलिये आत्मामें ही—चिन्मय स्व-स्वरूपमें ही सदा तृप्त रहता है और संसारका न तो कोई बड़े-से-बड़ा प्रलोभन उसे अपनी ओर खींच सकता है, न किसी भी स्थितिसे उसे किसी प्रकारका तनिक भी असंतोष होता है। वह हर्ष-शोकादि विकारोंसे सर्वथा रहित होकर निरन्तर आत्मस्वरूपमें ही संतुष्ट रहता है। ऐसे कृतकृत्य—पूर्णत्वको प्राप्त ज्ञानी मानवके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं रह जाता। उसकी अपनी आत्मस्थितिमें उसे कुछ पाना या पानेके लिये करना शेष नहीं रह जाता। ऐसा ज्ञानी पुरुष मानव-शरीरके चरम तथा परम लक्ष्यको प्राप्त करके कर्तव्यके भारसे मुक्त हो जाता है। फिर प्रारब्धवश जबतक उसका शरीर रहता है, तबतक उसके द्वारा स्वाभाविक ही अहंता, ममता, आसक्ति, कामना तथा राग-द्वेष आदि दोषोंसे सर्वथा रहित परम पवित्र तथा परम आदर्शरूप लोकहितकर कर्म ही होते हैं।

(२)

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥

(गीता ३। ३१)

'जो भगवान्‌में किसी प्रकारकी दोष-दृष्टि नहीं करते तथा जो श्रद्धावान् हैं और सदा भगवान्‌के मतका अनुसरण करते हैं, वे मानव भी सम्पूर्ण कर्मों (-के बन्धन)-से छूट जाते हैं।'

यह 'भक्त-मानव' का स्वरूप है। गीताके अन्तिम उपदेश (१८। ६६)-के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको सावधान करते हुए कहा है कि 'जो तपरहित न हो, मेरा भक्त न हो, सुनना न चाहता हो और मुझमें दोष देखता हो, उससे यह रहस्य

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥

(गीता ९। ६-७)

'जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा ही आकाशमें स्थित है, वैसे ही समस्त भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जानो। अर्जुन! कल्पके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिमें लय हो जाते हैं और कल्पके आदिमें मैं उनका फिर सृजन कर देता हूँ।'

यही भगवान् सर्वत्र व्याप्त एक आत्मा हैं। आत्मा स्वरूपतः जन्म-मरण-हीन नित्य सत्य है। भगवान्‌ने कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।

(गीता २। २०, २३—२५)

'यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्मता है, न मरता है और न यह आत्मा हो करके फिर होनेवाला है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत

और पुरातन है, शरीरके नाश होनेपर यह नाश नहीं होता। इस आत्माको न शस्त्रादि काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा ही सकता है। यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है और निश्चय ही यह नित्य, सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त (इन्द्रियोंका अविषय), अचिन्त्य (मनका अविषय) और विकाररहित (कभी न बदलनेवाला) कहा जाता है।'

सारे जीवोंके हृदयमें भगवान् ही आत्मारूपसे वर्तमान हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

(गीता १०। २०)

'अर्जुन! सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा मैं हूँ। मैं ही समस्त भूतोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ।'

प्राणिमात्रके शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा (भगवान्) निर्लेप रहता है। इस विषयमें भगवान् कहते हैं—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥

(गीता १३। ३१-३२)

'अर्जुन! अनादि तथा निर्गुण होनेसे यह अविनाशी आत्मा शरीरमें स्थित होकर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है, न लिप्त होता है। जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित होकर भी आत्मा देहके कार्यों—गुणों आदिसे लिपायमान नहीं होता।'

तथापि जबतक पुरुष (आत्मा) 'प्रकृतिस्थ' है, तबतक उसमें सारे व्यापार होते रहते हैं। भगवान्‌का सनातन अंश यह 'प्रकृतिस्थ आत्मा' ही 'जीव' है।

भगवान् कहते हैं—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(गीता १३। २१)

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुणोंसे प्रभावित रहता है—उनको भोगता है और इन गुणोंका संग ही उसके सत्-असत् (देव, पितर, प्रेत, मनुष्य, पशु आदि) योनियोंमें जन्म लेनेका कारण होता है।'

गीतामें गति, योनि—पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक आदि लोक, सभीका स्पष्ट वर्णन है—

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥

(गीता १४। १४-१५)

'जब जीव सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मरता है, तब वह उत्तम कर्म करनेवालोंके मलरहित (दिव्य स्वर्गादि) लोकोंको प्राप्त होता है। रजोगुणकी वृद्धिमें मरनेपर कर्मासक्तिवाले मनुष्योंमें जन्म लेता है और तमोगुणके बढ़नेपर मरनेवाला पशु-पक्षी आदि मूढ़ योनियोंमें जन्म लेता है।'

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोधसे युक्त अशुद्ध आचरण करनेवाले, काम-क्रोधपरायण कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय माननेवाले, अन्यायसे धनोपार्जन करनेवाले, चिन्ताग्रस्त, हत्या-

हिंसापरायण, अन्तर्यामी भगवान्से द्वेष करनेवाले आसुरभावापन्न मनुष्य मरनेपर नरकोंमें, आसुरी योनियोंमें जाकर, वहाँ नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोगते हैं। (गीता १६। ४—१५ में देखिये) भगवान् आगे कहते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(१६। १६—२०)

'जिनका चित्त सदा भोगोंमें भटका करता है, जिनका जीवन मोहजालसे ढका है, जो कामोपभोगमें अत्यन्त आसक्त हैं, वे अपवित्र (गंदे) नरकमें गिरते हैं। जो अपनेको श्रेष्ठ माननेवाले घमंडी, धन-मान-मदसे चूर, अविधिपूर्वक नाममात्रके यज्ञों—देवताओंद्वारा पाखण्डरूप यजन करते हैं, उन द्वेष करनेवाले क्रूरहृदय नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी (कुत्ते, सूअर, गदहे आदि) योनियोंमें गिराता हूँ। वे मूढ़ लोग (जिनको मानवजन्म मेरी प्राप्तिके लिये दिया गया था) मुझे न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरीयोनिमें जाते हैं और फिर उससे भी नीच गति (घोर नरक आदि)-को प्राप्त करते हैं।'

अर्जुनने कहा—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥

(१।४१—४४)

'श्रीकृष्ण! अधर्म अधिक बढ़ जानेसे कुलस्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय! स्त्रियोंके आचरण दूषित होनेपर वर्णसंकर (संतान)-का जन्म होता है। वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले (तर्पण-श्राद्धरहित) इनके पितरगण भी गिर जाते हैं। इन वर्ण-संकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुलधर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं और हे जनार्दन! नष्ट हुए कुलधर्मवाले मनुष्योंको अनियत कालतक नरकमें रहना पड़ता है, ऐसा हमने सुना है।'

भगवत्प्राप्ति या मोक्षके साधनमें तत्पर पुरुष यदि योगसाधनसे विचलित होकर बीचमें ही मर जाता है तो उसकी क्या गति होती है? अर्जुनके इस आशयके प्रश्नपर भगवान् कहते हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥

(६। ४०—४२)

'पार्थ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश—पतन होता है, न परलोकमें ही। किसी भी कल्याण—(भगवदर्थ) कर्म करनेवालेकी दुर्गति नहीं होती। वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके (स्वर्गादि दिव्य) लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें लम्बे समयतक निवास करके शुद्ध आचरण करनेवाले श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है। अथवा (साधन-सम्पन्न या भगवत्प्राप्त श्रीमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है) इस प्रकारका जन्म इस लोकमें निश्चय ही अति दुर्लभ है।'

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥

(९। २०-२१)

'जो तीनों वेदोंके विधानके अनुसार सकामकर्म करनेवाले, सोमरस पीनेवाले पापमुक्त पुरुष यज्ञोंके द्वारा पूजा करके स्वर्गमें जाना चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्योंके फलस्वरूप स्वर्गलोकको प्राप्त होकर वहाँ देवताओंके दिव्य भोगोंको भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोक (स्वर्ग-सुखों)-को भोगकर पुण्यक्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधन-रूप तीनों

वेदोंमें कथित सकाम कर्मोंका सेवन करनेवाले भोगकामी पुरुष बार-बार स्वर्गलोक और मृत्युलोकमें जाते-आते रहते हैं।'

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

(९।२५)

'देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको (उन-उन देवलोकोंको), पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको (पितृलोकको), भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको (प्रेतलोकको) और मेरा (भगवान्‌का) पूजन करनेवाले मुझको ही प्राप्त होते हैं (वे किसी अन्य लोकमें नहीं जाते और न उनका मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म ही होता है)।'

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥

(८।२६)

'जगत्‌में शुक्ल और कृष्ण (देवयान और पितृयान) मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक (देवयान)-के द्वारा गया हुआ वापस न लौटनेवाली परम गतिको प्राप्त होता है। दूसरे (पितृयान)-के द्वारा गया हुआ वापस लौटता है (पुनः जन्म लेता है)।'

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

(१५।८)

'वायु गन्धके स्थानसे जैसे गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा जिस पहले शरीरको त्यागता है, उससे मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है, उसमें जाता है।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(२।१३)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(४। ६, ९)

'मैं अजन्मा (प्राकृत जन्मरहित), अविनाशीस्वरूप होनेपर भी तथा समस्त भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको (स्वभावको) अधिष्ठित करके अपनी ही मायासे प्रकट होता हूँ। अर्जुन! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य (अप्राकृत भगवत्स्वरूप) है। इसको जो पुरुष तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता है।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे पुनर्जन्म, परलोक, नरक, स्वर्ग, सद्‌गति, दुर्गति आदिकी बात तो स्पष्ट हो गयी। परंतु मानव-जीवन तो इसलिये मिला है कि जिसमें जीव साधनमें लगकर, 'प्रकृतिस्थ' अवस्थासे मुक्त होकर 'स्वस्थ' (आत्मस्थ) हो जाय, वह भौतिक पुनर्जन्म न होनेकी उस स्थितिको प्राप्त कर ले, जिसे प्राप्त कर लेनेपर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। वह आवागमनसे सर्वथा मुक्त हो जाय। इसी स्थितिका भगवान्‌ने गीतामें ब्रह्म-निर्वाण, शान्ति, परमा शान्ति, शाश्वत शान्ति, दिव्य परम पुरुषकी प्राप्ति, परमा गति, अनामय पद, अव्यय पद, ज्ञान, ब्रह्मप्राप्ति, अमृत-प्राप्ति, सिद्धि, अक्षय सुख, आत्यन्तिक सुख, मेरे भावकी प्राप्ति और मेरी प्राप्ति आदि विभिन्न नामोंसे वर्णन किया है तथा उसके साधन बतलाये हैं। नीचे उदाहरणस्वरूप इसके कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(२। ७१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(५। २९)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(४। ३९)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥

(६। १५)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(१८। ६२)

'जो पुरुष समस्त कामनाओंको त्यागकर, ममतारहित और अहंकाररहित होकर, स्पृहारहित हुआ विचरता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।' 'जो मुझको (भगवान्‌को) यज्ञ-तपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी महान् ईश्वर तथा समस्त भूत-प्राणियोंका सुहृद् जान लेता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।' 'श्रद्धावान्, साधनतत्पर, जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है और फिर तुरंत ही परा शान्तिको प्राप्त हो जाता है।' 'आत्माको निरन्तर परमात्माके स्वरूपमें लगाता हुआ स्वाधीन मनवाला योगी मेरी स्थितिरूप निर्वाण परमा शान्तिको प्राप्त होता है।' 'अर्जुन! सब प्रकार उस (अन्तर्यामी) परमेश्वरकी ही अनन्य शरणमें चला जा, उस परमेश्वरकी कृपासे ही परा शान्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त होगा।'

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(९। ३०-३१)

'अतिशय दुराचारी (पापी) भी अनन्यभाक् होकर यदि मुझको भजता है तो उसे 'साधु' मान लेना चाहिये; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय (मेरी अनन्य शरणसे ही पाप-तापसे त्राण पानेका पूर्ण निश्चय करके मुझे भजने लगा) वाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वती (सदा रहनेवाली परम) शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक यह जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता (उसका पाप-तापमें कभी पतन नहीं होता)।'

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(२। ७२)

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥

(५। २४—२६)

'इस ब्राह्मी स्थिति (कामना, स्पृहा, ममता और अहंकारसे रहित स्थिति)-को प्राप्त होकर पुरुष मोहित नहीं होता और अन्तकालमें वह निष्ठामें स्थित होकर ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है।' 'जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, अन्तरात्मामें ही आरामवाला है तथा जो आत्मामें ही प्रकाशवाला है, वह परब्रह्म

परमात्माके साथ ऐक्यभावको प्राप्त योगी ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है।' 'जिनके कल्मष (पाप) नष्ट हो गये हैं, ज्ञानके द्वारा जिनका संशय निवृत्त हो गया है, जो समस्त भूतप्राणियोंके हितमें ही निरत हैं तथा जो भगवान्‌में ही संयतचित्त हैं—ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होते हैं।' 'काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले परब्रह्म परमात्माको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओर ब्रह्मनिर्वाण ही प्राप्त है।'

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

(८।८, १०)

'अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तके द्वारा निरन्तर चिन्तन करता हुआ साधक दिव्य पुरुष (परमात्मा)-को प्राप्त होता है। वह भक्तियुक्त साधक अन्तकालमें भी योगबलसे भ्रुकुटीके मध्यमें प्राणोंको भलीभाँति स्थापन करके निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ दिव्य परम पुरुष (परमात्मा)-को ही प्राप्त होता है।'

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥

(६।४५)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

(८।१३)

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(९। ३२)

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

(१३। २८)

'अनेक जन्मोंसे अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त और अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला योगी समस्त पापोंसे परिशुद्ध होकर परमा गतिको प्राप्त होता है।'

'जो पुरुष 'ॐ' ऐसे एकाक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा (भगवान्का) स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है—वह परमा गतिको प्राप्त होता है।' 'अर्जुन! स्त्री, वैश्य और शूद्र आदि तथा पापयोनिवाले भी कोई भी हों, मेरे शरण होकर परमा गतिको प्राप्त होते हैं।' 'जो पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपने द्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता है, वह परमा गतिको प्राप्त होता है।'

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

(२। ५१)

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(१५। ५)

'बुद्धियोगयुक्त पुरुष कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलका त्याग

करके जन्म-बन्धनसे छूटकर अनामय पदको प्राप्त होते हैं।' 'जो मान तथा मोहसे रहित हैं, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषपर विजय प्राप्त कर ली है, जिनकी नित्य अध्यात्म (परमात्म-स्वरूप)-में स्थिति है और जिनकी कामना भलीभाँति निवृत्त हो गयी है, ऐसे वे सुख-दुःख आदि नामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानी पुरुष अव्यय पदको प्राप्त होते हैं।'

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥

(५। २१)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

(६। २८)

'बाहरी स्पर्शादि भोगोंमें अनासक्त चित्तवाला साधक अन्तःकरणमें भगवद्-ध्यानजनित आनन्दको प्राप्त करता है और वह ब्रह्मरूप योगमें ऐक्यभावसे स्थित पुरुष अक्षय सुखका अनुभव करता है।' 'वह पापरहित योगी निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक ब्रह्मसंस्पर्शरूप अत्यन्त सुखका अनुभव करता है।'

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

(४। ३६)

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(४। ३७)

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

(४। ३८)

'यदि तुम सारे पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाले हो तो भी ज्ञानरूप नौकाके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण पापोंसे (जन्म-मरण-प्रवाहसे भलीभाँति) तर जाओगे।' 'अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्मसात् कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मोंको भस्मसात् कर देती है।' 'इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह अन्य कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको (समस्त कर्मनाश तथा मोक्षस्वरूप तत्त्वज्ञानको) समयपर स्वयं ही समत्व-बुद्धिरूप योगके द्वारा भलीभाँति शुद्धान्तःकरण हुआ पुरुष आत्मामें ही अनुभव करता है।'

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

(१३। ३०)

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥

(१४। २०)

'यह पुरुष जिस कालमें समस्त भूतप्राणियोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्मामें स्थित देखता है और उस परमात्मासे ही समस्त भूतप्राणियोंका विस्तार देखता है, उस कालमें वह ब्रह्मको प्राप्त होता है।' 'यह पुरुष स्थूल शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप तीन गुणोंसे जब अतिक्रमण कर जाता है, तब जन्म-मृत्यु, वृद्धावस्था तथा सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त होकर अमृतत्वका अनुभव करता है।'

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि॥

(१२। १०)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८।४६)

'अर्जुन! तू यदि अभ्यास करनेमें असमर्थ है तो केवल मेरे लिये ही कर्म करनेके परायण हो जा। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्म करके तू (मेरी प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होगा।' 'जिस परमात्मासे समस्त भूतप्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिस परमात्मासे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमात्माको अपने स्वाभाविक कर्मके द्वारा पूजकर मनुष्य (भगवत्प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होता है।'

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(८।२१)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(१५।६)

'उस (परमात्मा)-को अव्यक्त, अक्षर ऐसे कहा गया है, उसीको परम गति कहते हैं तथा जिसको प्राप्त करके जीव वापस नहीं लौटते वह मेरा परमधाम है।' '(उस स्वयंप्रकाश परमधामको) न सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है। जिसको पाकर जीव वापस नहीं लौटते, वह मेरा परमधाम है।'

यह परमधाम स्वयं भगवान्का ही स्वरूप है। इसीसे अर्जुनने भगवान्को 'परमधाम' बतलाया है।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

(१०।१२)

भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(७।१९)

'बहुत-से जन्मोंके अन्तके जन्ममें ज्ञानी भक्त—'सब कुछ वासुदेव ही हैं' इस प्रकार मुझको भजकर प्राप्त होता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।'

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

(४।१०)

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(८।५)

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते॥

(१३।१८)

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

(१४।१९)

'आसक्ति, भय और क्रोधसे रहित मुझमें तन्मय, मेरे ही आश्रित बहुत-से पुरुष मेरे ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे भाव (स्वरूप)-को प्राप्त हो चुके हैं।' 'अन्तकालमें जो पुरुष मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर त्यागकर जाता है, वह मेरे ही भाव (स्वरूप)-को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।' 'क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञेयका स्वरूप संक्षेपसे (अध्याय १३ श्लोक ५ से १७ तक) कहा गया है, इसको तत्त्वसे जानकर मेरा भक्त मेरे

भाव (स्वरूप)-को प्राप्त होता है।' 'जिस कालमें द्रष्टा (द्रष्टाके रूपमें स्थित) पुरुष तीनों गुणोंके सिवा अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता, उस कालमें वह मेरे भाव (स्वरूप)-को प्राप्त होता है।'

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥

(७। २३)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(८। ७)

'(भगवान्‌से पृथक् मानकर देवताओंको भजनेवाले) उन अल्प बुद्धिवालोंको नाशवान् फल ही मिलता है और वे देव-पूजक देवताओंको प्राप्त होते हैं, पर मेरे भक्त तो मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

'अतएव तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर। इस प्रकार मुझमें अर्पित मन, बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा।'

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(८। १४—१६)

'जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्तसे स्थित होकर नित्य-निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। वे परम सिद्धि (मेरे प्रेम)-को प्राप्त महात्मागण मुझे प्राप्त

होकर, दुःखके स्थानरूप पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते। अर्जुन! ब्रह्मलोकतकके सब लोक पुनरावर्ती हैं, वहाँ जानेवालोंको वापस लौटना पड़ता है, परंतु कौन्तेय! मुझे प्राप्त हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं होता।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(९। ३४)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(१०। ९-१०)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(११। ५५)

'मुझमें मनवाले होओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मुझे ही नमस्कार करो—इस प्रकार मेरे परायण होकर अपनेको मुझमें युक्त रखो तो मुझको ही प्राप्त होओगे।'

'जिन्होंने अपना चित्त मुझमें ही लगा दिया है, अपने प्राण (जीवन) मुझको अर्पण कर दिये हैं, वे भक्तजन नित्य परस्पर मेरी चर्चा करते, मेरे प्रेम-स्वभाव-गुणोंको परस्पर समझते-समझाते हुए, मेरे ही नाम-गुणोंका कथन करते हुए, मुझमें ही संतुष्ट रहते हैं और मुझमें निरन्तर रमण करते हैं, उन निरन्तर मुझमें लगे रहकर प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। जो मेरा ही कर्म करता है (अपना कुछ कर्म उसका है ही नहीं), मेरे

ही परायण है, मेरा ही भक्त है, किसी भी प्राणिपदार्थमें आसक्ति नहीं रखता और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें जो वैरभावसे रहित है ऐसा अनन्य भक्त मुझको ही प्राप्त होता है।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८। ६५-६६)

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर—इस प्रकार करनेपर तू मुझको ही प्राप्त होगा। यह मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सब धर्मोंका परित्याग करके तू एकमात्र मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।'

इस परमधामकी, परमात्माकी या भगवान्‌की प्राप्ति अथवा मुक्ति—मानव-जीवनका परम लक्ष्य है। जबतक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति ही मानव-जीवनका परम लक्ष्य है, जबतक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति नहीं होती, तबतक जन्म-मृत्यु, ऊँच-नीच लोकोंकी प्राप्ति, अगति-दुर्गति, सद्‌गति, परमगति आदि स्थितियाँ होती ही रहेंगी; इसी ध्रुव सत्यका उपदेश भगवान् श्रीकृष्णने रणांगणमें अपने प्रिय सखा भक्त अर्जुनको किया है और उसे बार-बार मानव-जन्मके परम लक्ष्यकी याद दिलाकर शरणागत होनेकी आज्ञा दी है। जीवात्माको परमात्मस्वरूपमें मिल जाना मुक्ति है—यह भी भगवत्प्राप्ति है; क्योंकि परमात्मा, भगवान् एक ही तत्त्व है और भगवत्सेवाधिकार प्राप्त करके भगवत्स्वरूप दिव्य लीला लोकोंमें, भगवान्‌के दिव्य परमधाममें निवास करना भी

भगवत्प्राप्ति है। शान्ति, मोक्ष, ज्ञान आदिके नामसे, जिनमें परमात्मस्वरूपमें मिल जाना है—प्रधानतया उस मुक्तिका और मेरी प्राप्ति आदिमें सेवाधिकार प्राप्त करके भगवान्‌के दिव्य परमधाममें निवासका संकेत है। दोनोंमें ही पुनर्जन्म नहीं होता, दोनोंमें ही जन्म-मरणका चक्र छूट जाता है। दोनों ही परम सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। पर एकमें अभिन्न ब्रह्मानन्द है, दूसरेमें दिव्य रसलीलानन्द है।

पति-पत्नी (तथा सब)-के लिये हितकर अठारह अमृत-संदेश

१-पति और पत्नी दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। एकके विना दूसरा अधूरा है। दोनों मिलकर ही पूर्ण हैं। वे एक-दूसरेके सहधर्मी, जीवन-सहचर, प्रेमी और प्रेमास्पद हैं।

२-पति-पत्नी दोनोंके जीवनका न तो उद्देश्य भिन्न है और न स्वार्थ ही पृथक् है। अतएव उनमें संघर्षके लिये न तो स्थान है और न अवसर। अविच्छिन्न सहयोग और एकात्मतापर ही दाम्पत्य-जीवन सुप्रतिष्ठित है। पति-पत्नी एक प्राण, दो देह हैं।

३-पति-पत्नी दोनों यह समझें कि भोगोंसे कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। त्याग और कर्तव्यपालनसे ही जीवनमें शाश्वत सुखकी झाँकी मिल सकती है। काम-भोग-सुख तो सुख है ही नहीं।

४-किसी भी दशामें भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये। वे ही सर्वाधिक प्रेमके आस्पद हैं। सती नारी पति-प्रेममें उसीका साक्षात्कार करती है और विवेकी पुरुष सती पत्नीके भावका अनुकरण करके भगवत्प्रेम प्राप्त करता है।

५-जिस किसी भी बर्तावसे अपनेको दुःख होता हो और जो अपनेको बुरा लगता हो, वह बर्ताव दूसरेके साथ कभी नहीं करना चाहिये। यह धर्मका सर्वस्व है।

६-माता-पिता-गुरुजन आदिको प्रतिदिन नमस्कार करो। उनका कभी अपमान या तिरस्कार मत करो। सेवा-सद्‌व्यवहार, नम्रता, आज्ञापालन आदिके द्वारा उनका आशीर्वाद प्राप्त करते रहो।

७-खान-पानकी शुद्धि परमावश्यक है। अशुद्ध वस्तु, अशुद्धताके साथ बनी हुई, अशुद्ध हाथोंसे बनी हुई तथा मांस, मद्य, अंडे, लहसुन, प्याज, जूँठन कभी नहीं खाने चाहिये। अन्यायोपार्जित द्रव्यसे प्राप्त खान-पानसे भी बड़ी हानि होती है।

८-दूसरेके अधिकारकी सदा रक्षा करनी चाहिये और सदा अपने कर्तव्यकी।

९-अभिमानसे पतन होता है और विनयसे सर्वसुख प्राप्त होते हैं। कामनासे दुःख बढ़ते हैं और संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है। सदा सबके साथ विनय-नम्रताका बर्ताव करो। अभिमानका सर्वथा त्याग करो। सबके साथ मधुर भाषण करो।

१०-सबका सदा हित चाहो, करो; कभी दूसरेका न अहित चाहो, न करो; न किसीको करनेकी सम्मति दो और न कोई करता हो तो उसका समर्थन करो।

११-दूसरेका हक छीनने या किसी प्रकारसे लेनेकी कभी इच्छा मत करो।

१२-कुसंग विष है, उससे सदा बचो। सत्संग तथा स्वाध्याय अमृत हैं, उनका नित्य सेवन करो। सत्य और सदाचारको कभी शिथिल न होने दो।

१३-नारीके लिये सबसे महत्त्व और सम्मानकी वस्तु है—उसका पतिके प्रति निश्छल सरल प्रेम, पतिको परमेश्वर मानकर पतिके मनका अनुगमन। इसीका दूसरा नाम 'पातिव्रत्य' है। यह भारतीय नारीकी परम्परागत विशेषता है।

१४-पुरुषके लिये परमावश्यक है—पत्नीका संरक्षण, हितसाधन और सुख-सम्पादन। पत्नी उसकी मित्र है, अर्धांगिनी है, दासी कदापि नहीं। उसका स्वेच्छासे वरण किया हुआ स्वामीका दासत्व तो उसके सतीत्वकी शोभा है, उसका शृंगार

है, पतिका अधिकार नहीं। धर्मपत्नीकी रक्षाके लिये जगत्में पुरुषोंने बड़े-बड़े बलिदान किये हैं।

१५-लज्जा, विनय, सुशीलता, निःस्वार्थ सेवा और सरल प्रेम साध्वी नारीके आभूषण हैं।

१६-संयम, सदाचार, समवर्तिता, मित्रभाव और निःस्वार्थ प्रेम सज्जन पुरुषके गुण हैं।

१७-कौटुम्बिक जीवनमें अपने स्वार्थको पीछे रखकर कुटुम्बके अन्यान्य लोगोंकी सुख-सुविधापर पहले ध्यान देना पति-पत्नी दोनोंका परम पवित्र कर्तव्य है।

१८-बच्चोंके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ्यसुधार और चरित्रकी निर्मलतापर (अपने आचरणद्वारा) सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये।

भोजन-शुद्धि

भोजन पवित्र हो, पवित्र स्थानपर पवित्र पुरुषके द्वारा पवित्र वस्तुओंसे बनाया हुआ हो, पवित्र स्थानपर पवित्रतासे बैठकर किया जाय और पवित्र होकर मनमें पवित्र भाव रखते हुए किया जाय।

दूसरेकी जूँठी कोई चीज न खाओ, न अपनी जूँठी कोई चीज दूसरेको खिलाओ। जूँठी चीजोंके सेवनसे विचारोंमें विकार पैदा होते हैं, बुद्धि बिगड़ती है और शरीरमें नये-नये रोग पैदा होते हैं। डॉक्टर किसी संक्रामक रोगके रोगीकी नब्ज देखकर साबुनसे हाथ धोते हैं; क्योंकि रोगके कीटाणुओंका भय रहता है। जब छूनेमात्रसे कीटाणुओंका संक्रमण होता है, तब थूक लगे जूँठे पदार्थोंके भोजनमें कीटाणुओंका भय नहीं है, यह मानना ही मूर्खता है।

आसानीसे ऊपरसे मुँहमें डालकर खानेकी सुविधा होनेपर भी आजकल फलादि तथा सूखे मेवे आदि भी जीभसे अंगुली लगाकर जूँठे करके खाये जाने लगे हैं। एक-दूसरेकी जूँठन शौकसे खायी जाती है। 'बफे पार्टी' तो पशु-भोजनकी भाँति सबके जूँठन खाने-खिलानेकी ही दूषित भोजन-प्रणाली है। इससे शारीरिक, मानसिक रोग बढ़ते हैं और पतन होता है।

हाथ-मुँह धोकर पवित्र स्थानमें पवित्रतासे जमीनपर बैठकर अन्नका आदर करते हुए शान्तिसे भोजन करो और भोजनके उपरान्त हाथ-मुँह धोकर कुल्ले करो। इससे भोजनकी पवित्रता बनी रहेगी और शरीर तथा मन स्वस्थ होंगे। हाथ-मुँह न धोने तथा कुल्ले न करनेके कारण ही दाँतोंका पायरिया रोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है।

बिना नहाये-धोये गंदे विचारोंवाले सर्वभक्षी मनुष्यके अथवा कामी, क्रोधी तथा वैरभाव रखनेवाले एवं अस्वस्थ व्यक्तिके हाथका बनाया हुआ भोजन मत करो। उससे मनमें अपवित्रता, गन्दगी, काम-क्रोधादि विकार तथा शत्रुता उत्पन्न होगी। अच्छी तरह नहाये-धोये शुद्ध शरीरवाले, पवित्र सात्त्विक भोजी, शुद्ध स्नेहमय भाववाले संयमी स्वस्थ सुहृद् व्यक्तिके हाथका बनाया भोजन करो। भोजन बनानेवाले मनुष्यके स्वस्थ या अस्वस्थ शारीरिक और मानसिक विचार तथा परमाणुओंका प्रभाव भोजनपर पड़ता है और उन पदार्थोंका भोजन करनेवाले व्यक्तिपर भी तदनुसार ही असर पड़ता है। 'जैसा अन्न, वैसा मन।'

भोजनमें मांस, मद्य तथा हिंसाजनित सभी पदार्थोंका सर्वथा एवं प्याज-लहसुन आदि तामसी पदार्थोंका भी त्याग करो। इन सब पापमयी गंदी वस्तुओंके सेवनसे सद्विचार नष्ट होते, मनमें विकार उत्पन्न होते और बुद्धिका नाश होता है। ये चीजें सर्वतोमुखी पतनकारक हैं।

चोरी, परस्वापहरण, ठगी, बेईमानी, हिंसा, भ्रष्टाचार आदि साधनोंसे प्राप्त धनसे मिले हुए भोजनसे बुद्धिका बहुत बुरी तरह नाश होता है। इससे पापमें पुण्यबुद्धि हो जाती है और फलतः मनुष्यका सर्वनाश हो जाता है। '**बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।**'

भोजन करनेसे पहले भोजनके पदार्थोंको आदरपूर्वक प्रथम भगवान्‌के अर्पण करके तब भोजन करो। ऐसा करनेपर वह 'प्रसाद' बन जायगा और उससे 'प्रसाद' (अन्तःकरणकी निर्मलता और प्रसन्नता)-की ही प्राप्ति होगी, जो समस्त कर्मोंका पवित्रीकरण, समस्त दुःखोंका नाश करनेवाला और समस्त कल्याणको प्रदान करनेवाला है।

मांस-अंडेका भोजन और चमड़ेका व्यवहार तुरंत त्याग करें

किसी एक ग्रन्थमें यह कथा पढ़ी थी (यद्यपि महाभारत आदिमें यह नहीं है) कि धृतराष्ट्रको अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेका बड़ा शोक था और वे इतने अधिक क्षमतावान् थे कि उन्हें अपने पूर्वके सौ मानव-जन्मोंकी बात याद थी। एक दिन उन्होंने शोकाकुल होकर भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'भगवन्! मुझे सौ जन्मोंकी बात याद है। इन सौ जन्मोंमें मुझसे ऐसा कोई पाप नहीं बना, जिसका फल मेरे जीते-जी मेरे सौ वीर पुत्रोंका मरण हो; फिर ऐसा क्यों हुआ? यह सुनकर योगेश्वरेश्वर भगवान्ने धृतराष्ट्रके विगत सौ जन्मोंके पूर्वके एक जन्मका दृश्य उनके सामने उपस्थित किया।

'एक नगरमें एक राजा हैं। राजा बड़े सज्जन हैं; पर वे कुछ चटोरे हैं। उनका रसोइया छिपा मांसाहारी है। उसने राजाको प्रसन्न करनेकी बात सोची। राजाके बगीचेमें एक हंस-हंसिनीका जोड़ा था। हंसिनीने सौ अंडे दिये और उसके सौ बच्चे हुए। रसोइया एक दिन उनमेंसे एक बच्चेको ले आया और उसे मारकर-पकाकर राजाको खिला दिया। राजाको वह स्वादिष्ट लगा। राजाने रसोइयेकी प्रशंसा की और उसे इनाम दिया। रसोइया इनामके लोभसे सौ दिनोंतक एक-एक बच्चेको लाकर मारकर राजाको खिलाता रहा। राजा निरामिषभोजी थे; पर उन्होंने रसोइयेसे पूछा नहीं कि यह क्या चीज है? रसोइयेने इस डरसे बताया नहीं कि निरामिषभोजी राजाको पता लगनेपर इनाम तो दूर रहा, वे नाराज होकर दण्ड दे देंगे। राजाने स्वादवश बिना पूछे हंसके सौ बच्चोंको खा लिया। यही उनका पाप था। श्रीकृष्णने यह दृश्य दिखाकर राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'वही राजा तुम हो। बीचमें सौ जन्मोंमें तुम्हारे

(२) 'जवान गाय, बैल एवं भैंसकी खाल भी काममें ली जाती है। उनके पाँव एवं मुँह खूब मजबूतीके साथ बाँध देते हैं। फिर खूब उबलता हुआ पानी उनके ऊपर छिड़कते हैं, जिससे उनके बाल सब जल जाते हैं और खून चमड़ेमें दौरा करने लगता है। जब रक्तकी लालिमा बाहर दिखायी देने लगती है तब निर्मम अत्याचार कर चमड़ा उतार लिया जाता है।'

(३) 'काफ लेदर' अर्थात् बछड़ेकी खाल...। गायके बछड़ेको खूब अच्छी तरहसे स्नान कराया जाता है। फिर लचकदार बेंतोंकी पिटाईसे ताजा खून उबलता है, चमड़ा मुलायम हो जाता है। फिर काँटेदार मशीनके नीचे खड़ाकर बिजलीका खटका दबा देते हैं। मूँगफलीके छिलकेके समान मशीन चमड़ा उतार देती है और वह जीवित अस्थि-पंजर दो-तीन घंटेतक वहीं पड़ा रहता है।

(४) 'काफी या क्रोम लेदर' से भी मुलायम और नाजुक बढ़िया शौकीनीकी जो चीजें होती हैं तथा जिससे कोट, चेस्टर, बिरजिस आदि बढ़िया चीजें बनती हैं, वे भेड़, बकरी, भैंस एवं गाय आदि पशुओंका गर्भपात कराकर तथा इन्हें मारकर इनके गर्भका कोमल भ्रूण निकालकर उसके चमड़ेसे तैयार की जाती हैं; क्योंकि गर्भस्थ भ्रूणोंका चमड़ा अत्यन्त मुलायम और लचीला होता है।

(५) चमड़ेकी जो बढ़िया-बढ़िया चीजें लाल या ब्राउन रंगकी होती हैं, वे खूनसे ही रँगी होती हैं। खून निकालनेके लिये मशीनें होती हैं। स्वस्थ गाय या जवान बछड़े-बछड़ियोंको मशीनके पास खड़ा कर दिया जाता है और औजारोंसे उनकी नस काटकर मशीनकी नली लगा दी जाती है। वह मशीन शरीरका खून चूस लेती है और दो-तीन घंटों बाद वह पशु चल बसता है।

दानव बने मानवकी क्रूर दानवताका यह ज्वलन्त उदाहरण है!
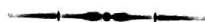
पुराणोंमें दिव्य उपदेश

अनेकजन्मतपसा लब्ध्वा जन्म च भारते।
ये हरिं तं न सेवन्ते ते मूढाः कृतपापिनः॥
वासुदेवं परित्यज्य विषये निरतो जनः।
त्यक्त्वामृतं मूढबुद्धिर्विषं भुङ्क्ते निजेच्छया॥

(ब्रह्मवैवर्त०, कृष्णजन्म० १६। ३८-३९)

'अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलसे भारतमें जन्म पाकर भी जो लोग श्रीहरिका सेवन—भजन नहीं करते, वे मूर्ख और पापी हैं। जो मनुष्य वासुदेवका त्याग करके विषयोंमें रचा-पचा रहता है, वह महान् मूर्ख है और जान-बूझकर अमृतका त्याग करके विष-पान करता है।'

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्पता।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये॥

(पद्म०, पाताल० ८४। ४२)

'अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्यपालन तथा निष्कपटभावसे रहना—ये भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये मानसिक व्रत कहे गये हैं।'

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७। १४। ८)

'मनुष्योंका हक केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनका पेट भर जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये।'

असंकल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्॥

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया॥
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया॥

(श्रीमद्भा० ७। १५। २२—२४)

'धर्मराज! संकल्पोंके परित्यागसे कामको, कामनाओंके त्यागसे क्रोधको, संसारी लोग जिसे अर्थ कहते हैं उसे अनर्थ समझकर लोभको और तत्त्वके विचारसे भयको जीत लेना चाहिये। अध्यात्मविद्यासे शोक और मोहपर, संतोंकी उपासनासे दम्भपर, मौनके द्वारा योगके विघ्नोंपर और शरीर-प्राण आदिको निश्चेष्ट करके हिंसापर विजय प्राप्त करनी चाहिये। आधिभौतिक दुःखको दयाके द्वारा, आधिदैविक वेदनाको समाधिके द्वारा और आध्यात्मिक दुःखको योगबलसे एवं निद्राको सात्त्विक भोजन, स्थान, संग आदिके सेवनसे जीत लेना चाहिये।'

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(पद्म०, उ० ९४। २१)

नारदजी बोले कि एक बार मैंने भगवान्‌से पूछा—'देवेश्वर! आप कहाँ निवास करते हैं?'

—तो वे भगवान् विष्णु मेरी भक्तिसे संतुष्ट होकर इस प्रकार बोले—'नारद! न तो मैं वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें। मेरे भक्त जहाँ मेरा गुणगान करते हैं, वहीं मैं भी रहता हूँ।'

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।

विमुक्तिमार्गे सुखसिन्धुमग्नं
लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

(स्कन्द०, मा० कुमार० ५५। १३९)

'जिसका चित्त मोक्षमार्गमें आकर परब्रह्म परमात्मामें संलग्न हो सुखके अपार सिन्धुमें निमग्न हो गया है, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी माता कृतार्थ हो गयी तथा उसे प्राप्त करके यह सारी पृथ्वी भी सौभाग्यवती हो गयी।'

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

(नारद०, पूर्व० प्रथम० ७। १५)

'यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक—इनमेंसे एक-एक भी अनर्थका कारण होता है, फिर जहाँ ये चारों मौजूद हों, वहाँके लिये क्या कहना।'

नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः।
नास्ति निन्दासमं पापं नास्ति मोहसमासवः॥
नास्त्यसूयासमा कीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः।
नास्ति रागसमः पाशो नास्ति सङ्गसमं विषम्॥

(नारद०, पूर्व० प्रथम० ७। ४१-४२)

'अकीर्तिके समान कोई मृत्यु नहीं है, क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है। निन्दाके समान कोई पाप नहीं है और मोहके समान कोई मादक वस्तु नहीं है। असूयाके समान कोई अपकीर्ति नहीं है, कामके समान कोई आग नहीं है। रागके समान कोई बन्धन नहीं है और आसक्तिके समान कोई विष नहीं है।'

परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे परम्।

(ब्रह्मवैवर्त०, श्रीकृष्णजन्मखण्ड ४। ७)

'परायी निन्दा विनाशका और अपनी निन्दा यशका कारण होती है।'

'जैसे इस देहमें जीवात्माकी कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही देहान्तरकी—दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है। इससे तत्त्व-धीर पुरुष मोहित नहीं होते।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(२। २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे जीवात्मा पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।'

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥

(२। १२)

'अर्जुन! न ऐसा है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू भी नहीं था अथवा ये राजालोग भी नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब आगे नहीं रहेंगे।'

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

(४। ५)

'अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं, पर हे परंतप! तू उन्हें नहीं जानता, मैं जानता हूँ।'

अवश्य ही भगवान्‌के जन्म न तो कर्मवश होते हैं और न पांचभौतिक देह उन्हें प्राप्त होता है, न वे कभी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अधीन होते हैं। उनके स्वेच्छामय जन्म, शरीर तथा कर्म सभी दिव्य-भगवत्स्वरूप होते हैं। इसीसे वे कहते हैं—

कर्मसंचयमें पुण्य अधिक होनेके कारण इस पापका फल भोगनेका अवसर नहीं आया। इस जन्ममें तुम्हारा वह कर्म-फल प्रकट हुआ।'

इस आख्यायिकाको पढ़कर उन लोगोंको अपने भविष्यपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये, जो स्वादवश निरीह गरीब अनबोल पशु-पक्षियोंको मारकर-मरवाकर उनका मांस खाते हैं, मांस बेचते हैं, पशु-पक्षीका वध करते हैं, वधकी योजना बनाते हैं और कसाईखाने खोलते तथा चलाते हैं तथा अंडे खाते एवं अंडे खानेका प्रचार करते हैं।

बड़े ही दुःखका विषय है कि भारतवर्ष आज अपने सर्वात्मभाव तथा सर्वभूतहितरूप स्वधर्मको भूलकर पाप-पथमें दौड़ने लगा है। इसका परिणाम क्या होगा पता नहीं, पर विचारशील तथा अपना भला चाहनेवालोंको मांस तथा अंडोंका आहार कदापि नहीं करना चाहिये। यह हमारी प्रार्थना है।

इसीके साथ चमड़ेका व्यवहार भी त्याग करना चाहिये। इस समय फैशनकी गुलामीके कारण चमड़ेका प्रचार बहुत बढ़ रहा है। चमड़ेके कारण बहुत बड़ी संख्यामें पशुहत्या और गोहत्या होती है। शौकीन लोग नरम चमड़ेके जूते पहनना पसंद करते हैं। चमड़ा किस प्रकार उतारा तथा बनाया जाता है, इसके सम्बन्धमें 'धर्मयुग' दिनांक ३०।११।५२ में निम्नलिखित विवरण छपा था। उसे नीचे पढ़िये और चमड़ेका व्यवहार करते समय अपने कर्तव्यपर विचार कीजिये। नहीं तो, आपका भविष्य निश्चय ही महान् दुःखमय होगा।

(१) 'गाय, बैल, भैंस आदिका चमड़ा प्राप्त करनेके लिये पहले उन्हें नलोंके नीचे खड़ा करके पाँव एवं सिर बड़ी मजबूतीके साथ बाँधा जाता है ताकि वे इधर-उधर हिल न सकें। मुँहको इतना कसकर बाँध देते हैं कि वे अपनी करुण पुकार भी न सुना सकें। इसके बाद उनपर पानी छिड़का जाता है, बादमें लचकदार बेंतोंसे उनकी खूब पिटाई की जाती है, ताकि चमड़ेमें खूनकी तीव्रगति शुरू हो। चमड़ा मोटा एवं सूज जानेपर गर्दन धड़से अलग कर दी जाती है।'

बिना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेद्भुवि॥

(ब्रह्मवैवर्त०, श्रीकृष्ण० १८। १२६)

'विपत्तिके बिना पृथ्वीपर किसीकी महिमा कैसे प्रकट हो सकती है।'

स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान्।
स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च॥

(ब्रह्मवैवर्त०, श्रीकृष्ण० ७२। १०५)

'वे सर्वेश्वर प्रभु जिसे मारते हैं उसकी रक्षा कौन पुरुष कर सकता है? और वे सर्वात्मा श्रीहरि जिसकी रक्षा करते हैं, उसे मारनेवाला भी कोई नहीं है।'

पश्चात्तापः पापकृतां पापानां निष्कृतिः परा।
सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम्॥

(शिव०, मा० ३। ५)

'पश्चात्ताप ही पाप करनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। सत्पुरुषोंने सबके लिये पश्चात्तापको ही सब पापोंका शोधक बतलाया है।'

दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते।
आपत्कालेषु मित्रस्याशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य हि॥
विनतेः संकटे प्राप्तेऽवितथस्य परीक्षतः।
सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम्॥

(शिव०, रुद्र० १७। १२-१३)

'दाताकी परीक्षा दुर्भिक्षमें, शूरवीरकी परीक्षा रणांगणमें, मित्रकी परीक्षा विपत्तिमें तथा स्त्रियोंके कुलकी परीक्षा पतिके असमर्थ हो जानेपर होती है। संकट पड़नेपर विनयकी परीक्षा होती है और परीक्षामें सच्चे एवं उत्तम स्नेहकी परीक्षा होती है, अन्यथा नहीं। यह मैं सत्य कहता हूँ।'

खान-पानमें भयानक अशुद्धि

भारतवर्षमें त्रिकालज्ञ परम ज्ञान-विज्ञान-विशारद ऋषियों-मुनियों तथा मनीषियोंने खान-पानकी शुद्धिपर विशेष ध्यान दिया था। खान-पानकी शुद्धिसे आचार तथा धर्मका सम्बन्ध तो प्रधान है ही, स्वास्थ्यका भी बड़ा सम्बन्ध है। अनुचित खान-पानका स्वास्थ्यपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। भोजनसे ही मन-बुद्धिका निर्माण होता है। 'जैसा भोजन वैसा मन'—प्रसिद्ध है। आहारकी शुद्धिसे ही मनकी शुद्धि होती है। शुद्ध आहारके लिये कम-से-कम नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं।

(१) न्याय तथा सत्यतापूर्वक कमाये हुए अपने हकके पैसोंसे प्राप्त हुआ अन्न।

(२) हिंसा-प्रतिहिंसा, परस्वापहरण, पर-हानिसे रहित अन्न।

(३) शुद्ध स्थानमें, शुद्ध शान्त मनवाले व्यक्तिके द्वारा पाक किया हुआ अन्न।

(४) तामसिकतासे वर्जित, उत्तेजना करनेवाला राजस अन्न न होकर शुद्ध सात्त्विक आहार।

(५) उच्छिष्ट या किसीकी थालीमें खानेसे बचा हुआ अथवा किसीका जूठा हुआ भोजन न होकर शुद्ध आहार करना।

वर्तमानमें इन सभीकी उपेक्षा है और हमारे भोजनमें खूब मनमानी चल रही है। सत्य तथा न्याययुक्त कमाई बहुत कम अंशमें रह गयी है। दूसरोंका हक मारने-लूटनेकी प्रचेष्टा व्यापार-कुशलता मानी जाने लगी है।

जनताके स्वास्थ्य-नाशकी कोई परवा न करके अर्थलोभवश खाने-पीनेकी वस्तुओंतकमें मिलावट की जाती है। अभी दिल्लीकी एक सरकारी रिपोर्टमें लिखा था कि 'खाद्यान्नोंमें १५

से ५१ प्रतिशततक मिलावट होती है।' कुछ समय पूर्व अधिकारके साथ यह कहा गया था कि 'दवाइयोंमें प्राय: ५० प्रतिशत नकली दवाइयाँ या मिलावट की हुई दवाइयाँ बाजारमें बिकती हैं।' ऐसी मिलावटी खाद्य-सामग्रियाँ तथा दवाइयाँ बहुत पकड़ी भी गयी हैं और पकड़ी जाती हैं।

आहारकी तामसी वस्तुओंका प्रचार-प्रसार बहुत जोरसे बढ़ रहा है। हिंसामय भोजनका प्रचार तो स्वयं सरकार ही करना चाहती है, इसीसे स्थान-स्थानपर वैज्ञानिक कसाईखाने खोलनेकी और मछली-मुर्गी-व्यवसायकी घृणित योजनाएँ हैं।

हर किसीके हाथका न खाना आजकल कानूनन अपराध माना जाता है। निरामिषभोजी विद्यार्थियोंके लिये बड़ी कठिनता है। अहिंसा-प्रधान भारतवर्षमें आज ऐसे होस्टलोंका, विद्यार्थी-गृहोंका या छात्रालयोंका अभाव हो रहा है; जहाँ केवल निरामिष भोजन बनता हो। प्राय: सभी होस्टलोंमें आमिष भोजन बनता है। निरामिषभोजी बच्चोंके लिये उसी रसोईमें निरामिष चीजें उन्हीं बरतनोंमें तथा उन्हीं रसोइयोंके द्वारा बना दी जाती हैं। छोटे बच्चे जानते भी नहीं कि कौन-सा पदार्थ निरामिष है। फिर अधिक-संख्यक आमिषभोजी साथियों और संरक्षकों-संचालकोंके द्वारा उन्हें बार-बार आमिष भोजनके लिये उत्साहित किया जाता है। इस अवस्थामें उन बच्चोंका—जिनके घरोंमें कुल-परम्परासे सदा निरामिष भोजन होता आया है—आमिष भोजनसे बचे रहना असम्भव-सा हो गया है। अभी हमारे परिवारके ही लगभग छ: वर्षके एक बच्चेको छात्रावासमें रखना था; पर कोई ऐसा छात्रालय मिला ही नहीं, जहाँ शुद्ध निरामिष भोजनकी ही व्यवस्था हो। यह बड़े ही दु:खकी बात है और इसपर अहिंसक शुद्ध निरामिषभोजियोंके लिये विचार करने तथा कर्तव्य निश्चय करनेकी आवश्यकता है।

और चीनी मिट्टीके मिश्रणसे बने हुए उपकरण तथा खाने-पीनेके बर्तन अपने अन्तिम परिपक्वरूपमें सामने आने लगे।'

इस प्रकार ये प्याले, जिनमें लोग चाय पीते हैं, मिट्टी तथा हड्डीकी बुकनीकी मिलावटसे बनते हैं। अतएव चीनी मिट्टीके इन प्यालोंका उपयोग करना घृणास्पद है।

इस प्रकार खान-पानकी सभी प्रकारकी शुद्धियोंपर खुलेआम चारों ओरसे प्रहार हो रहे हैं। पता नहीं, देशकी पतनकी गति तामसिकताकी किस निम्न-स्तरकी भूमिकापर पहुँचकर स्थिर होगी? अभी तो शत-शत दिशाओंसे पतन हो रहा है और उसीको उत्थान माना जाता है। इस विषयपर गम्भीरतासे सोचना चाहिये।

मांसाहारका तथा गोमांसका घृणित प्रचार

मनुष्य जिस प्रकारका भोजन करता है, उसी प्रकारकी उसके मन और बुद्धिकी रचना होती है। सात्त्विक भोजनसे सात्त्विक मन-बुद्धि और तामससे तामसिक मन-बुद्धि बनते हैं, उसीके अनुसार इच्छा या स्फुरणा होती है और उन्हींके अनुसार क्रिया होती है। इस समय भोजनका अनाचार-भ्रष्टाचार जिस तरह बढ़ रहा है, जिस तरह उसमें तामसिक वस्तुओंका प्रवेश हो रहा है, उसी तरह मन-बुद्धिका भी पतन हो रहा है और उसीके अनुसार जीवनके कर्म भी बिगड़ रहे हैं। आजके इस नैतिक पतनमें भोजनका तामस और अनाचारयुक्त होना भी एक प्रधान कारण है। किसीकी भी जूठन खाना अनाचार है। पर इसका परहेज तो आजकल प्रायः उठ ही गया है। सदाचारकी दृष्टिसे न भी देखें तो स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी यह बहुत विचारणीय है। इस समयके कीटाणु सिद्धान्तके अनुसार एकका रोग जूठन खानेसे दूसरेमें निश्चय ही आता है। होटलोंमें, पब्लिक भोजनालयोंमें, रेल-जहाज-वायुयानोंमें तो खुलेआम जूठे बर्तनोंमें जूठन खायी-खिलायी जाती ही है। विवाहोंमें, भोजोंमें और गृहस्थके घरोंमें भी इसका प्रचार बढ़ रहा है तथा इससे परहेज रखनेवालोंको असभ्य माना जाता है। इससे शरीर और मनके संक्रामक रोग बढ़ते हैं और मनुष्यका शारीरिक-मानसिक पतन होता है। उच्छिष्ट भोजनको गीतामें भगवान्ने भी तामस बतलाया है और तमोगुणकी वृद्धिसे अधःपतन होता है, यह भी स्पष्ट कहा है—'**अधो गच्छन्ति तामसाः**'।

तामसिक भोजनमें प्याज-लहसुन आदिके निषेधका स्मृतियोंमें उल्लेख है, पर उसकी ओर तो आज कौन ध्यान देता है, इस

समय तो अण्डे, मछली, मांस-मद्यका उन घरोंमें भी प्रवेश हो गया है, जिनके कुल-परम्परामें सदासे ही इनको घृणित माना जाता था और महान् अनर्थकारी समझकर इनका स्वाभाविक निषेध था। सरकार भी साहित्यसे, बूचड़खानोंके विस्तारसे और मछली-सूअर-मुर्गी-उद्योगोंके नामपर योजनाएँ बना-बनाकर मांसाहारके घृणित और पतनकारी प्रचार-प्रसारमें जोरोंसे लगी है! अण्डे और मछलीतकको निरामिष बताया जाता है और लाभ बता-बताकर अण्डोंका प्रचार किया जाता है। पशुओंके अंगोंसे दवा बनानेके कारखाने तो बहुत हो गये हैं और वे उत्तरोत्तर बढ़ ही रहे हैं। इसके लिये भी सरकारी योजना है। यह परम दुर्भाग्य है!

मांस खानेवाले हिंदू भी गोमांससे तो बड़ी घृणा करते थे; पर आजकल वह घृणा भी निकलती जा रही है। विदेशोंमें यातायात बढ़ जानेसे, दुष्ट-सम्पर्कसे तथा धार्मिक बुद्धिके सतत ह्रासससे स्वाभाविक ही यह हो रहा है! जहाँ मांस-गोमांस पकाये जाते हैं, वहीं उन्हीं बर्तनोंमें निरामिषभोजन करनेवाले हिंदुओंके लिये अन्न पकाया जाता है और निरामिषभोजी भाई-बहिन बड़े चावसे उन्हीं बर्तनोंमें उसे खाते हैं। अभी समाचार मिला है कि विपुल धनराशि खर्च करके सरकारके द्वारा बनाये हुए दिल्लीके प्रसिद्ध 'अशोक होटल' में, जिसमें बड़ी शानसे बहुत ऊँचे घरानेके सम्भ्रान्त निरामिषहारी हिंदू (सनातनधर्मावलम्बी) भी ठहरते हैं, गोमांसका व्यवहार किया जाता है। कलकत्तेसे प्रकाशित स्टेट्समैनके पिछले ३१ दिसम्बरके अंकमें 'अशोक-होटल' का एक टेण्डर विज्ञापन प्रकाशित हुआ है, जिसमें होटलके लिये गोमांस, गायकी जीभ, कटा हुआ गायका अंदरका भाग, गायका दिमाग और जिगर, बैलकी पूँछ और गुर्दा आदिकी सन् १९६१-६२ के लिये आवश्यकता बतलायी गयी है। गोमांस

आदिके साथ ही जीवित कबूतर, बटेर, तीतर, मुर्गा-मुर्गी, सूअर, अण्डे, तरह-तरहकी मछलियाँ और भेड़ आदिकी आवश्यकता बतलाकर उन सबके टेंडर माँगे गये हैं। यह एक विशाल सरकारी होटलका स्वरूप है। अहिंसाके सिद्धान्तपर स्थापित तथा अपनेको धर्म-निरपेक्ष बतलानेवाली सरकार किस प्रकारसे धर्मपर आघात करके घोर हिंसाको प्रोत्साहन दे रही है और परम अहिंसक 'अशोक' के नामपर स्थापित होटलके द्वारा किस प्रकार हिंसाका प्रचार और गोमांससे घृणा करनेवाले तथा हिंसामात्रको महापाप माननेवाले लोगोंके धर्मपर आक्रमण किया जा रहा है, इसका यह एक उदाहरण है। अहिंसा तथा धर्मसे प्रेम करनेवाले लोगोंको घोर विरोध करके इस अनाचारका प्रसार रोकना चाहिये। होटलके अधिकारियोंको बाध्य कर देना चाहिये कि वे इस पापको न करें। न मानें तो होटलका बहिष्कार कर देना चाहिये! जहाँतक हो सके, तुरंत ही पूर्ण निश्चय करके मांसाहारसे बचना-बचाना चाहिये। नहीं तो त्यागी, तपस्वी, सदाचारी, सात्त्विकाहारी ऋषि-मुनियोंका यह पवित्र देश क्रूर पिशाचोंकी क्रीड़ाभूमि बन जायगा और यहाँ पैशाचिक ताण्डव होने लगेगा!

पतनकारी सिनेमा और गंदे पोस्टरोंका घोर विरोध परमावश्यक

आज 'कर्तव्य' के स्थानपर 'अधिकार' और 'त्याग' के स्थानपर 'अर्थ' का पूर्णाधिकार हो गया है। यही इस युगकी देन है। इसीसे आजके बुद्धिमान् और शिक्षित कहलानेवाले मानवसे लेकर श्रमजीवी मजदूरतक धनी-निर्धन सभी प्रत्येक विषयपर 'अधिकार' तथा 'अर्थ' के दृष्टिकोणसे ही सोचते-विचारते हैं। दूसरेका कर्तव्य सोचते हैं और अपने अधिकारपर अड़े रहते हैं। अर्थ तो सभी जगह प्रधान आसनपर आरूढ़ है। इसीसे आज अखण्ड भारतकी अखण्डता नष्ट हो रही है और जगह-जगह भाषा तथा प्रान्तके नामपर काट-छाँट और उपद्रव हो रहे हैं और परस्परके वैमनस्य तथा अविश्वाससे जन-जीवन दुःखी हो रहा है। वर्तमान पाकिस्तान, नये पाकिस्तान-ईसाईस्तानोंके लिये गुप्त योजना और प्रचार, पंजाबके दो खण्ड करनेकी बात, आसाममें स्वतन्त्र पहाड़ी राज्यका प्रस्ताव, वेरुवाड़ीका प्रदान, एक प्रान्तके स्थान दूसरे प्रान्तको देने-लेनेकी योजना आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हम मान रहे हैं—प्रगति हो रही है, पर वस्तुतः हो रहा है—घोर पतन! इसीसे अशान्ति, द्वेष, दम्भ तथा दुःखके बादल उमड़े आ रहे हैं।

इसी पतनोन्मुखी दृष्टिसे पैसेके लिये खान-पानकी चीजोंमें मिलावट, नकली दवाइयोंका निर्माण, घूसखोरी, नैतिकतापर खुला आघात करनेवाले पतनकारी साहित्यका प्रकाशन, गंदे सिनेमाओंका घोर प्रचार, नर-नारियोंके मनोंमें सहज ही विकार उत्पन्न करनेवाले सिनेमाके पात्र-पात्रियोंके चित्रोंका प्रकाशन और गंदे पोस्टर आदिका

विस्तार हो रहा है और इन साधनोंके द्वारा प्रकारान्तरसे समाजमें दुराचारोंका प्रबल प्रसार हो रहा है। घृणा तो निकल ही गयी है। दुराचारमें गौरवबुद्धि हो गयी है!

सिनेमाके द्वारा समाजमें नर-नारियोंका जिस अनुपातसे घोर पतन हो रहा है, वह यों ही होता रहा तो सदाचार और नैतिकता नामकी कोई वस्तु ही नहीं रह जायगी। ऐसे-ऐसे दृश्य और गाने दिखाये-सुनाये जाते हैं, जिनकी चर्चा भी माँ-बहिन-बेटीके सामने पुत्र-भाई-पिता नहीं कर सकते, फिर माँ-बहिन-बेटी तो करती ही कैसे? पर सिनेमामें बड़े चावसे माँ-बहिन-बेटियोंको तथा कोमलमति बालक-बालिकाओंको साथ ले जाकर स्वयं पुत्र-पिता-भाई इन गंदे दृश्योंको देखते और गंदे गाने सुनते हैं। पहले तो उनके सिर नीचे रहते हैं, पर धीरे-धीरे संकोच निकल जाता है और मानसिक पतनका जीवनमें पूर्ण प्रकाश हो जाता है। यही हो रहा है। सिनेमामें नाचने-गानेवाली तरुणियोंके चित्र छापकर और बड़े-बड़े पोस्टरोंमें उनके शरीरों और चेष्टाओंको दिखाकर लोगोंका मन आकर्षित किया जाता है। अभिनय करनेवाली युवतियोंके चित्र राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री आदिके साथ छपते हैं, प्रचुर धनराशि उन्हें मिलती है और उनके दर्शनार्थ भले-भले लोगोंकी भीड़ उमड़ी पड़ती है। यह सब देखकर अच्छे-अच्छे घरानोंकी लड़कियोंके मनमें भी ऐसी ही बननेका प्रलोभन उत्पन्न हो जाता है और कई युवतियाँ तो इसीलिये घरोंसे भागकर बड़ी विपत्तिका सामना करनेको बाध्य होती हैं। पता नहीं, इनके प्रचारमें कौन-सा लाभ सोचा जाता है, हमारी समझसे तो कुछ लोगोंमें धनवृद्धि, जनताका धन-नाश तथा अनाचार-व्यभिचारकी प्रवृत्तिके सिवा और कोई भी लाभ इससे नहीं होता। 'मनोरंजन तथा कला' तो धोखा देनेकी चीज है। जैसे शराबके गुण बताकर शराबके

अहिंसा परम धर्म और मांसभक्षण महापाप

(मांसभक्षणसे सब प्रकार हानि)

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते॥
अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वा प्लुतम्।
सर्वदानफलं वापि नैतत् तुल्यमहिंसया॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

'अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम सत्य है, अहिंसासे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है। सब यज्ञोंमें दान किया जाय, सब तीर्थोंमें स्नान किया जाय, सब प्रकारके दानोंका फल प्राप्त हो, तो भी उसकी अहिंसाके साथ तुलना नहीं हो सकती।'

सभी धर्मग्रन्थोंने अहिंसाकी महिमा गायी है। जैन, बौद्ध-धर्म तो अहिंसाका ही प्रधानरूपसे प्रतिपादन करते हैं। ईसाई, इस्लाम तथा पारसीधर्ममें भी अहिंसाकी प्रशंसा की गयी है। महात्मा ईसा कहते हैं—

'Thou shalt not kill, and ye shall be holy man unto me neither shall ye eat any flesh that is torn of beasts in the field.'

(J. Christ)

'तू किसीको मत मार। तू मेरे समीप पवित्र मनुष्य होकर रह। जंगलोंके प्राणियोंका वध करके उनका मांस मत खा।'

बाइबिलमें एक अवतरण आया है—'ऐ देखनेवाले! देखते क्या हो, मारे जानेवाले जानवरोंके लिये अपनी जबान खोलो।'

इसी प्रकार कुरानमें लिखा है—'हरा पेड़ काटनेवाले, मनुष्य खरीदनेवाले, जानवरको मारनेवाले तथा दूसरोंकी स्त्रीसे कुकर्म करनेवालेको खुदा मुआफ नहीं कर सकता। खुदा उसीपर दया दिखाता है, जो उसके बनाये जानवरपर दया दिखाता है।'

सुरात-ए-हजमें लिखा है—'खुदा तुम्हारी कुर्बानीमें जानवरका मांस और लहू नहीं चाहता। वह सिर्फ तुम्हारी पवित्रता चाहता है।'

फिरदौसीने कहा है—

'न तो पशुओंका खाना और न पशुओंका शिकार ही करना। यह हमारा जरथुस्थी नेक धर्म है।'

महात्मा गाँधीजीके महान् त्याग तथा सक्रिय उपदेशसे अहिंसाकी महिमा आजके युगमें भी फैल रही है। अहिंसाकी प्रशंसा सभी करते हैं। परंतु आज अहिंसाका अर्थ बहुत ही संकुचित कर दिया गया है। किसी मनुष्यपर प्रहार करना, मनुष्यको मारना, पत्थर फेंकना, आग लगाना, किसी दल-विशेषके विरोधमें नारे लगाना, किसीके स्वार्थमें हानि पहुँचाना, जबरदस्ती करना—बस, मनुष्योंके सम्बन्धित इन्हीं तथा ऐसी ही कुछ और क्रियाओंको हिंसा माना जाता है और इनसे बचनेको अहिंसा। मनुष्य अपने स्वार्थ-साधनके लिये, अपने खेतों-बागोंकी रक्षाके लिये, अपने पापी पेटका गड्ढा भरनेके लिये, जीभके स्वादके लिये, मनोरंजनके लिये, अनुसन्धानके लिये और औषध-निर्माण आदिके लिये चाहे जितने प्राणियोंको, चाहे जैसे कष्ट दे, चाहे जितनी संख्यामें मारे इसमें कोई भी हिंसा नहीं है। हिंसाकी इसी व्याख्याके

मांस खानेवाले लोग संसारमें हैं, इसीलिये प्राणियोंकी हिंसा होती है, इसीलिये जगह-जगह कसाईखाने बने हैं। कसाई मांसखोरोंके लिये ही प्राणियोंकी हत्या करता है। मनुमहाराज कहते हैं—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥

(मनुस्मृति ५।५१)

'समर्थन करने या अनुमति देनेवाला, अंग काटनेवाला, मारनेवाला, (हिंसाके लिये पशु-पक्षी और मांस) खरीदनेवाला, बेचनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला—सभी हत्यारे कहलाते हैं।' महाभारतमें कहा गया है—

धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः॥
आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते॥

(अनुशासनपर्व)

'मांस खरीदनेवाला धनसे प्राणिहत्या करता है, खानेवाला भोगसे करता है और मारनेवाला पशुको बाँधकर तथा मारकर हिंसा करता है। जो मनुष्य हत्या करनेके लिये पशुको लाता है, उसे मारनेकी अनुमति देता है, काटता है तथा खरीदता, बेचता, पकाता और खाता है—ये सभी पशुहत्यारे और मांसखोर ही समझे जाते हैं।'

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात् स नृशंसतरो नरः॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

'जो मनुष्य दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है, उससे बढ़कर अति नीच और कोई नहीं है, वह अति निर्दयी है।'

मांस खानेवालोंको क्या फल मिलता है?

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
अविश्वास्योऽवसीदेत् स इति होवाच नारदः॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

श्रीनारदजी कहते हैं—'जो दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है, वह विश्वासपात्र नहीं रहता और उसे दुःख उठाना पड़ता है।'

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
उद्विग्नराष्ट्रे वसति यत्र यत्राभिजायते॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

'जो दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है, वह जहाँ-कहीं भी जन्म लेता है सदा बेचैन ही रहता है।'

भीष्मपितामह धर्मराज युधिष्ठिरसे कहते हैं—

ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवनैषिणाम्।
भक्ष्यन्ते तेऽपि तैर्भूतैरिति मे नास्ति संशयः॥
मां भक्षयति यस्मात् स भक्षयिष्ये तमप्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं ततो बुद्ध्यस्व भारत॥
घातको हन्यते नित्यं तथा बध्येन बन्धकः॥

'जो जीवित रहनेकी इच्छावाले प्राणियोंका मांस खाते हैं, वे भी उन प्राणियोंके द्वारा दूसरे जन्ममें खाये जाते हैं। इस विषयमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। युधिष्ठिर! जिसका वध किया जाता है, वह प्राणी कहता है—आज मुझे वह खाता है (**मांसं भक्षयते**)। तो मैं भी कभी उसे खाऊँगा (**भक्षयिष्ये तमप्यहम्**)। यही 'मांस' शब्दका तात्पर्य है। इस जन्ममें जिस जीवकी हत्या की जाती है, वह दूसरे जन्ममें अपने पहले जन्मके हत्यारेको मारता है।

जाताश्चाप्यवशास्तत्र भिद्यमानाः पुनः पुनः।
हन्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः॥

कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः।
आक्रम्य मार्यमाणाश्च त्रस्यन्त्यन्ये पुनः पुनः॥

'मांसभक्षी जीव कहीं जन्म लेनेपर भी परवश होते हैं, वे बार-बार शस्त्रोंसे काटे जाते और पकाये जाते हैं, उनकी यह दुर्गति प्रत्यक्ष देखी जाती है। (आज जो मांसभक्षियोंके द्वारा काटे और पकाये जाते हैं, ये सभी प्राणी पूर्वजन्ममें मांसभक्षी मनुष्य ही थे) फिर अपने पापोंके कारण कुम्भीपाक नरकमें डाले जाते और भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म लेकर गला घोंट-घोंटकर मारे जाते हैं।'

मनुष्य जैसा भोजन करता है, वैसा ही उसका मन तथा स्वभाव बन जाता है। जिन पशु-पक्षियोंका मांस वह खाता है, उन्हींके-से गुण, आचरण तथा स्वभाववाला वह बनता चला जाता है। उसकी आकृति भी क्रमशः उसी प्रकारकी बनने लगती है। वह इसी जीवनमें मनुष्य-स्वभावसे गिरकर पशुस्वभावापन्न, निर्दय, मूढ और उच्छृंखल बन जाता है और मरनेके बाद उसी भावनाके अनुसार तथा अपने दुष्कर्मोंका बदला भोगनेके लिये उन्हीं प्राणियोंके शरीर प्राप्त कर अत्यन्त दुःख भोगता है। भीष्मपितामहने कहा है—

येन येन शरीरेण यद् यत् कर्म करोति यः।
तेन तेन शरीरेण तत् तत् फलमुपाश्नुते॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

'प्राणी जिस-जिस शरीरसे जो-जो कर्म करता है, वह उस-उस शरीरसे वैसा ही फल पाता है।' मनु महाराजने भी कहा है—

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते॥

(५।४५)

'जो निरपराध प्राणियोंको अपने सुखकी इच्छासे मारता है, वह जीवित अवस्थामें और मरनेके बाद भी सुख नहीं पाता।'

इस प्रकार मांसभक्षी हिंसापरायण लोग निश्चित ही दुःख, नरक तथा नीच गतिको प्राप्त होकर बार-बार महान् क्लेश भोगते रहते हैं।

मांसभक्षणसे रोगोत्पत्ति तथा स्वास्थ्यनाश

जिन जानवरोंका मांस मनुष्य खाता है, उनके शरीरके रोगके परमाणु उस मनुष्यमें आ जाते हैं और वह कठिन-से-कठिन रोगोंका शिकार हो जाता है—

१. उल्लामा जलाल्लुद्दीन सेवती लिखते हैं, 'गायका गोश्त मर्ज और उसका दूध-मक्खन शिफा है।'

२. हजरत आयशा फर्माती हैं, 'गायका दूध दवा, उसका मक्खन शिफा और उसका गोश्त सरासर मर्ज है।'

३. उल्लामा तिवदी जहीरने रवायत की है, 'गायका गोश्त बीमारी, उसका मक्खन दवा, उसका दूध शिफा है।'

हजरत इब्ने मसऊद सहावी अपनी किताब 'मस्तदरक' में गायके गोश्तके सम्बन्धमें स्वयं पैगम्बर साहेबकी कही हुई बातको अक्षरशः इस प्रकार उद्धृत करते हैं—

अलैकुम् व अल्वानुल् बकरे व अस्मानिहा न इय् याकुम् व लुहूमुहो। लवनुहा शिफाउन व समिनुहा दवाउन् व लहमुहाद आउन॥

अलमुश्तहर हकीम इब्राहीम जयपुरीने दिल्लीमें एक नोटिस बँटवाया था, जिसका आशय इस प्रकार है—

'अज रूए तिब्ब गायका गोश्त जुकाम, कोढ़, दिमागी अमराज, सौदा जहालत, गजपलिया वगैरह बीमारियाँ पैदा करता है। औरतोंका हैज अजवक्त बंद कर तौलीद औलाद मुनक़िता कर देता है और हैज बंद हो जानेपर हजारहाँ मोहलक बीमारियाँ मुहलिक हो जाती हैं और ये बीमारियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली जाती हैं। इसलिये गायका गोश्त खाना छोड़कर गायका दूध पीना चाहिये।'

विशेषज्ञोंद्वारा किये गये अनेक प्रयोगोंसे भी यह सिद्ध हो चुका है कि मांसभक्षण सर्वथा अनावश्यक तथा हानिकर है। कुछ प्रयोग निम्नांकित हैं—

(१)

टोकियोके प्रोफेसर बेल्जने जापानके कुछ निरामिषभोजियोंपर कुछ प्रयोग किये। पहले उन्होंने उनकी श्रमसहिष्णुताके कुछ कार्योंको जाँचकर लिख लिया, फिर उन्होंने उनको मांस देना आरम्भ किया। उन लोगोंने मांसभक्षणको एक शौककी चीज समझकर बड़े चावसे खाया; क्योंकि उच्च वर्गोंके लोग मांस खाते थे। किंतु तीन दिनोंके बाद वे बेल्ज साहबके पास आये और प्रार्थना करने लगे कि 'हमें मांस देना बंद कर दिया जाय, क्योंकि मांस खानेसे वे थकावटका अनुभव करते थे और पहलेकी भाँति कार्य नहीं कर सकते थे।'

(२)

एक दूसरा निर्णयात्मक प्रयोग इंग्लैंडमें हुआ था—

''सन् १९०८ में छः मासतक 'लंदन वेजिटेरियन एसोसियेशन'— लंदनके निरामिषभोजी-संघकी सेक्रेटरी कुमारी एफ० ई० निकल्सनने १०,००० बच्चोंको निरामिषभोजन कराया तथा 'लंदन काउंटी कौंसिल' द्वारा एक दूसरे भोजनालयमें उतने ही बच्चोंको मांससहित भोजन कराया गया। छः मासके अन्तमें दोनों दलोंके बच्चोंकी परीक्षा डॉक्टरोंद्वारा की गयी, जिससे यह सिद्ध हुआ कि मांसभोजी बच्चोंकी अपेक्षा निरामिषभोजी बच्चोंका स्वास्थ्य अधिक अच्छा, वजन अधिक, पुट्ठे अधिक सुदृढ़ तथा चमड़ा अधिक साफ था। अब 'लंदन काउंटी कौंसिल' की प्रार्थनापर और उसीकी देखरेखमें 'लंदन वेजिटेरियन एसोसियेशन' द्वारा लंदनके गरीब-से-गरीब निवासियोंको हजारोंकी संख्यामें निरामिषभोजन दिया जाता है।''

(३)

अमेरिकामें प्रोफेसर शिर्टेडन पी-एच०डी०, एस०सी०डी०, एल-डी०डी० द्वारा किया हुआ प्रयोग—जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है—बड़ा ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद है।

'अमेरिकन सिपाहियोंके साधारण दैनिक आहारमें ७५ औंस ठोस भोजन रहता है, जिसमें २२ औंस कसाइयोंके यहाँका मांस रहता है। इन सिपाहियों तथा व्यायाम करनेवालोंके भी भोजनका परिमाण एक प्रकारसे सारा-का-सारा मांस २१ औंस तथा ठोस वस्तुओंका कुछ अंश निकालकर ५१ औंस कर दिया गया। नौ महीनोंतक उन्हें इस भोजनपर रखा गया, जिसका यह परिणाम हुआ कि यद्यपि भोजनमें परिवर्तन करनेके पहले उनके शरीरका पूर्ण विकास हो चुका था और देखनेमें ऐसा मालूम होता था कि अब इससे अधिक शक्ति इनमें न आयेगी। फिर भी नौ महीनेके अन्तमें उनमें पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति आ गयी और उनका स्वास्थ्य भी पहलेसे कहीं अच्छा हो गया। यन्त्रद्वारा ठीक-ठीक नापनेसे पता चला कि उनकी शक्तिमें लगभग ५० प्रतिशत वृद्धि हुई तथा वे अधिक आसानीसे अधिक ठोस काम करने लगे, उनमें अधिक प्रसन्नता आ गयी तथा उनके स्वास्थ्यमें भी उन्नति हुई और जब उनको इस बातकी स्वतन्त्रता दे दी गयी थी कि चाहें तो अपना पिछला भोजन फिर शुरू कर सकते हैं, तब भी उनमेंसे किसीने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया।'

अत्यधिक मात्रामें मांस खानेके कारण एक बार बम्बईमें रहनेवाले कुछ अंग्रेजोंका क्या हाल हुआ था, यह बात इतिहासके निम्नलिखित पंक्तियोंसे ज्ञात होती है—

'समुद्री हवा तथा अकसर होनेवाली वर्षाके कारण मौसम ठंडा रहता था, गर्मी बढ़ नहीं पाती थी। इसके पूर्व यहाँकी वायु

बड़ी दूषित और खतरनाक थी, किंतु जबसे अंग्रेजोंने नगर तथा आस-पासके दलदलोंको सुखा दिया, तबसे वायु शुद्ध हो गयी थी। इतनेपर भी बम्बईमें कई यूरोपियन अचानक मर गये। उनमेंसे अधिकांश नये आये हुए थे, जिनके रहन-सहनका ढंग यहाँकी जलवायुके अनुकूल न था, जिसके कारण वे जल्दी चल बसे। वे गाय तथा सूअरका मांस अधिक मात्रामें खाते थे, जो भारतीय कानूनके अनुसार निषिद्ध था और घोर ग्रीष्म-ऋतुमें भी वे पूर्तगालकी गर्म शराब पीते थे।'

(देखिये जे० टी० ह्वीलरका 'मुसलमानी शासनकालमें भारतवर्षका इतिहास')

डॉक्टर हेग अपनी पुस्तक 'डायट ऐंड फूड'—'खाद्य पदार्थ और भोजन' के १२९ वें पृष्ठपर लिखते हैं—

'मांसभक्षण सुस्ती लाता है, क्योंकि इसके कारण मस्तिष्क, मांस-पेशियों, हड्डियों तथा सारे शरीरमें रक्तका प्रवाह मन्द तथा न्यून हो जाता है। रक्त-प्रवाहकी यह मन्दता और न्यूनता यदि जारी रहे तो परिणाममें स्वार्थपरायणता, लोलुपता, भीरुता, अध:पतन, ह्रास और अन्तमें विनाश निश्चित है। इससे धनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। जिससे विलासितापूर्ण आलस्यका जीवन प्राप्त हो सके। क्या किसी स्वस्थ राष्ट्रके अंगभूत व्यक्तिका यही आदर्श है कि वह इस प्रकारका आलस्यमय जीवन प्राप्त करके तृप्ति और जीवनके प्रति अरुचिका अनुभव करे—इसका निर्णय स्वयं राष्ट्र ही करे।'

प्रसिद्ध डॉक्टरोंने बतलाया है कि 'एपेंडिक्स (आन्त्रपुच्छ-व्रण) का रोग मांसभक्षियोंको ही अधिक होता है। मांसका टुकड़ा आँतमें जाकर अटक जाता है और फिर वह सड़कर वहाँ मवाद पैदा कर देता है।'

१०-इसके कारण शराब पीनेकी बुरी और विनाशकारी आदतको प्रोत्साहन मिलता है, जिससे देशके लोगोंका जीवन अनावश्यकरूपसे खर्चीला हो जाता है और इस प्रकार अन्तमें यह देशकी सत्ताको संकटमें डाल देता है; क्योंकि डॉक्टर हेडके शब्दोंमें कम खर्चीले जीवनका प्रश्न ही राष्ट्र तथा प्रत्येक व्यक्तिके अस्तित्वका निर्णय करता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन तथा उद्धरणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि अहिंसाका तात्पर्य केवल मानवकी हिंसा न करना ही नहीं है। किसी भी प्रकारसे तथा किसी भी हेतुसे कभी भी किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना ही 'अहिंसा' है और यह अहिंसा ही मनुष्यके लिये परम आदरणीय, सबके आचरणके योग्य, सर्वसुखकारी तथा कल्याणकारी परम धर्म है।

मांसभक्षण सब प्रकारसे दुःख तथा भय उत्पन्न करनेवाला, रोग उत्पन्न करनेवाला, महान् संकट पैदा करनेवाला, नरकोंमें ले जानेवाला, तथा बुरी-से-बुरी योनियोंमें भटकाकर अनन्त दुःखोंका भोग करानेवाला महापाप है। अतएव सर्वथा त्याज्य है।

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह प्राणिहिंसाके महापापसे बचे और मांसभक्षणका सर्वथा परित्याग कर दे। दूसरे लोगोंको भी मांसभक्षण तथा जीव-हत्याके दोष बतलाकर उन्हें मांसभक्षणसे बचावे। यह परम सेवा है तथा भगवान्‌को प्रसन्न करनेका अमोघ साधन है।

महाभारतमें कहा है—

अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत।
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायेत वेपथुः॥

(अनुशासनपर्व)

न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद् दयां नरः कुर्याद् यथात्मनि तथा परे॥

(अनुशासनपर्व)

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः।
अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम॥

(अनुशासनपर्व)

लोको यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम्।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम्॥
न भूतानामहिंसाया ज्यायान् धर्मोऽस्ति कश्चन॥

(शान्तिपर्व)

भारत! सभी जीवोंके लिये मृत्यु अनिष्ट है अर्थात् कोई भी प्राणी मृत्यु नहीं चाहता, मृत्युके समय प्राणी काँप उठते हैं।

इस संसारमें प्राणोंके समान अति प्रिय वस्तु और कुछ भी नहीं है। अतः मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया करता है, वैसे ही दूसरेपर भी करे।

जो मनुष्य दयापरायण होकर सब प्राणियोंको अभयदान देता है, सब प्राणी उसको अभयदान देते हैं।

इस संसारमें जो मनुष्य सब प्राणियोंको अभयदान देता है, वह समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुकता है। उसको सबसे अभय प्राप्त होता है। अतएव प्राणिमात्रकी हिंसा न करनेसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म ही नहीं है।

अशोक होटलमें गोमांस

'कल्याण' के गत दूसरे अंकमें इस विषयपर लिखा गया था। पिछले दिनों संसदमें कहा गया है कि सरकार अशोक होटलमें गोमांसको हटानेके लिये तैयार नहीं है। यह वास्तवमें बहुत ही दुःख तथा लज्जाकी बात है। 'अतिथि-सत्कार' हमारा धर्म है, पर किसी भी ऐसी चीजको हम उन्हें दें, जिससे उनका तथा हमारा दोनोंका अहित होता हो, जो देशके बहुत बड़े भागके लोगोंकी दृष्टिमें सर्वथा घृणित तथा भयानक पाप हो, कदापि वांछनीय नहीं है। वस्तुतः यह उस होटलमें गोमांस-भोजी लोगोंके अतिरिक्त दूसरोंको सर्वथा बहिष्कार करनेकी योजना है। गोमांस न खानेवाले धर्मभीरु लोग जहाँ गोमांस पकाया और परोसा जाता है, वहाँ कैसे ठहरेंगे और कैसे खायँगे? सरकारका यह दुराग्रह सर्वथा अवांछनीय और महान् दुःखजनक है। करोड़ों-करोड़ों देशवासियोंके धर्मकी परवा न करके एक सरकारी होटलमें, जिसके साथ महान् अहिंसक 'अशोक' का नाम जुड़ा है, गोमांस देनेका हठ करना सर्वथा अनुचित तथा अन्याय है। भारतीय सभी संस्थाओं तथा सभी समाजोंसे हमारी यह प्रार्थना है कि वे 'अशोक होटल' से गोमांस हटानेके लिये विनम्रताके साथ जोरदार भाषामें माननीय राष्ट्रपतिजी, माननीय प्रधानमंत्रीजी तथा माननीय गृहमन्त्रीजीको नयी दिल्लीमें तारद्वारा प्रार्थना करें। साथ ही तुरंत गोहत्या बंद करनेके लिये भी लिखें।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्ण

ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही आद्य परम सत्य तत्त्वके लीलानुरूप तीन नाम हैं। इस परम तत्त्व भगवान्‌के भृकुटिविलासकी लीलामात्रसे ही सृष्टिका निर्माण और संहार हो सकता है। ये भगवान् निर्गुण (प्राकृत गुणोंसे रहित), सर्वेश्वर, प्रकृतिसे परे और परमात्मा हैं। ये सब जीवोंसे निर्लिप्त हैं और उनमें लिप्त भी हैं। ये (भौतिक रूपसे रहित) निराकार और (स्व-स्वरूपमें स्थित) साकार, सर्वव्यापी और स्वेच्छामय हैं। योगीगण इन्हें 'सनातन परब्रह्म' कहते हैं और रात-दिन इन सर्वमंगलमय सत्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करते रहते हैं। ये स्वतन्त्र तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। प्रलयके समय सर्वबीजस्वरूपा प्रकृति इनमें लीन रहती है और सृष्टिके समय प्रकट होकर क्रियाशीला हो जाती है। यह प्रकृति भगवान्‌की निज अभिन्न शक्ति है और लीलानुसार अप्रकट या प्रकटरूपमें इनमें वैसी ही सदा-सर्वदा रहती है—जैसे अग्निमें उसकी दाहिका शक्ति।

इन्हीं परमात्माके द्वारा विभिन्न लीलासृष्टियोंमें विभिन्न रूपोंसे सृष्टि होती है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इनका नाम है 'श्रीकृष्ण'। परम पवित्रतम दिव्यातिदिव्य चिन्मय नित्य गोलोक इनकी लीलाभूमि है और निर्गुण ब्रह्मरूप तेजोमण्डलमें परम प्रकाशरूप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण नित्य विद्यमान हैं। इनका वह दिव्य रूप अत्यन्त सुन्दर, रमणीय तथा परम मनोहर है। इनकी नित्य नवकिशोर अवस्था है। ये शान्त-स्वभाव हैं। इनके परम सुन्दर परमाकर्षक अंगोंसे सुशोभित श्यामसुन्दर-स्वरूप नवीन मेघकी कान्तिका परम धाम है। इनके विशाल नेत्र शरत्कालीन मध्याह्नमें विकसित कमलसमूहकी शोभाको छीने लेते हैं। दिव्य मुक्ताकी

शोभाको लजानेवाली सुन्दर दन्तपंक्ति है। मुकुटमें मयूरपिच्छ सुशोभित है। मालतीकी मालासे ये अनुपम शोभा पा रहे हैं। इनकी सुन्दर नासिका है। मुखपर सदा मुसकान छायी रहती है। अग्निके समान विशुद्ध दिव्य पीताम्बरसे इनका श्रीविग्रह परम मनोहर लगता है। इनके दो भुजाएँ हैं। हाथमें बाँसुरी विराज रही है। ये रत्नमय भूषणोंसे भूषित, सबके परम आश्रय, सबके स्वामी, समस्त शक्तियोंके मूल भण्डार और सर्वातीत सर्वव्यापी पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये सदा आतुर रहते हैं। समस्त ऐश्वर्योंका दान करना इनका सहज स्वभाव है। ये परम स्वतन्त्र एवं समस्त कल्याणके भण्डार हैं। अचिन्त्य-अनन्त-ऐश्वर्य-माधुर्यसे मण्डित ये परिपूर्णतम ब्रह्म हैं। ब्रह्माकी आयु इनके एक निमेषके तुल्य है।

'कृष्' का अर्थ है—भगवान्‌की भक्ति और 'न' का अर्थ है—उनका दास्य। अतः ये अपनी भक्ति और दास्यभाव देते हैं, इसलिये 'कृष्ण' कहलाते हैं। 'कृष्' सर्वार्थवाचक है, 'न' से बीज अर्थकी उपलब्धि होती है। अतएव सर्वबीजस्वरूप इन परब्रह्म परमात्माको 'कृष्ण' कहते हैं।

सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दो रूपोंमें प्रकट होते हैं—प्रकृति और पुरुष। उनका दाहिना 'अंग' पुरुष और बायाँ अंग 'प्रकृति' हुआ। वही मूलप्रकृति राधा हैं। ये ब्रह्मस्वरूपा नित्या और सनातनी हैं। फिर इनके पाँच रूप हो गये—(१) शिवस्वरूपा नारायणी और पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी 'भगवती दुर्गा', (२) शुद्धसत्त्वस्वरूपा परम प्रभु श्रीहरिकी शक्ति, समस्त सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी 'श्रीमहालक्ष्मी', (३) वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी 'सरस्वती', (४) ब्रह्मतेजसम्पन्ना शुद्धसत्त्वमयी ब्रह्माजीकी परम

प्रिय शक्ति 'श्रीसावित्री' और (५) प्रेम तथा प्राणोंकी अधिदेवी परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिका प्रिया, सम्पूर्ण देवियोंमें अग्रगण्य सर्वापेक्षा विलक्षण अनुपमेय अतुलनीय सौन्दर्य, माधुर्य, सद्गुणसमूह, तेज, मान और गौरवसे सम्पन्न, स्वयं श्रीकृष्णकी प्राणवल्लभा 'श्रीराधा'। इन्हें परावरा, सारभूता, परमाराध्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, मान्या और पूज्या कहा जाता है। ये नित्य-निकुंजेश्वरी, रासक्रीड़ाकी अधिष्ठात्री देवी, रासेश्वरी तथा 'सुरसिका' नामसे प्रसिद्ध हैं। ये निर्गुणा (लौकिक सत्त्व-रज-तम-गुणोंसे रहित स्वरूपभूत दिव्य गुणमयी), निराकारा (पांचभौतिक विनाशी देहसे रहित नित्य सच्चिदानन्दमयी), निर्लिप्ता (लौकिक भोगोंसे सर्वथा रहित) और आत्मस्वरूपिणी (श्रीकृष्णकी आत्मा) हैं।

इस मूलप्रकृति देवीके ही अंश कला, कलांश और कलांशांशभेदसे अनेक रूप हैं। गंगा, तुलसी, मनसा, देवसेना, षष्ठी, मंगलचण्डी, काल, पृथ्वी, स्वाहा, स्वधा तथा सम्पूर्ण दिव्य देवियाँ इन्हींसे प्रकट हुई हैं। यहाँतक कि लोकमें जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सभी प्रकृति (परमात्माकी अभिन्न शक्ति)-की कलाके अंशकी अंशरूपा ही हैं। इसीलिये स्त्रियोंके अपमानसे प्रकृतिका अपमान समझा जाता है—**'योषितामपमानेन प्रकृतेश्च पराभवः।'** मूलप्रकृति राधाके वाम अंगसे 'कमला' का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण भी दो रूप हो गये। दाहिने अंगसे स्वयं द्विभुज रहे और वाम अंगसे चार भुजावाले विष्णुका प्राकट्य हो गया। द्विभुजरूप गोलोकमें रहा और चतुर्भुजरूप वैकुण्ठमें। भगवान् श्रीकृष्णके ही अंगसे भगवान् महादेव प्रकट हुए। दाहिने अंगसे गोलोकविहारी श्रीकृष्ण रह गये और बायें अंगसे शुद्ध स्फटिकमणिकी कान्तिवाले, जटा, त्रिशूल, नीलकण्ठ, मस्तकपर अर्धचन्द्र, सर्पभूषण ब्रह्मज्योतिस्वरूप भगवान् शंकरका प्राकट्य हो गया।

चिन्मयी राधासे महाविराट्‌रूप महाविष्णुका प्राकट्य हुआ। महाविष्णुके वाम पार्श्वसे विष्णु (क्षुद्र विराट्) प्रकट हुए। सृष्टिकार्यका सम्पादन करनेके लिये स्वयं भगवान् अपनी प्रकृतिसे सृष्टिकर्ता 'ब्रह्मा', पालनकर्ता 'विष्णु' और संहारकर्ता 'शिव' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

इन्हीं परात्पर परमात्मा गोलोकविहारी श्रीराधाकृष्णके पवित्रतम दिव्य चरित्रसे सारा ब्रह्मवैवर्तपुराण ओतप्रोत है। इसी परम रसके विस्तारके लिये एक ही चरित्रका कुछ-कुछ रूपान्तरसे बार-बार वर्णन हो गया है।

एक ही परम तत्त्वका, श्रीकृष्णके नामसे और उनकी स्वरूपभूता शक्तिका 'श्रीराधा' के नामसे वर्णन है। वही श्रीकृष्ण—महाविष्णु, विष्णु, नारायण, शिव, गणेश आदि रूपोंमें तथा वही श्रीराधा—दुर्गा, सरस्वती, महालक्ष्मी आदि अनेक रूपोंमें लीलायमान हैं। कभी श्रीकृष्ण महादेवका स्तवन करते हुए उनको परमतत्त्व तथा अपनेसे अभिन्न बताते हैं, तो कहीं महादेव श्रीकृष्णका स्तवन करते हुए उनको परम आदितत्त्व और अपनेसे अभिन्न बतलाते हैं। कहीं राधाजी श्रीदुर्गा-पार्वतीका स्तवन करती हैं, उन्हें सर्वदेवीस्वरूपा तथा सबको आदेश देनेवाली आदि-स्वरूपा महादेवी बतलाती हैं। हिमाचलके घरमें नर्तकके रूपमें आये हुए भगवान् शंकरको हिमालय कभी शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज, कभी पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु, कभी द्विभुज श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण, कभी त्रिशूल बाघाम्बरधारी विभूतिविभूषित श्रीशंकर और कभी चतुर्भुज ब्रह्मा तथा सूर्यादि देवताओंके रूपमें देखते हैं, तो उधर अक्रूरजी सौन्दर्य-माधुर्य-समुद्र बालकरूप श्रीकृष्णको कभी लक्ष्मी आदि देवियाँ तथा सुनन्दादि पार्षदोंसे सेवित चतुर्भुज विष्णुके रूपमें, कभी तीन-

अनुसार आज मनुष्येतर प्राणिमात्रका मांस खा जानेवाले लोग भी अपनेको 'अहिंसक' बतलाते और अहिंसाकी दुहाई देते हैं तथा अपनी व्याख्याकी हिंसाको हिंसासे ही रोकना भी चाहते हैं। यह अहिंसाकी विडम्बनामात्र है। शास्त्रकारोंने, महात्माओंने तो 'प्राणिमात्रकी हिंसाको हिंसा बतलाया है और उससे सर्वतोभावसे सर्वथा बचनेको ही 'अहिंसा' माना है।' महर्षि पतंजलि हिंसाकी व्याख्या करते हुए कहते हैं—

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्।

(योगदर्शन २। ३४)

'हिंसा आदि वितर्क तीन प्रकारके होते हैं, स्वयं किये हुए, दूसरोंसे करवाये हुए और अनुमोदन किये हुए। यह तीन प्रकारकी हिंसा लोभ, क्रोध तथा मोहके कारण होनेसे (३×३=९) नौ प्रकारकी हो जाती है और नौ प्रकारकी हिंसा मृदु, मध्य और अधिमात्रासे होनेके कारण (९×३=२७) सत्ताईस प्रकारकी हो जाती है। ये हिंसादि दोष अनन्त दुःख और अज्ञान देनेवाले हैं। यही प्रतिपक्षभावना है।' यही सत्ताईस प्रकारकी हिंसा शरीर, मन और वाणीसे होनेके कारण इक्यासी प्रकारके भेदोंवाली बन जाती है। फिर मांसभक्षी लोग तो प्राणिहिंसाके प्रधान हेतु हैं, वे कैसे अपनेको 'अहिंसक' मान सकते हैं? महाभारतमें कहा है—

न हि मांसं तृणात् काष्ठादुपलाद् वापि जायते।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद् दोषस्तु भक्षणे॥

(अनुशासनपर्व)

'मांस घास, लकड़ी या पत्थरसे पैदा नहीं होता, वह तो जीवोंकी हत्या करनेपर ही मिलता है। इसलिये मांसभक्षणमें बहुत दोष हैं।'

व्यसनको दृढ़ कर दिया जाता है, वैसे ही वर्तमान सिनेमाओंके ये नाम तो इस दुर्व्यसनकी वृद्धिके लिये ही रखे गये मालूम होते हैं।

संत विनोबाजीने इधर कुछ समयसे 'गंदे पोस्टर हटाओ' आन्दोलन चलाया है। यह बड़ा ही लोक-कल्याणकारी तथा परम आवश्यक है। खुलेआम सड़कों-बाजारोंमें दीवालोंपर लगाकर और मोटरों-गाड़ियोंमें रखकर—बाजे-गाजेके साथ जुलूस निकालकर ये पोस्टर दिखाये जाते हैं और भले लोगोंके मनोंमें भी विकार पैदा किया जाता है।

श्रीविनोबाजीके इस पवित्र आन्दोलनमें सबको साथ देना चाहिये तथा इन गंदे पोस्टरोंका साहसके साथ, युक्तिपूर्ण पद्धतिसे घोर विरोध करके जनताको जगाना तथा सरकारको बाध्य कर देना चाहिये कि वह कानून बनाकर ऐसे पोस्टरोंको सर्वथा रोक दे। नैतिक चरित्रकी उच्चता एवं पवित्रताके द्वारा देशका कल्याण चाहनेवाले प्रत्येक नर-नारीको इस पवित्र कार्यमें सहयोग देना चाहिये और जहाँतक बने सिनेमा न देखनेकी प्रवृत्तिको बढ़ाना चाहिये, जिसके लिये ये पाप-प्रसारक पोस्टर लगाये जाते हैं!

भोजन एक पवित्र यज्ञ है

भोजन एक पवित्र यज्ञ है, जिसके द्वारा वैश्वानररूपसे अन्तरमें विराजित भगवान्‌की पूजा होती है, वह जीभकी तृप्तिके लिये खाया जानेवाला 'खाना' नहीं है। भोजनका मन तथा शरीरपर अनिवार्यरूपसे बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। भोजन बनानेवाले व्यक्तिके विचार-परमाणु भी भोजन करनेवालेके मनपर अपना प्रभाव डालते हैं। इसीलिये भोजनकी पवित्रतापर शास्त्रोंने इतना जोर दिया है। भोजनकी पवित्रताके लिये नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं।

(क) भोजन जिन पदार्थोंसे बना है, वे पदार्थ सत्य और न्यायसंगत रीतिसे उपार्जित धनसे खरीदे हुए हों, अन्यायोपार्जित धनसे अन्नकी अशुद्धि होती है और खानेवालेकी बुद्धि बिगड़ती है।

(ख) भोजन करानेवालेके मनमें प्रेम तथा सद्भाव हो, द्वेष या असद्भाव न हो। इसीलिये श्रीकृष्णने दुर्योधनके यहाँ भोजन नहीं किया था। द्वेष, दुःख और असद्भावयुक्त भोजनसे शरीरमें रोग होते हैं और मानस-रोगोंका भी उदय तथा संवर्धन होता है।

(ग) भोजन बनानेवाला स्नान किया हुआ शुद्ध हो, स्वच्छ कपड़े पहने हो, उसके कोई रोग न हो, वह काम, क्रोध, भय, हिंसा, विषाद आदिकी मानस स्थितिमें न हो। सर्वथा शुद्ध आचार-विचारवाला हो।

(घ) भोजन बनानेका स्थान गन्दगीसे भरा न हो, शुद्ध धोया हुआ हो, अहिंसामय हो, एकान्त हो, सम्भव हो तो गोबर तथा शुद्ध मिट्टीसे लिपा-पुता हो।

(ङ) भोजन-पदार्थ राजस-तामस न हों—अधिक खट्टा, अधिक नमकीन, अधिक कड़ुवा, अधिक तीखा, अधिक गरम,

जलन पैदा करनेवाला और रूखा तथा मनमें रजोगुणीवृत्ति—भोगवासनाको उत्पन्न करनेवाला भोजन राजस होता है एवं रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठे, अमेध्य, मनमें पापवृत्ति तथा विकार पैदा करनेवाले—लहसुन-प्याज आदि पदार्थ तामसिक हैं और शराब, अंडे तथा मांस आदि तो घोर तामसिक हैं। इनसे बुद्धिनाश, सत्त्वनाश और विभिन्न मानस तथा शारीरिक रोगोंकी निश्चित उत्पत्ति होती है।

(च) किसीका जूठा न हो। जब भोजन बनानेवालेके अन्तरस्थ विचारोंके परमाणुओंका खानेवालेपर असर होता है, तब जूठनका असर तो निश्चय होगा ही। जूठन खाना अत्यन्त हानिकारक है। आजकल जूठनका विचार प्रायः उठ गया है। व्यक्तिगत ही नहीं, सामूहिक 'बफे पार्टी' में प्रत्यक्ष पशु-आचारवत् जूठन खायी जाती है। यह बड़ा ही घातक है।

अंडेको तो बहुत-से मनचले लोग निरामिष ही बताने लगे हैं और घर-घरमें, वैष्णव-घरोंतकमें अंडोंका प्रचार हो रहा है। रसगुल्ला आदि मिठाइयोंमें भी अंडे डाल देते हैं; अभी पंजाब-सरकारने विद्यार्थियोंके लिये छात्रालयोंमें अंडे देना अनिवार्य कर दिया था। बहुत विरोधात्मक लिखा-पढ़ी करनेपर यह किया गया है कि जो अंडे नहीं लेना चाहेंगे, उन्हें दूध दिया जायगा।

आजकल खान-पानकी वस्तुओंमें ऐसी चीजें मिलायी जाती हैं, जो विषाक्त होती हैं और मनुष्यके खानेलायक नहीं होतीं।

आजकल बाजारमें जो अच्छी मानी जानेवाली बढ़िया आइसक्रीम मिलती है, उसमें अंडे तो प्राय: होते ही हैं; क्योंकि कहते हैं बिना अंडेके बढ़िया आइसक्रीम बनती ही नहीं। कुछ समय पूर्व 'नेचर्स पाथ' नामक पत्रमें छपा था कि आइसक्रीम, जो रासायनिक पदार्थोंके संयोगसे बनायी जाती है, उसमें Vanilla (मधुगन्ध)-की जगहपर पिपरोनल (Piperonal—जूँ मारनेकी दवा), Cherry (प्रबदर)-की सुगन्ध लानेके लिये ऐलडीहाइड सी १७ (Alde-Hyde C 17—एक आग पकड़नेवाला तरल पदार्थ जिसका उपयोग रंग, प्लास्टिक और रबड़के निर्माणमें होता है), अनन्नासकी सुगंध लानेके लिये एथिल ऐसीटेट (Ethyl Acetate—जो चमड़ा और कपड़ा धोनेके काममें लिया जाता है—इसकी भाप फेफड़ा, यकृत और हृदयको हानि पहुँचाती है), केलेकी सुगन्ध लानेके लिये एमिल ऐसीटेट (Amyel Acetate—यह तेलसे बने रंगोंका घोलक है)। इस प्रकारकी और भी चीजें मिलायी जाती हैं। 'नेचर्स पाथ' लिखता है—'आप आइसक्रीमके नामपर अपने परिवारको सम्भवत: विष खिला रहे हैं।'

जूँठन खाना-खिलाना तो वर्तमान सभ्यताका एक लक्षण माना जाने लगा है। जो जूँठन नहीं खाना चाहते, उन्हें बहुत पिछड़े वर्गका गिना जाता है और उनका मजाक ही नहीं उड़ाया जाता, उनसे घृणातक की जाती है।

केवल खान-पानके पदार्थोंमें ही अपवित्र चीजें मिलायी जाती हों, सो नहीं, खान-पानके लिये जो बर्तन आदि चीजें बनती हैं, उन सबमें भी अपवित्र वस्तुओंका संयोग होता है। उदाहरणके लिये भले घरोंमें रोज काममें लिये जानेवाले चीनी मिट्टीके बर्तनोंको ही लीजिये।

हिंदुस्तान स्टैंडर्डके एक मुख्य संवाददाता उसके १५-७-६३ के अंकमें लिखते हैं—

'विशाल चक्कियोंमें स्फटिक जातिके पत्थरोंके टुकड़े पीसे जा रहे थे। फैक्ट्रीकी छतके समीप भारी-भारी पीपे घूम-घूमकर पत्थरोंको तरलरूप प्रदान कर रहे थे। इस द्रवमें क्रमशः चीनी मिट्टीका घोल मिलाया जा रहा था और फिर हड्डियोंकी बुकनी भी। इस मिश्रित घोलको नालियोंद्वारा धरतीके भीतर गलायी हुई मिट्टीसे भरी एक टंकीमें ले जाया जा रहा था और वहाँसे उसपर ८० से १५० सेरका दबाव डालते हुए उसे एक गाढ़ा करनेवाले यन्त्रमें पहुँचाया जा रहा था, जहाँ इसने रोटियोंका-सा रूप धारण कर लिया।

'इस प्रकार कच्चा माल तैयार हुआ। फिर पहिये घूमने लगे, साँचे भरने लगे तथा तश्तरियाँ, प्याले, सुराहियाँ और फूलदानियाँ नाचती हुई बाहर निकलने लगीं। तदुपरान्त कोयले अथवा तेलकी भट्टियोंपर खुरचने, चिकनाने, चित्रित करने तथा दुबारा चमकानेका काम आरम्भ हुआ और बेलियाघाटमें सरकारद्वारा चालित बंगाल सिरामिक इंस्टिट्यूटमें झन-झन करते हुए हड्डी

तीन नेत्रवाले पंचमुख श्रीशंकरके रूपमें और कभी चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें देखकर चकित हो जाते हैं।

कहनेका तात्पर्य यही है कि श्रीकृष्णके रूपमें एकमात्र परम सत्य-तत्त्व भगवान् तथा श्रीराधाके रूपमें एकमात्र परम सत्य-तत्त्वमयी भगवतीका प्रतिपादन किया गया है। ये दोनों 'शक्ति' और 'शक्तिमान्' वस्तुतः नित्य एक ही हैं। इनमें कभी कोई तात्त्विक भेद न हुआ, न होगा और न हो सकता है। रामचरितमानसके भगवान् रामसे जैसे—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस ते नाना॥

और सीताजीसे जैसे—

जासु अंस उपजहि गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

उत्पन्न होती हैं, वैसे ही ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अगणित शक्तिमान् देवों तथा शक्तियोंका प्रादुर्भाव एक श्रीकृष्ण-राधासे ही होता है।

यही श्रीराधा और श्रीकृष्ण लीलासे ही पृथ्वीका भार उतारने, साधु-भक्तोंका त्राण करने, धर्मकी स्थापना करने और इस धरा-धामको पवित्र करनेके तथा दिव्य प्रेमसुधाकी अनन्त सरिता बहानेके लिये देवताओंकी प्रार्थनासे यहाँ अवतीर्ण होते हैं। यह स्वयं भगवान्‌का 'पूर्ण अवतरण' है और विशुद्ध प्रेम-विस्तारकी परम लीलाके लिये, अतएव इन्हींके दूसरे रूप इन्हींमें मिलकर अवतरित होते हैं। इनकी अवतारलीलाके निश्चयके समय गोलोकमें वैकुण्ठवासी भगवान् श्रीनारायण तथा श्वेतद्वीपनिवासी त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु पधारते हैं और इन श्रीकृष्णके स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। तदनन्तर श्रीनारायण ऋषि आते हैं और वे भी इन श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें लीन हो जाते हैं। इसके साथ ही सहस्रमुख अनन्तदेव संकर्षण, पार्वती, स्कन्द तथा

अन्यान्य देवताओंको विभिन्न रूपोंमें प्रकट होकर अवतारके लीलाकार्यमें सहयोग देनेके लिये भगवान् आदेश देते हैं।

अवतार-लीलाका कार्य सम्पन्न हो जानेपर भगवान् श्रीनारायण और भगवान् विष्णु श्रीकृष्णके श्रीविग्रहसे निकलकर अपने-अपने धामोंको पधार जाते हैं।

इस अवतार-लीलामें श्रीराधाजी श्रीदामकी शापलीलाके निमित्तसे अवतरित होती हैं—असली लीलाकार्य तो प्रेम-रसास्वादन ही है। उस समय श्रीराधाजीके दुःख प्रकट करनेपर श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं—राधा! तुम मेरी आधारस्वरूपा हो, मैं सदा तुम्हींमें स्थिर रहता हूँ। तुम शक्तियोंका समूह और मूल प्रकृति ईश्वरी हो। मेरी शरीररूपिणी और त्रिगुणाधार-स्वरूपिणी भी तुम्हीं हो। मैं तुम्हारा आत्मा निरीह हूँ। तुम्हारा संयोग पाकर ही मैं चेष्टावान् होता हूँ। शरीरके बिना आत्मा कहाँ और आत्माके बिना शरीर कहाँ। राधे! हम दोनोंमें कहीं भेद नहीं है।

जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहिका-शक्ति, पृथ्वीमें गन्ध और जलमें शीतलता है, वैसे ही मुझमें तुम्हारी स्थिति है। धवलता और दूधमें, दाहिका-शक्ति और अग्निमें, पृथ्वी और गन्धमें तथा जल और शीतलतामें जैसे भेदका अभावरूप ऐक्य है, वैसे ही हम दोनोंमें भी भेद नहीं है। मेरे बिना तुम निर्जीव हो और तुम्हारे बिना मैं अदृश्य हूँ। स्वयं आत्मा जैसे नित्य है, वैसे ही साक्षात् प्रकृतिस्वरूपा तुम नित्य हो। तुममें समस्त शक्तियोंका समाहार संचित है। तुम सबकी आधाररूपा और सनातनी हो। लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, ब्रह्मा, शिव, शेषनाग—ये सब मेरे प्राणोंके समान हैं, पर तुम तो मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो। सति! तुम गोकुलमें अयोनिजारूपमें प्रकट होओगी और मैं भी अयोनिजरूपमें अपने-आपको प्रकट करूँगा। हमलोगोंकी गर्भमें स्थिति नहीं होती।

यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा।
भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथावयोः॥
मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना।

× × ×

स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम्।
सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी॥
मम प्राणसमा लक्ष्मीर्वाणी च सर्वमङ्गला।
ब्रह्मांशामन्तधर्मांश्च त्वं मे प्राणाधिका प्रिया॥
अयोनिसम्भवा त्वं च भविता गोकुले सति।
अयोनिसम्भवोऽहं च नावयोर्गर्भसंस्थितिः॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६। २१४ से २१६, २१८, २१९, २२५)

भगवान् श्रीकृष्ण मथुरामें वसुदेव-देवकीके यहाँ प्रकट होकर गोकुलमें नन्दबाबा-यशोदाके घर मधुर बाललीला करते हैं और वहीं श्रीराधा तथा गोपांगनाओंके साथ उनकी रासक्रीड़ा होती है। इन्हीं सब लीलाओंका विशद वर्णन इस वैष्णवजन प्राणप्रिय महापुराणमें किया गया है। गोलोक और गोकुलके श्रीराधाकृष्ण-चरितसे ही सारा पुराण ओतप्रोत है।

इस प्रकार मुख्यतया श्रीराधा-माधवके दिव्य लीला-चरितोंका वर्णन होनेके साथ ही इसमें पुराणके लक्षणानुसार अन्यान्य उपयोगी विषयोंका भी यथेष्ट वर्णन है।

भगवान् श्रीकृष्ण, राधा, नारायण, विष्णु, राम, शिव, महादेव आदि नामोंकी व्युत्पत्ति तथा उनका माहात्म्य दिया गया है। कई प्रसिद्ध पुरुष और नारियोंके पूर्वजन्मोंका इतिहास दिया गया है, जिससे बहुत-सी शंकाओंका समाधान हो जाता है—जैसे विप्रपत्नियाँ

पूर्वजन्ममें सप्तर्षि-पत्नी थीं, धेनुकासुर राजा बलिका पुत्र साहसिक था, कुब्जा शूर्पणखा थी, प्रद्युम्न कामदेव था, द्रौपदी वेदवती थी और नारायणपत्नी राधा-छाया बृन्दा थी आदि-आदि।

भगवद्भक्ति , योग, सदाचार वैष्णव तथा भक्तमहिमा, मनुष्यके धर्म, नारीधर्म, पतिव्रता तथा कुलटाओंके लक्षण, अतिथि-सेवा, गुरु-महिमा, माता-पिता-महिमा और रोगविज्ञान, स्वास्थ्यके नियम-लाभदायक औषध, बुढ़ापा न आनेके साधन, आयुर्वेद, सोलह आचार्य तथा उनके ग्रन्थोंका, भक्ष्याभक्ष्यका, शकुन-अपशकुनका तथा पाप-पुण्यका सुन्दर प्रतिपादन है। इसके सिवा इसमें बहुत-से चमत्कारपूर्ण सिद्ध-मन्त्रोंका, उनके अनुष्ठानोंका, भगवान् तथा भगवतीके मनोहर एवं दिव्य ध्यानोंका, उनके सिद्ध स्तोत्रों तथा कवचोंका वर्णन किया गया है। जिनमेंसे पाठकोंके लाभार्थ कई इस अंकके परिशिष्ट भागमें दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य बहुत-से विषयोंका बड़ा समावेश है। यहाँ ब्रह्मवैवर्तपुराणकी कुछ सूक्तियाँ अर्थसहित दी जा रही हैं—उनसे लाभ उठाना चाहिये।

भगवान् भक्ताधीन

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद् गोविन्दपदपङ्कजम्।
ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ॥
सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च।
तथापि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेद् भक्तसंनिधौ॥

(ब्रह्मखण्ड ११। ४४-४५)

‘वैष्णवगण सदा-सर्वदा गोविन्दके पदपंकजका ध्यान करते हैं और भगवान् गोविन्द सदा उन वैष्णवोंके पास रहकर उन्हींका ध्यान किया करते हैं। उन भक्तोंकी रक्षाके लिये सुदर्शनचक्रको नियुक्त करके भी श्रीहरि निश्चिन्त नहीं होते, इसलिये वे स्वयं उनके पास रहते हैं।’

अहं प्राणा वैष्णवानां मम प्राणाश्च वैष्णवाः।
तानेव द्वेष्टि यो मूढो ममासूनां च हिंसकः॥
पुत्रान् पौत्रान् कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च।
ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः परः प्रियः॥
ये द्विषन्ति च मद्भक्तान् प्राणानामधिकं प्रियान्।
तेषां शास्ता त्वहं तूर्णं परत्र निरयं चिरम्॥
प्रभवोऽहं च सर्वेषामीश्वरः परिपालकः।
न च व्यापी स्वतन्त्रोऽहं भक्ताधीनो दिवानिशम्॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २५। १०९-११०, ११५-११६)

भगवान् कहते हैं—'मैं वैष्णवोंका प्राण हूँ और वैष्णव मेरे प्राण हैं। जो मूढ उनसे द्वेष करता है, वह मेरे प्राणोंकी हिंसा करता है। जो अपने पुत्रों, पौत्रों, पत्नियों, राज्य तथा लक्ष्मीका भी त्याग करके निरन्तर मेरा ध्यान करते हैं, उनसे बढ़कर मेरा प्रिय और कौन हो सकता है? जो मेरे प्राणोंसे बढ़कर प्रिय भक्तोंसे द्वेष करते हैं, उनको मैं शीघ्र ही यहाँ दण्ड देता हूँ और परलोकमें वे चिरकालतक नरकयातना भोगते हैं। मैं सबकी उत्पत्तिका कारण, सबका ईश्वर और परिपालक हूँ। सर्वव्यापी और स्वतन्त्र हूँ तथापि दिन-रात अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ।

वैष्णव-भक्तका स्वरूप और महत्त्व

अवैष्णवाद् द्विजाद् विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः।
सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥

(ब्रह्मखण्ड ११। ३९)

अवैष्णव ब्राह्मणसे वैष्णव चाण्डाल श्रेष्ठ है; क्योंकि वह वैष्णव चाण्डाल अपने बन्धुगणसहित भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है और वह अवैष्णव ब्राह्मण नरकमें पड़ता है।

यच्चक्षुःपतनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्।
तद् ब्रह्मत्वं स्वप्नतुल्यं कृष्णभक्तो न चेच्छति॥
इन्द्रत्वममरत्वं वा सिद्धियोगादिकं शिव।
ज्ञानं मृत्युञ्जयाद्यं वा न हि भक्तस्य वाञ्छितम्॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यं श्रीहरेरपि।
तत्र निर्वाणमोक्षं च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥
शश्वत्तत्सुदृढाभक्तिर्हरिदास्यं सुदुर्लभम्।
स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं वरं वरम्॥

(ब्रह्मखण्ड १२। ३३—३६)

भगवान्‌की पलक पड़ते ही जिसका पतन हो जाता है, वह ब्रह्मपद स्वप्नके समान मिथ्या और क्षणभंगुर है। श्रीकृष्णभक्त उसे नहीं चाहता। हे शिव! इन्द्रत्व, अमरत्व, सिद्धियोग या मृत्युंजय आदिके ज्ञानकी प्राप्ति भी कृष्णभक्तको वांछनीय नहीं है। श्रीहरिके सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य और सायुज्य, निर्वाणमोक्षको भी वैष्णवजन नहीं लेना चाहते। भगवान्‌की सुदृढ़ भक्ति और श्रीहरिका परम दुर्लभ दास्य प्राप्त हो—यही सोते-जागते मेरे लिये श्रेष्ठ वर है।

भजन नहीं होता, तभीतक दुःख आदि है—

यस्य त्वत्पादपदं चैवावयोर्जन्मखण्डनम्।
तावद् दुःखं च शोकं च तावद् भोगं च रोगकः॥
तावज्जन्मानि कर्माणि क्षुत्पिपासादिकानि च।
यावत् त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम्॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १०२। १९-२०)

गुरु महर्षि सान्दीपनिजीकी पत्नी श्रीकृष्णसे कहती हैं—

तुम्हारे चरणकमल हम दोनोंके जन्म-मरणको काटनेवाले हैं, क्योंकि दुःख, शोक, भोग, रोग, जन्म, कर्म, भूख, प्यास

आदि तभीतक संताप देते हैं, जबतक कि तुम्हारे चरण-कमलका दर्शन और भजन नहीं होता।

भगवान्‌के स्मरणसे बाहर-भीतरकी शुद्धि—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

(ब्रह्मखण्ड १७। १७)

कोई अपवित्र हो या पवित्र, किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, जो कमलनयन भगवान्‌का स्मरण करता है, वह बाहर और भीतरसे सर्वथा पवित्र हो जाता है।

भगवान्‌की सेवामें लगनेवाला ही आत्मीय है—

विहाय हरिदास्यं च विषये यन्मनश्चलम्।
दुर्लभं मानवं जन्म बभूव तस्य निष्फलम्॥
का वा कस्य प्रिया पुत्रो बन्धुः को वा भवार्णवे।
कर्मोर्मिभिर्याजना च तदपायो वियोजना॥
सुकर्म कारयेद् यो हि तन्मित्रं स पिता गुरुः।
विबुद्धिं कारयेद् यो हि स रिपुश्च कथं पिता॥

(ब्रह्मखण्ड २४। ३३—३५)

श्रीनारदजी कहते हैं—जिसका मन श्रीहरिका दासत्व छोड़कर विषयके लिये चंचल रहता है, उसका दुर्लभ मानवशरीर व्यर्थ हो गया। इस भवसागरमें कौन किसकी पत्नी है और कौन किसका पुत्र या बन्धु है? कर्मकी तरंगोंके शान्त हो जानेपर वियोग हो जाता है। जो सत्कर्म (भगवान्‌की सेवा) करवाता है वही मित्र है, वही पिता और गुरु है। जो दुर्बुद्धि (विषयसेवनमें आसक्ति) उत्पन्न कराता है, वह तो शत्रु है, उसे पिता कैसे कहा जा सकता है?

जो भगवान्‌में बुद्धिको नहीं लगाता, वह कैसा आत्मीय ?

स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा।
स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद् यो हरौ मतिम्॥

(ब्रह्मखण्ड ११। ३८)

वह कैसा गुरु, वह कैसा पिता, वह कैसा पुत्र, वह कैसा मित्र, वह कैसा राजा और वह कैसा बन्धु है, जो श्रीहरिमें बुद्धिको नहीं लगाता ?

सत्यरूपी धर्मकी रक्षाके लिये त्याग—

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।
नहि गङ्गासमं तीर्थं न देवं केशवात् परः॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात्परं धनम्।
धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम्।
यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन्।
वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६। २१—२४)

रामने वन जाते समय शोक-विह्वल पिता दशरथसे कहा—

सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। केशवसे बढ़कर कोई देवता नहीं है, गंगाके समान तीर्थ नहीं है, धर्मसे बढ़कर कोई बन्धु नहीं है और धर्मसे बढ़कर कोई धन नहीं है। धर्मसे अधिक प्रिय और कौन है? अतः आप अपने धर्मकी यत्नके साथ रक्षा कीजिये। स्वधर्मकी रक्षा करनेपर सदा-सर्वत्र मंगल होता है। यश, प्रतिष्ठा, प्रताप और पूजाकी प्राप्ति होती है। मैं चौदह वर्षोंतक घरके सुखको छोड़कर धर्मपूर्वक विचरता हुआ आपके सत्यकी रक्षाके लिये वनमें वास करूँगा।

पितासे सौगुनी अधिक पूजनीया माता—

सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महान् गुरुः।
पितुः शतगुणैर्माता गर्भधारणपोषणात्॥
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी।
नास्ति मातुः परो बन्धुः सर्वेषां जगतीतले॥

'समस्त पूजनीयोंमें पिता सबसे भारी वन्दनीय हैं, परंतु गर्भमें धारण और पोषण करनेवाली माता पितासे सौगुनी श्रेष्ठ है। माता पृथ्वीके समान क्षमाशील और सबका समान हित चाहनेवाली है, अतः इस जगतीतलमें मातासे बढ़कर बन्धु दूसरा कोई नहीं है।'

किस-किसको माता माने?

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका॥
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः॥

(गणपतिखण्ड १५। ३८—४०)

'स्तन पिलानेवाली (धाय), गर्भ धारण करनेवाली (माता), भोजन देनेवाली (रसोइन), गुरुपत्नी, अभीष्ट देवताकी पत्नी, पिताकी पत्नी (सौतेली माता), कन्या, बहिन, पुत्रवधू, पत्नीकी माता (सास), सहोदर भाईकी पत्नी, माताकी बहिन (मौसी), माताकी माता (नानी), पिताकी बहिन (बूआ) और मामी—ये सोलह मनुष्यकी वेदविहित माताएँ हैं।'

गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः।
पित्रोः स्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली॥
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनीसुता।
गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसां षोडश मातरः॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ५९। ५५-५६)

'गुरुपत्नी, राजपत्नी, देवपत्नी, पुत्रवधू, माताकी बहिन, पिताकी बहिन, शिष्यपत्नी, नौकरकी स्त्री, मामी, पिताकी पत्नी (माता या विमाता), भाईकी पत्नी, सास, बहिन, बेटी, गर्भ धारण करनेवाली (माता) तथा इष्टदेवी—ये पुरुषकी सोलह माताएँ हैं।

माता-पिता-गुरु, पत्नी आदिका भरण-पोषण करना चाहिये—

पिता माता गुरुर्भार्या शिशुश्चानाथबान्धवाः।
एते पुंसां नित्यपोष्या इत्याह कमलोद्भवः॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६०। ५)

'पिता-माता, गुरु, पत्नी, छोटा बालक, अनाथ और कुटुम्बीजन—ये पुरुषके लिये पोषण करनेयोग्य हैं ऐसा ब्रह्माजीका कथन है।'

पितरं मातरं मायां गुरुपत्नीं गुरुं परम्।
यो न पुष्णाति कार्पण्यात् स महापातकी शिव॥

'पिता, माता, पत्नी, गुरुपत्नी, परमगुरु—जो कपट रखकर इन सबका भरण-पोषण नहीं करता, वह महापापी है।'

पिता माता गुरुर्भार्या शिष्यः पुत्रः तथाक्षमः।
अनाथा भगिनी कन्या नित्यं पोष्या गुरुप्रिया॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८४। २२)

'पिता, माता, गुरु, पत्नी, शिष्य, असमर्थ पुत्र, अनाथ बहिन, कन्या और गुरुपत्नी—इनका नित्य भरण-पोषण करना कर्तव्य है।'

हरि मारे तो रखे कौन, हरि रखे तो मारे कौन?

स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान्।
स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७२। १०५)

'वे सर्वेश्वर भगवान् जिसको मारते हैं, उसकी रक्षा कौन पुरुष कर सकता है और वे सर्वात्मा जिसकी रक्षा करते हैं, उसे मारनेवाला कोई भी नहीं है।'

रणविमुख न होनेवाला वीर यशोदायक स्वर्गको प्राप्त होता है

रणे निमन्त्रितश्चैव दाने न विमुखो भवेत्।
रणे यो त्यजते प्राणांस्तस्य स्वर्गो यशस्करः॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३। ७२)

'रणमें बुलाये जानेपर वह रणदानसे विमुख नहीं होता, क्योंकि जो युद्धमें प्राण त्याग करता है उसे यश देनेवाले स्वर्गकी प्राप्ति होती है।'

रोग आदिका कारण पाप

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः॥
तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम्।
भारते सततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः॥

(ब्रह्मखण्ड १६। ५१-५२)

'पापसे रोग होता है, पापसे बुढ़ापा आता और पापसे ही दीनता, दुःख और भयंकर शोककी उत्पत्ति होती है। अतएव भारतके संत-पुरुष इस महान् वैरी, दोषोंके बीज और अमंगल करनेवाले पापका कभी आचरण नहीं करते, वे इसके डरसे सदा घबराये रहते हैं।'

धर्म-पत्नीके त्यागसे नरककी प्राप्ति

अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम्।
त्यक्त्वा भवेद्यः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा॥
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः।
तीर्थं वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम्॥
न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलने ध्रुवम्।
अभिशापेन भार्याया नरके च परत्र च॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ११३। ६—८)

'जो अपनी कुलीना पतिव्रता युवती पत्नीको संतानरहित अवस्थामें त्यागकर संन्यासी, ब्रह्मचारी अथवा यति हो जाता है, व्यापार अथवा प्रवासके निमित्त चिरकालके लिये दूर चला जाता है, मोक्षके हेतु अथवा आवागमनके मिटानेके लिये तीर्थवासी या तपस्वी हो जाता है, उसे पत्नीके शापसे मोक्ष तो प्राप्त होता ही नहीं, उलटे धर्मसे पतन हो जाता है और परलोकमें उसे निश्चय ही नरककी प्राप्ति होती है।'

पृथ्वी किनके भारसे पीड़ित रहती है?

कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तनिन्दकाः।
तेषां महापातकिनामशक्ता भारवाहने॥
स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः।
श्रद्धाहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेण पीडिता॥
पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः।
ये न कुर्वन्ति तेषां च न शक्ता भारवाहने॥
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविहीनकाः।
निन्दका गुरुदेवानां तेषां भारेण पीडिता॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः।
विश्वासघ्नः स्थाप्यहारी तेषां भारेण पीडिता॥
कल्याणसूक्तसामानि हरेर्नामैकमङ्गलम्।
कुर्वन्ति विक्रयं ये वै तेषां भारेण पीडिता॥
जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धकः।
शवदाही शूद्रभोजी तेषां भारेण पीडिता॥
पूजायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च।
ये ये मूढा निहन्तारस्तेषां भारेण पीडिता॥
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान्।
हरिं हरिकथाभक्तिं तेषां भारेण पीडिता॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ४। २०—२८)

पृथ्वी देवी ब्रह्माजीसे कहती हैं—

'जो श्रीकृष्णभक्तिसे हीन हैं और जो श्रीकृष्णभक्तकी निन्दा करते हैं, उन महापातकी मनुष्योंका भार वहन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। जो अपने धर्म तथा आचारसे रहित है तथा नित्यकर्मसे हीन है, जिनकी वेदोंमें श्रद्धा नहीं है, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो माता, पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र तथा आश्रित-वर्गका पालन-पोषण नहीं करते हैं, उनका भार वहन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। पिताजी! जो झूठ बोलते हैं, जिनमें दया तथा सत्य आचरणका अभाव है तथा जो गुरुजनों और देवताओंकी निन्दा करते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देनेवाले, विश्वासघाती और धरोहर हड़प लेनेवाले हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो कल्याणमय सूक्तों, साम-मन्त्रों तथा एकमात्र मंगलकारी हरिनामोंको बेचते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो जीवोंकी हिंसा करनेवाले, गुरुद्रोही, ग्रामयाजी (पुजारी), लोभी, मुर्दा फूँकनेवाले तथा शूद्रान्नभोजी हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो मूढ़ मनुष्य पूजा, यज्ञ, उपवास-व्रत तथा नियमोंका भंग करनेवाले हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो पापीलोग सदा गौ, ब्राह्मण, देवता, वैष्णव, श्रीहरि, श्रीहरिकथा और श्रीहरिकी भक्तिसे द्वेष करते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ।'

श्रीमद्भागवतकी महत्ता[1]

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥[2]

(श्रीमद्भा० २।४।१४)

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यत-
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि॥[3]

(श्रीमद्भा०१२।१३।१९)

समस्त चराचर विश्वके रूपमें अभिव्यक्त भगवान्के नाते मैं

१-श्रीकृष्ण-जन्मभूमि, मथुरामें दिनांक ८।२।६५ को 'श्रीमद्भागवतभवन' के शिलान्यासके अवसरपर प्रदत्त मुद्रित और मौखिक भाषणका अधिकांश सार।

२-भक्तिहीन साधनामें संलग्न रहनेवाले कुयोगी लोगोंके लिये जिनकी दिशा भी दूर है, जो अपनी निरुपम और निरतिशय आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके साथ अपने ब्रह्मस्वरूप व्रजधाममें निरन्तर विहार करते रहते हैं, उन भक्तवत्सल सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णको मेरा बार-बार नमस्कार है।

३-यह श्रीमद्भागवत भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाला अतुलनीय ज्ञानदीपक है। इसको सबसे पहले जिन भगवान्ने ब्रह्माजीके लिये प्रकट किया, फिर जिन्होंने ब्रह्माजीके रूपसे देवर्षि नारदजीको उपदेश दिया, तदनन्तर नारदजीके रूपसे मुनिवर कृष्णद्वैपायन श्रीव्यासजीको प्रदान किया, इसके बाद व्यासजीके रूपसे योगिराज शुकदेवजीको और शुकदेवजीके रूपसे बड़ी दया करके राजा परीक्षित्को उपदेश दिया, उन्हीं परम शुद्ध—प्राकृत गुणोंसे रहित, सर्वथा निर्मल, शोक और मृत्युसे रहित, परम सत्यस्वरूप परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं।

सब भगवत्स्वरूप माताओं और महानुभावोंके श्रीचरणोंमें सादर प्रणाम करता हूँ।

आजका भाषण प्रारम्भ करनेके पूर्व मैं आपलोगोंका कुछ समय व्यर्थ खोना चाहता हूँ—वह केवल इसलिये कि मेरा परिचय देते हुए भाई हजारीलालजी माहेश्वरीने, जिन्हें मैं भाई हजारीके नामसे पुकारता हूँ और जो मेरे प्रति चिरकालसे बड़ी श्रद्धा और स्नेह रखते हैं, मेरे जीवन और गुणोंके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें कही हैं। उन्होंने उस परिचयको केवल ऊपरी (बहिरंग) परिचय बताया है। उनकी दृष्टि दूसरी है, पर मैं भी अपनी दृष्टिसे उसे बहिरंग परिचय ही समझता हूँ। मेरा अन्तरंग परिचय क्या है, उसको मेरा हृदय जानता है या अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं। मनुष्य ऊपरसे बहुत अच्छा बन सकता है, लोग उसे अपनी शुभ दृष्टिसे बहुत अच्छा मान सकते हैं; पर उसके जीवनमें कितना कालुष्य है, कितने अपराध हुए हैं, यह कोई नहीं जानता। मैं बनावटी बात नहीं, सर्वथा सत्य कहता हूँ कि मेरा जीवन अपराधों एवं दुर्बलताओंसे भरा है। जैसे कमजोरियोंसे भरे करोड़ों मनुष्य हैं, वैसा ही—उन्हींमेंसे मैं भी एक हूँ। हाँ, मेरे जीवनमें एक अच्छी बात है; एक गुण है—वह है—'भगवत्कृपा और भगवत्कृपापर विश्वास'। सचमुच मुझपर बड़ी ही भगवत्कृपा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई गुण नहीं।

डॉक्टर श्रीहजारीलाल माहेश्वरीके कथनानुसार किसी समय किसी अंशमें मेरा क्रान्तिकारी जीवन था और लगभग पौने दो वर्ष बंगालके एक गाँवमें नजरबंदके रूपमें भी रहा था; पर आज न तो वह जीवन है, न वह काल है। उस समय देशभक्ति व्यापार नहीं था। वह बाजारमें बिकती नहीं थी। देशभक्ति सिद्ध करनेके लिये कारागारके प्रमाणपत्रकी आवश्यकता नहीं थी। वह था मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके

लिये बिना किसी आशा-आकांक्षाके जीवनको उत्सर्ग कर देनेका निर्मल भाव। हजारों-हजारों उगते और चढ़ते सूर्य-जैसे नवयुवकोंने अपनेको उत्सर्ग कर दिया था मातृभूमिकी बलिवेदीपर। सामने चमकनेवाले बहुत हैं; पर जिन्होंने अपना रक्त दिया और मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके प्रसादके जो नींवके रोड़े बने, उन्हें कोई नहीं जानता। उस जमानेकी बात दूसरी थी। उस समय था केवल 'विशुद्ध त्याग' और आज है उसके स्थानपर 'अधिकार' की माँग। आज राष्ट्रीयताके नामपर जातिवाद, भाषावाद और प्रान्तवाद चल रहे हैं। अधिकारका भूखा नेतृत्व बुरी तरह झगड़ रहा है एवं निरीह विद्यार्थी एवं जनताको भड़काकर उनके द्वारा देशको लजानेवाले उपद्रव यत्र-तत्र करवाये जा रहे हैं। हम एक ही ईश्वरको माननेवाले, एक ही भारतमें रहनेवाले एक-दूसरेपर घृणित प्रहार कर रहे हैं। यह हमारे लिये बड़ी ही अशोभनीय और दुर्भाग्यकी बात है। पता नहीं इसका क्या परिणाम होगा। भगवान् सबका मंगल करें। सबको सद्बुद्धि दें। भगवान्‌की प्रार्थना ही एकमात्र उपाय है और कोई उपाय रह ही नहीं गया है।

अब मैं प्रस्तुत विषयपर कुछ निवेदन करता हूँ। पद्मपुराणका श्लोक है—

अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः
पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्।
सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतां
मनोरमां तां मधुरां पराकृतिम्॥*

(पद्मपुराण)

---

* मेरी पुरी मथुरा (या मधुरा) परमोत्कृष्ट, सनातन, परमात्मस्वरूपा एवं बड़ी मनोरम है। सुरराज इन्द्र, नागराज शेष और बड़े-बड़े मुनीश्वर भी उसकी स्तुति करते हैं। किन्तु खेद और आश्चर्यकी बात है कि दूषित हृदयवाले मनुष्य मेरी उस पुरीकी महिमा नहीं जानते।

मथुरापुरीकी महामहिमा अनिर्वचनीय है। जहाँके कारागारसे भी अनिर्वचनीय अचिन्त्य अनन्त ऐश्वर्य-सौन्दर्य-माधुर्य-परिपूर्ण, अपार दिव्य रस-सुधा-सार-समुद्र, अचिन्त्यानन्त सर्वविरुद्धगुणाश्रय, सर्वलोक महेश्वर, सर्वातीत, सर्वमय, नित्य निर्गुण-सगुण, समस्तावतार-बीज, अनन्ताद्भुत शक्ति-सामर्थ्य-स्रोत, सहज अजन्मा, अविनाशी, सच्चिदानन्द, स्वेच्छाविग्रह घनश्याम भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव हो, उस अचिन्त्य माहात्म्यशालिनी पुरीकी महत्ताका वर्णन कौन कर सकता है? यह मोक्षप्रदायिनी सात पुरियोंमेंसे एक है, अतएव अनादि और शाश्वत है। यहाँ श्रीहरिका नित्य संनिधान है। यही वह भूमि है, जहाँ तपस्या करके भक्तराज ध्रुवने ध्रुवपद पाया था। यही वह पुण्य धरातल है, जहाँ लवणासुरका वध करके श्रीरामचन्द्रजीके कनिष्ठ भ्राता श्रीशत्रुघ्नने राजधानी स्थापित की थी। इससे भी पूर्व महाराज मान्धाता यहाँ राज्य करते थे, जिन्हें मधु दानवने समरांगणमें वीरगतिकी प्राप्ति करायी थी। अतः इस पावन भूमिकी इतिहास-परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। श्रीकृष्णप्रेयसी कालिन्दीके पुण्य सलिलसे जिसका पद-प्रान्त निरन्तर प्रक्षालित हो रहा है, उसकी पावनताके विषयमें क्या कहा जा सकता है। इसीलिये मथुराको तीन लोकसे न्यारी कहा जाता है। एक भावुक विद्वान्ने तो यहाँतक कहा है कि 'मथुरा'—ये तीन अक्षर तीनों वेदोंसे भी बढ़कर हैं; क्योंकि वेदत्रयी तो परब्रह्मके पीछे दौड़ती है और परब्रह्म मथुरापुरीके पीछे भागता है—

मथुरेति त्रिवर्णीयं त्रयीतोऽपि गरीयसी।
सा धावति परं ब्रह्म ब्रह्म तामनुधावति॥

मधुपुरीकी महिमाका प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले एक महात्माका उद्गार सुनिये—

अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी।
विना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति॥

'अहो! मधुपुरी मथुरा धन्य है, वैकुण्ठसे भी अधिक गौरवशालिनी है। यहाँ श्रीकृष्णकी कृपाके बिना कोई क्षणभर भी नहीं ठहर सकता।' अतः जिन भाग्यशाली मनुष्योंको कभी यहाँकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त होता है, उनपर तथा यहाँके निवासियोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी महती कृपा माननी चाहिये।

मथुराकी वैदिक और पौराणिक महत्ता

ऋग्वेद-विष्णुसूक्तमें व्रजधाम, मथुरामण्डल एवं गोलोक-धामके विषयमें सुन्दर प्रकाश डालनेवाली एक ऋचा उपलब्ध होती है, जो इस प्रकार है—

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्रा ह तदुरुगायस्य वृष्णः
परमं पदमवभाति भूरि॥

इस मन्त्रमें इन्द्रदेव भगवान् श्रीकृष्ण-बलभद्रकी स्तुति करते हुए कहते हैं—'प्रभो! हम देवतालोग आप दोनों बन्धुओंके मनोरम वासस्थान इस मथुरामण्डलमें आनेकी बड़ी इच्छा रखते हैं, परंतु आपकी कृपाके बिना यहाँ आना और रहना सम्भव नहीं होता। अहा! यहाँके विभिन्न स्थानोंमें परम मनोहर सींगवाली असंख्य गौएँ चरती रहती हैं। बहुसंख्यक विद्वानोंद्वारा जिनकी कीर्ति गायी जाती है, उन वृष्णिवंशावतंस (अथवा सम्पूर्ण कामनाओंकी वर्षा करनेवाले) पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णका वह सुप्रसिद्ध गोलोक नामक परमधाम निश्चय ही यहाँ अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है।'

वाल्मीकीय रामायण, विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, श्रीहरिवंशपुराण,

पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, गर्गसंहिता आदि ग्रन्थोंमें मथुराकी अनुपम महिमाका विभिन्न प्रकारसे विशद वर्णन है।

मथुराका परवर्ती इतिहास

भगवान् श्रीकृष्णके ऐहलौकिक लीलासंवरण करके परमधाम पधारनेके पश्चात् महाराज युधिष्ठिरने हस्तिनापुरके राज्यपर परीक्षित्को और मथुरामण्डलके राज्यपर श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभको प्रतिष्ठित करके स्वयं भाइयोंसहित महाप्रस्थानका आश्रय लिया। वज्रनाभने राजा परीक्षित्के सहयोग तथा महर्षि शाण्डिल्यके निर्देशसे उजड़े हुए माथुरमण्डलको पुनः बसाया और अनेकानेक मन्दिर बनवाये। कंसका वह कारागार, जिसे आज 'कटरा-केशवदेव' कहते हैं, श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव-स्थान होनेसे सबके आकर्षणका केन्द्र बन गया। कारागार केशवदेवके मन्दिरके रूपमें परिणत हुआ और इसीके आस-पास पुरीका प्रमुख भाग सुशोभित हुआ। कालक्रमसे यहाँ अनेकानेक भव्य विशाल गगनचुम्बी मन्दिरोंका निर्माण हुआ। इनमेंसे कुछ तो कालके प्रभावसे नष्ट हो गये और कुछ विधर्मी आक्रामकोंद्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये गये। ईसवी सन्से पूर्ववर्ती महाक्षत्रप सौदासके समयका जो शिलालेख उपलब्ध हुआ है, उसके अनुसार किसी वसु नामक व्यक्तिने श्रीकृष्णजन्मस्थानपर एक मन्दिर, तोरणद्वार और वेदिकाका निर्माण कराया था। उसके पश्चात् दूसरा विशाल मन्दिर ईसवी सन् ४०० के लगभग सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके शासन-कालमें निर्मित हुआ। उस समय मथुरा नगरी संस्कृति एवं कलाका बहुत बड़ा केन्द्र थी और यहाँ हिंदू-धर्मके साथ-साथ बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्मका भी उत्कर्ष था। इस स्थानके पास ही बौद्धों और जैनियोंके भी विहार एवं मन्दिर बने हुए थे। उनके प्राप्त अवशेषोंसे यह स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्णका यह

जन्मस्थान बौद्धों तथा जैनियोंके लिये भी आदर एवं सम्मानका केन्द्र था। चन्द्रगुप्त द्वितीयद्वारा निर्मित उक्त मन्दिर बड़ा ही भव्य था। सन् १०१७ ई० में आक्रमणकारी गजनीके महमूदने उस मन्दिरको तोड़ा और लूटा। महमूदके मीरमुन्शी उल्तनवीने अपनी 'तारीखे मामिनी' नामक पुस्तकमें उक्त मन्दिरके विषयमें जो कुछ लिखा है, उससे मथुराकी तत्कालीन अपार समृद्धिका पता लगता है। सुल्तान महमूदने मन्दिरके बाबत खुद लिखा है कि अगर कोई आदमी इस तरहकी इमारत बनवाना चाहे तो उसे १० करोड़ दीनार खर्च करने पड़ेंगे और उसको बनवानेमें दो सौ सालसे कम नहीं लगेंगे, चाहे उसके लिये ऊँचे-से-ऊँचे तजुर्बेकार कारीगरोंको ही क्यों न लगा दिया जाय। बड़े ही दुर्भाग्य और दुःखकी बात है कि इस प्रकार मन्दिरकी महत्ताका वर्णन करनेवाले गजनीके महमूदने घोर अज्ञानमयी, अधर्ममयी धर्मान्धताके वशमें होकर मन्दिरको नष्ट कर डाला, कलाकी दृष्टिसे भी उसे नहीं रहने दिया।

इसके बाद संवत् १२०७ (सन् ११५० ई०) में महाराज विजयपालके शासन-कालमें 'जज्ज' नामक किसी व्यक्तिने श्रीकृष्णजन्मस्थानपर एक नया मन्दिर बनवाया। इसका पता इस कटरा-केशवदेवसे ही प्राप्त एक संस्कृत शिला-लेखसे लगता है। सन् १५१५ ई० के लगभग श्रीचैतन्य महाप्रभु इस मन्दिरमें पधारे थे। यह विशाल मन्दिर भी १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें सिकन्दर लोदीके शासन-कालमें धराशायी कर दिया गया।

तदनन्तर लगभग १२५ वर्ष बाद जहाँगीरके शासन-कालमें ओरछानरेश राजा वीरसिंहदेव बुंदेलाने इसी जन्मस्थानपर तैंतीस लाख रुपयोंकी लागतसे लगभग ढाई सौ फुट ऊँचा एक दूसरा भव्य मन्दिर बनवाया और उसके चारों ओर ऊँची प्राचीर बनवायी, जिसका

कुछ भाग अभीतक अवशिष्ट है। इस प्राचीरके दक्षिण-पूर्व कोनेमें एक विशाल कूप और उसके ऊपर एक ऊँचे बुर्जका भी निर्माण हुआ। उस कुएँका पानी लगभग साठ फुट ऊँचा उठाकर मन्दिरके प्रांगणमें फौवारे चलाये जाते थे। वह कुआँ और बुर्ज आज भी मौजूद हैं। इनका जीर्णोद्धार अत्यन्त ही आवश्यक है। १६५० ई० के लगभग मथुराकी यात्रापर आये हुए टेवर्नियर नामक फ्रांसीसी यात्रीके वर्णनके अनुसार जगन्नाथ और बनारसके बाद मथुराका यह मन्दिर ही सबसे प्रसिद्ध था। भारतके अत्यन्त उत्कृष्ट मन्दिरोंमें यह एक था। इसकी बड़ी कुर्सी अठपहलू बनी थी। मन्दिरमें लाल रंगके पत्थर लगे थे। मन्दिरके चारों ओर पत्थरोंपर नक्काशी थी, जिनमें भाँति-भाँतिके जानवरोंकी आकृतियाँ बनी हुई थीं। विशाल चबूतरेपर आधेमें मन्दिर और आधेमें जगमोहन बना था। बीचमें एक बड़ा मण्डप था। मन्दिरमें अनेक खिड़कियाँ और गवाक्ष थे। यह इतना ऊँचा और विशाल था कि पाँच-छः कोसकी दूरीसे दिखायी देता था। इटालियन यात्री मनूचीके लिखे अनुसार केशवदेव मन्दिरका सुवर्णाच्छादित शिखर इतना ऊँचा था कि छत्तीस मील दूर आगरासे भी दिखायी देता था। भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थानपर बने हुए इस अन्तिम स्मारकको भी औरंगजेबने १६६९ ई० में नष्ट कर दिया और मन्दिरकी बड़ी कुर्सीके एक भागमें मन्दिरके ही मसालेसे एक ईदगाह बनवा दी।

आज हमारा देश स्वतन्त्र है, गणराज्य है। हिंदू-मुसलमानका कोई प्रश्न नहीं। इस अवस्थामें बर्बरतापूर्ण आक्रमणोंद्वारा हमारे जिन मन्दिरोंको—धार्मिक स्थानोंको भ्रष्ट करके छीन लिया गया था, हमारे आजके मुसलमान भाइयोंका यह कर्तव्य है कि वे हिंदुओंके उन पवित्र स्थानोंको बड़े प्रेमभावसे लौटा दें। हम मुसलमानोंके धर्म-

स्थानोंको—मस्जिदोंको आदरणीय मानते हैं; पर हिंदुओंके धर्मस्थान बलपूर्वक छीनकर उनपर जो मस्जिदें बनायी गयी हैं, वे आज हमारे देशमें कलंकरूपमें खड़ी निरन्तर उन अत्याचारोंका, उन भयानक विनाशकाण्डोंका स्मरण कराती हैं और वे हिंदू-मुसलिम-ऐक्यमें सतत बाधा देती हुई देशके हृदयको पीड़ित कर रही हैं। अतएव हम अपने मुसलमान बन्धुओंसे बड़े प्रेम तथा आग्रहके साथ विनयपूर्वक यह निवेदन करते हैं कि वे आक्रमण करके हिंदुओंके छीने हुए पवित्र स्थानोंको तुरंत वापस कर दें। इसमें उनका कल्याण है, हिंदुओंका कल्याण है और देशका भी कल्याण है। वे मानेंगे या नहीं, भगवान् जानें। पर यदि स्वेच्छासे न मानेंगे तो भगवान् और काल उन्हें मनवा लेगा, आज चाहे न मानें। अस्तु,

सन् १८०३ ई० में मथुराका प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत आ गया। सन् १८१५ ई० में ईस्टइंडिया कम्पनीने कटरा-केशवदेवको नीलाम कर दिया, जिसे बनारसके तत्कालीन राजा पटनीमलने खरीदा। राजा पटनीमल एक उदार और धार्मिक व्यक्ति थे; उनकी प्रबल इच्छा थी कि जन्मस्थानपर भगवान् केशवदेवके मन्दिरका पुनर्निर्माण करा दिया जाय। परंतु उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। उनके बाद उनके उत्तराधिकारी वंशजोंका अधिकार एवं स्वामित्व कटरा-केशवदेवपर बना रहा। मथुराके मुसलमानोंने दो बार सिविल कोर्टमें कटराके तत्कालीन स्वामी रायकृष्णदासके अधिकारको चुनौती दी। परंतु वे हार गये। इलाहाबाद हाईकोर्टने दोनों बार यह फैसला दिया कि कटरापर रायकृष्णदासका ही वास्तविक स्वत्व एवं अधिकार है।

दिवंगत महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीय भगवान् श्रीकृष्णके इस ऐतिहासिक एवं वन्दनीय जन्मस्थानकी दुर्दशासे

अत्यधिक व्यथित थे। उन्होंने इस पुण्यभूमिका पुनरुद्धार करनेका विचार किया और धर्मप्राण श्रद्धेय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी आर्थिक सहायतासे १८ फरवरी सन् १९४४ को इसे रायकृष्णदासजीसे खरीद लिया। परंतु महामना मालवीयजीकी इच्छा भी उनके जीवन-कालमें पूरी नहीं हो सकी। अपने परलोकवासके पूर्व उन्होंने श्रीकृष्णजन्मस्थानके सम्बन्धमें मार्मिक उद्‌गार प्रकट किये और यह अभिलाषा प्रकट की कि भगवान् श्रीकृष्णके स्मारक-निर्माणका कार्य शीघ्र सम्पन्न हो।

महामना श्रीमालवीयजी महाराजकी अन्तिम अभिलाषाके अनुसार श्रद्धेय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने २१ फरवरी सन् १९५१ को 'श्रीकृष्णजन्मभूमि-ट्रस्ट' की स्थापना की और 'कटरा-केशवदेव' पर उस ट्रस्टका अधिकार हो गया। इसी ट्रस्टकी रजिस्ट्री 'सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट' के अनुसार 'श्रीकृष्णजन्मस्थान-सेवा-संघ' के नामसे हो गयी है। इस ट्रस्ट-कमेटीके सर्वप्रथम सभापति लोकसभाके भूतपूर्व अध्यक्ष श्रीगणेश वासुदेव मावलंकर थे। उनके निधनके पश्चात् भूतपूर्व लोकसभाध्यक्ष तथा बिहारके वर्तमान राज्यपाल श्रीएम० अनन्तशयनम् आयंगर सभापति हुए। देशके चुने हुए १५ महानुभाव इसके पदाधिकारी और सदस्य होते हैं।

संस्थाका मुख्य उद्देश्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्णकी पवित्र जन्मस्थलीका सर्वांगीण विकास करके उसको ऐसा रूप दिया जाय, जो भारतीय नीति, संस्कृति, धर्म और दर्शनका केन्द्र बन जाय तथा जहाँसे देश-विदेशमें श्रीमद्भगवद्‌गीताका संदेश प्रचारित होता रहे।

इस मुख्य उद्देश्यकी पूर्तिके लिये बहुत-सी योजनाएँ थीं, जिनमें निम्नलिखित सम्पन्न हुई हैं या होने जा रही हैं—यह प्रसन्नताकी बात है।

(१) मथुराके कुछ उत्साही नवयुवकोंने स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीकी अध्यक्षतामें १५-१०-५३ को श्रमदानकार्य प्रारम्भ किया और श्रीबाबूलालजी बजाज एवं श्रीफूलचंदजी गुप्तके नेतृत्वमें दो वर्षसे अधिक समयतक बड़ी लगन और उत्साहसे श्रमदान करके अधिकांश ऊँचे-ऊँचे टीले खोद डाले एवं गहरे गड्ढोंको भरकर जमीनको समतल कर दिया। वे सभी नवयुवक धन्यवादके अधिकारी हैं। पुरानी प्राचीरके उत्तरी तथा पश्चिमी भाग भी प्रायः निर्मित हो चुके हैं।

(२) भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन एवं पूजन-अर्चनके लिये एक भव्य मन्दिरका निर्माण भी भाई श्रीजयदयालजी डालमियाकी सराहनीय सहायतासे उनकी स्वर्गीया माताकी पुण्यस्मृतिमें पूरा हो चुका है। इस श्रीकृष्ण-मन्दिरमें भगवान्के बालविग्रहकी प्रतिष्ठा संवत् २०१४ में आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाको हुई और भाद्रपद कृष्णा अष्टमी संवत् २०१५ को उसके उद्‌घाटनका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

(३) भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थान 'कृष्णचबूतरा' का जीर्णोद्धार तथा उसपर संगमरमरकी एक विशाल कलापूर्ण छतरीका निर्माण मेरे आदरणीय बन्धु श्रीरामनाथजी गोयनका मद्रासनिवासीके उदार दानसे सम्पन्न हो गया है और प्रतिदिन सहस्रों व्यक्ति उसका दर्शन करके प्रसन्नताका अनुभव करते हैं।

(४) श्रीकृष्ण-लीला इत्यादि सांस्कृतिक समारोहोंके लिये रंगमंचका निर्माण-कार्य भी सम्पन्न हो चुका है और उसके दोनों ओर कार्यालय, विद्यालय, पुस्तकालय, औषधालय, विश्रामालय इत्यादिके लिये पाँच-पाँच कमरोंका निर्माण उदार दाताओंके दानसे हो चुका है।

पाँचवीं योजना एक 'श्रीमद्भागवत-भवन' के निर्माणकी है, जिसका शुभारम्भ आज होने जा रहा है। यह बहुत बड़ा भवन होगा, जिसमें पूरी भागवतके समस्त श्लोक संगमरमर पत्थरपर खुदवाकर लगाये जायँगे।

इंजिनियरोंका अनुमान है कि इसमें लगभग २२ लाख रुपये लगेंगे। भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे ही इस कार्यका आरम्भ हुआ है और उन्हींकी इच्छासे पूर्ण भी होगा। वे ही हमारे दाता हैं और वे ही ट्रस्टी हैं। वे ही सहायक हैं और वे ही रक्षक हैं। वास्तवमें ऐसे कामोंमें जो धन व्यय होता है, वही सार्थक है। धन किसीके पास रहा नहीं और रहेगा भी नहीं। पर आज तो धनका अपव्यय हो रहा है। अनावश्यक कार्योंमें, सिनेमाओंमें, विलासितामें धन नष्ट हो रहा है। सरकारने बेहद कर लगा दिये हैं और उत्तरोत्तर वे बढ़ते ही जा रहे हैं। मनुस्मृतिवाला विधान अब स्वप्नवत् हो गया है कि 'राजा अमुक अंशसे अधिक कर न लगाये।' पर आज सबने आवश्यकता और अभाव बढ़ा लिये हैं और इसलिये सभीको पैसा चाहिये। राज्यको पैसा चाहिये, मन्त्रियों और अधिकारियोंको पैसा चाहिये, व्यापारियोंको पैसा चाहिये, सेवकोंको पैसा चाहिये, कांग्रेसको पैसा चाहिये और सभी संस्थाओंको पैसा चाहिये। बस, हम आज सर्वत्र सर्वथा अर्थके दास हो रहे हैं।

हमारी भारतीय संस्कृतिमें दो महत्त्वकी वस्तुएँ थीं, जिनके कारण हमारा जीवन-स्तर सर्वापेक्षा श्रेष्ठ था। वे वस्तुएँ थीं—'कर्तव्य' और 'त्याग'। आज 'कर्तव्य' के स्थानपर 'अधिकार' आ गया है और त्यागका स्थान 'अर्थ' ने ले लिया है। सारा विश्व आज इन्हीं 'अधिकार' और 'अर्थ' के लिये उन्मत्त है। और विशेष दुःखकी बात तो यह है कि हमारा 'कर्तव्य और

त्याग' का मूर्तिमान् स्वरूप भारत भी अंधा होकर 'अधिकार और अर्थ' के लिये लालायित हो अपने पवित्र स्वरूपको भूलता जा रहा है। उस दिन एक बड़े ही आदरणीय, उच्चपदसे अवकाशप्राप्त वरिष्ठ पुरुषने मुझसे कहा था कि 'हमारी देशभक्तिका स्वरूप आज विकृत हो गया है। इसीसे एक ओर जहाँ चीन हमारी सीमाके किनारे सुसज्जित सैन्य लिये प्रस्तुत है, वहाँ दूसरी ओर हमारे देशके नेतागण 'अधिकार' के लिये परस्पर लड़ रहे हैं।' पुरानी बात है। कलकत्तेमें श्रीअरविन्दका एक बँगला-पत्र निकलता था 'धर्म'। उसमें 'देशभक्ति क्या है?' इस विषयपर श्रीअरविन्दका एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें सबसे पहले एक वाक्य लिखा था— 'देशात्मबोध' ही देशभक्ति है। अर्थात् देश मैं हूँ, देशका स्वार्थ मेरा स्वार्थ, देशकी हानि मेरी हानि, देशका गौरव मेरा गौरव और देशका लाभ मेरा लाभ। देशके स्वार्थके अतिरिक्त देशभक्तका व्यक्तिगत स्वार्थ कुछ रहता ही नहीं। पर जहाँ देशके स्वार्थके साथ देशभक्तका स्वार्थ अड़ जाता है और कहीं देशभक्तका स्वार्थ देशके स्वार्थपर विजयी हो जाता है तो फिर देशभक्ति विकृत हो जाती है और वही होता है जो आज हो रहा है।

कर्तव्यपालनमें व्यक्तिगत स्वार्थका त्याग करना पड़ता है। वहाँ अधिकार और अर्थकी प्रधानता नहीं रहती। प्रधानता रहती है—त्यागकी। आज त्यागका अभाव है, इसीसे सर्वत्र कलह है, युद्ध है। त्यागके बिना प्रेम नहीं होता और प्रेमके बिना सुख नहीं होता। इस व्रजभूमिमें जो इतना प्रेमका प्रवाह बहा था, उसमें प्रधान कारण था—'त्याग'। हमारी श्रीगोपांगनाएँ और उनकी मूल अधिष्ठानस्वरूपा श्रीराधारानीमें त्यागकी पराकाष्ठा थी। स्वसुख-वासना-गन्ध-लेश-कल्पनाशून्य था उनका जीवन। इसीलिये

उस 'त्यागमय पवित्र मधुररस' का आस्वादन करनेके लिये पूर्णकाम स्वयं भगवान् लालायित रहते थे।

इस त्याग-प्रेममय भागवत-जीवनसे ही विश्वका यथार्थ कल्याण सम्भव है। कम्यूनिज्म, सोशलिज्म, कैपिटलिज्म या किसी भी दूसरे इज्म (ism) अर्थात् वादसे, जिसमें त्यागकी नहीं, भोगकी प्रधानता है, कर्तव्यकी नहीं, अधिकार (Power)-की लिप्सा है, कभी विश्वमें शान्ति नहीं होगी। नये-नये उत्पात-उपद्रव होते ही रहेंगे।

श्रीमद्भागवत भागवतधर्मका श्रेष्ठतम ग्रन्थ है, इसके दो-तीन श्लोक मैं आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। इनमें जिन राग-द्वेषरहित सर्वभूतहितकर सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है, उनका स्वीकार और सेवन करनेसे विश्वमें परम शान्ति और परम सुखका अनायास ही उदय हो जायगा। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भागवत ११। २। ४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, तारे, सब प्रकारके चराचर जीव, सब दिशाएँ, वृक्ष-लता-द्रुमादि, नदियाँ, समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं। अतः जीवमात्रको अनन्य भावसे प्रणाम करे।' चराचर जीव सभी प्रणामके और सेवाके पात्र हैं।

आजका बड़े-से-बड़ा मनुष्य 'अखिल विश्व-भ्रातृत्व' की बात कहता है। वह विश्वभरके मानवमें बन्धुत्वकी स्थापना तथा सभी मानवोंका हित चाहता है। मानवके लिये चाहे असंख्य प्राणियोंकी

हत्या करनी पड़े, इसमें उसको कोई आपत्ति नहीं है। इसीसे आज मनुष्यके हितके लिये नाना प्रकारके विभिन्न नामोंसे जीवहत्याओंके कारखाने बने और बनते जा रहे हैं। हमारे यहाँकी जो करोड़ों रुपये लगाकर वैज्ञानिक हत्याशालाएँ—कसाईखाने खोलनेकी योजनाएँ हैं, जो 'विकास' के नामपर 'विनाश' का काम करेंगी, वे भी इस मानवहितकी भ्रान्त-धारणाकी सूचक हैं। पर हमारे भागवतकार केवल मनुष्योंमें ही नहीं, केवल चेतन प्राणियोंमें ही नहीं, अखिल विश्वके समस्त चराचर भूतोंमें भगवान्‌को देखकर उन सभीका हित करनेकी शिक्षा देते हैं।

भागवतका एक अन्य श्लोक है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भागवत ७। १४। ८)

'जितनेसे अपना पेट भरे, उतनेपर ही मनुष्योंका अधिकार है; इससे अधिकपर जो अपना अधिकार समझता है, वह 'चोर' है और उसे 'दण्ड' मिलना चाहिये।'

ये श्रीनारदजीके वाक्य हैं। आजका कोई साम्यवाद या समाजवाद इससे अधिक और क्या कहेगा? पर आजके वादोंमें जहाँ दूसरेके विनाशकी आकांक्षा-चेष्टा तथा राग-द्वेष भरे हैं, वहाँ भागवतधर्मके इस सिद्धान्तमें सबके हितके लिये प्रेमपूर्वक सबके प्रति सर्वस्व-वितरणका पवित्र आदेश है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(३। १३)

'यज्ञावशेष अर्थात् सबको सबका हिस्सा देकर बचे हुए अन्नको

खानेवाले सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; पर जो पापीलोग केवल अपने लिये ही पकाते हैं—कमाते हैं, वे पाप खाते हैं।' भागवतधर्ममें मनुष्यका प्रत्येक कर्म होता है भगवान्‌की सेवाके लिये—'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य**' और भगवान् हैं '**सर्वभूतमय**'। अतएव उसके द्वारा जो भी विचार-कर्म होंगे, सभी विश्व-कल्याणके लिये ही होंगे। यों होनेपर न कहीं अर्थ-वैषम्य रहेगा, न कोई भूखा या अभावग्रस्त ही रहेगा, न छीना-झपटी और कलह-क्लेश ही रहेंगे, न वैर-विरोध और क्रोध-हिंसा रहेंगे। सबका सारा जीवन परस्परके सुख-साधन और हित-साधनमें लगेगा। सबके जीवन विषाद-भयरहित हर्ष और विश्वाससे भर जायँगे।

आज लोग कहते हैं कि 'श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थ ब्राह्मणोंके लिखे हैं, अतएव उनमें ब्राह्मणोंकी मिथ्या प्रशंसा भरी है। वे मानवमात्रका सम्मान न करके किसी वर्गविशेषकी मिथ्या महत्ताकी स्थापना करते हैं।' पर ऐसी बात वे भूलसे कहते हैं। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक है—

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥

(७। ९। १०)

'मेरी समझसे बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभके चरणकमलोंसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर रखे हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलतकको पवित्र कर देता है और बड़प्पनका अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता।'

इन सारे सिद्धान्तोंका विशद विवेचन और स्वरूप-निर्देश भागवतमें है और श्रीमद्भागवतका सम्बन्ध भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी प्राकट्य (जन्म)-भूमिसे नित्य अविच्छिन्न है। श्रीकृष्ण ही इस ग्रन्थके प्रतिपाद्य विषय, प्राण, आत्मा एवं आराध्यदेव हैं। वस्तुतः श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् वाङ्मय विग्रह रहा है। अतः इस पुण्यभूमिपर श्रीमद्भागवत-भवनके निर्माणका कार्य अत्यन्त आवश्यक और सुसंगत है। स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि 'श्रीमद्भागवत' तथा श्रीभगवान् श्यामसुन्दरका एक ही स्वरूप है— सच्चिदानन्दमय। [१]अठारह हजार श्लोकोंका यह भागवत नामक ग्रन्थ ही कलिरूपी ग्राहसे गृहीत मानवोंके लिये परम आश्रय है। [२]पद्मपुराणमें श्रीमद्भागवत-कथाको परम दुर्लभ बताया गया है। करोड़ों जन्मोंके पुण्यका उदय होनेपर इसकी उपलब्धि होती है। [३]अतः श्रीमद्भागवतका श्रवण, पठन एवं चिन्तन-मनन जगत्के लिये परम मंगलकारी है।

कुछ लोग श्रीमद्भागवतपर अनेक प्रकारके आक्षेप किया करते हैं, यथा—'श्रीमद्भागवतका वर्तमान रूप प्राचीन नहीं है, महाभारतके खिलभाग हरिवंशमें जो श्रीकृष्णचरित्र वर्णित हैं, वे ही प्रामाणिक हैं, भागवतवर्णित नहीं। महाभारतके पूर्व ही अठारह पुराणोंकी रचना हो चुकी थी—ऐसा वर्णन मिलता है। भागवतकी रचना महाभारतके पश्चात् हुई, जैसा कि

१-श्रीमद्भागवतस्याथ श्रीमद्भगवतः सदा।
स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम्॥

२-ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो योऽसौ भागवताभिधः।
कलिग्राहगृहीतानां स एव परमाश्रयः॥

३-दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा।
कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते॥

भागवतमें ही लिखा है। अतः यह महापुराण कैसे माना जा सकता है? देवीभागवत ही महापुराण है। भागवत तो बोपदेवकी रचना है' इत्यादि। इन सब प्रश्नोंका विस्तृत विवेचन 'कल्याण' के भागवतांकमें देखना चाहिये। यहाँ संक्षेपमें इतना ही निवेदन करना है कि श्रीमद्भागवतका वर्तमान रूप ही प्राचीन है। श्रीनारदीय पुराणमें श्रीमद्भागवतकी जो सूची मिलती है और प्रत्येक स्कन्धमें जिन कथाओंका निर्देश मिलता है, वे सब ज्यों-की-त्यों श्रीमद्भागवतमें मिलती हैं। कौशिक-संहितान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यसे भी इसी बातका समर्थन होता है। पद्मपुराण और स्कन्दपुराणमें जो भागवत-माहात्म्य मिलते हैं, वे इसीकी प्रामाणिकता और महापुराणताके साधक हैं। गौरीतन्त्रमें स्पष्ट लिखा है कि श्रीमद्भागवतमें तीन सौ पैंतीस अध्याय हैं और अठारह हजार श्लोक हैं। अठारह हजार श्लोकोंकी गणनाका प्रकार यह है कि भागवतके प्रत्येक अक्षरको अध्यायकी पुष्पिका और उवाचके साथ गिनकर बत्तीस अक्षरोंके अनुष्टुप् छन्दोंमें विभक्त किया जाय। श्रीमद्भागवतकी अन्वितार्थप्रकाशिका टीकाके रचयिता श्रीगंगासहायजीने लिखा है कि उन्होंने तीन बार श्रीमद्भागवतका एक-एक अक्षर गिना था। उनकी गणनाके अनुसार डेढ़ श्लोक कम अठारह हजार श्लोक उपलब्ध होते हैं। डेढ़ श्लोककी कमी कोई कमी नहीं है। वह भी उक्त प्रतिमें कुछ 'उवाच' आदि छूट जानेके कारण ही है। जो लोग हरिवंशके ही चरित्रको प्रामाणिक मानते हैं, उनसे मेरा मतभेद नहीं है। मैं हरिवंशको भी प्रामाणिक मानता हूँ और श्रीमद्भागवतको भी। श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंका अनेक पुराणोंमें वर्णन है, परंतु सबमें सभी बातोंका

उल्लेख सम्भव नहीं हो सका है, अतः चरित्रों या लीलाओंकी न्यूनाधिकताको लेकर किसी पुराणको प्रामाणिक या अप्रामाणिक बताना उचित नहीं है। व्यासजीने सौ पर्वोंका महाभारत पुराणोंसे भी पहले बनाया था, उसके बाद पुराणोंकी रचना हुई, फिर उक्त महाभारतका १८ पर्वोंमें संक्षेप किया गया। इसलिये जहाँ पुराणोंके महाभारतसे पूर्व निर्माणका वर्णन आता है, वह अठारह पर्ववाले महाभारतसे और जहाँ पश्चात् वर्णन आता है, वह सौ पर्ववालेसे—ऐसा समझना चाहिये। अतः इस बातको लेकर भी श्रीमद्भागवतकी महापुराणतामें संदेह नहीं किया जा सकता। पुराणोंके जो भी लक्षण मिलते हैं, वे सब श्रीमद्भागवतमें संगत होते हैं।

रह गयी भागवतके बोपदेवरचित होनेकी बात, सो यह भी भ्रान्त धारणा है। वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालयके पुस्तकालय सरस्वतीभवनमें श्रीमद्भागवतकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है, जो बारहवीं शताब्दीकी लिखी है और बोपदेव तेरहवीं शताब्दीमें हुए थे—यह निर्विवाद सिद्ध है। जो लोग हस्तलिखित पुस्तकों, ताम्रपत्रों और शिला-लेखोंका अनुशीलन करते हैं, वे भी पुस्तककी लिपि देखकर उसकी प्राचीनता स्वीकार करनेमें आगा-पीछा नहीं करेंगे। द्वैतवादके प्रतिपादक पूज्यपाद मध्वाचार्यका आविर्भाव सन् ११९९ में हुआ था। उन्होंने भागवतपर 'भागवत-तात्पर्यनिर्णय' नामक टीका लिखी है। बोपदेव उनसे बहुत पीछे उत्पन्न हुए थे। मध्वाचार्यसे पूर्ववर्ती श्रीरामानुजाचार्य सन् १०१७ में आविर्भूत हुए थे। उन्होंने अपने 'वेदान्त-तत्त्वसार' नामक ग्रन्थमें श्रीमद्भागवतके नामोल्लेखपूर्वक कई वचन उद्धृत किये हैं। वेदार्थ-संग्रहमें श्रीरामानुजाचार्यने भागवतकी गणना सात्त्विक पुराणोंमें की है। श्रीधरस्वामीने अपनी विष्णुपुराणकी

टीकामें चित्सुखाचार्यकी चर्चा की है। उन्होंने भागवतपर टीका लिखी थी। इस बातका उल्लेख मध्वाचार्य, श्रीधर और विजयध्वजतीर्थने भी किया है। चित्सुखाचार्यका समय नवीं शताब्दी है। इस तरह अनेक ऐसे आधार उपलब्ध हैं, जिनसे भागवतकी प्राचीनता सिद्ध होती है। जिस ग्रन्थपर नवीं शताब्दीमें व्याख्या लिखी जा चुकी थी, वह तेरहवीं शताब्दीमें उत्पन्न बोपदेवकी रचना कैसे कही जा सकती है? भागवतकी रचना या सम्पादन आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व ही हो चुका था। भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम-गमनके पश्चात् तीस वर्षके भीतर ही भगवान् वेदव्यासने महाभारत तथा श्रीमद्भागवतका प्रणयन करके उसे अपने शिष्योंको पढ़ा दिया था। अस्तु,

उसी श्रीमद्भागवतको संगमरमरके पत्थरोंपर उत्कीर्ण करवाकर श्रीमद्भागवत-भवनमें प्रतिष्ठापित करनेकी जो योजना थी, उसका आज शुभारम्भ होने जा रहा है; इस भवनके शिलान्यासका कार्य मेरे द्वारा करवानेका जो गौरव इसके आयोजकोंने मुझे प्रदान किया है, इसके लिये मैं आभारी हूँ। यद्यपि मुझमें इस कार्यको सम्पादित करनेकी योग्यता या क्षमताका सर्वथा अभाव है, तथापि बड़ोंकी आज्ञाका पालन करनेके उद्देश्यसे ही संकोचपूर्वक मुझे इसके लिये स्वीकृति देनी पड़ी है। मैं समझता हूँ, आप सब लोगोंके सक्रिय सहयोगद्वारा और भगवान् श्रीकृष्णकी महती कृपासे ही यह कार्य अवश्य सुसम्पन्न होगा।

एकाध सज्जनका यह कहना है कि 'देशकी वर्तमान स्थितिमें इस प्रकारके भवनपर इतना व्यय करना उचित नहीं है।' वे जिस दृष्टिकोणसे कह रहे हैं, वह ठीक है। पर इसका एक विशेष महत्त्व है। श्रीमद्भागवतका एक बहुत अच्छा और शुद्ध पाठ लोगोंको दीर्घकालके लिये मिल जायगा। श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णका एक

मूर्त विग्रह है, इसके दर्शनका सौभाग्य सबको हो जायगा। रही व्ययकी बात, सो आजकल विकासके नामपर नयी-नयी इमारतें बनानेमें जो असीम व्यय हो रहा है और जिसकी उपयोगिता भी संदिग्ध है, उसके सामने यह व्यय अति नगण्य है और इसकी उपयोगिता भी प्रत्यक्ष है। इस महान् कार्यमें जो कुछ व्यय होगा, वह दीर्घकालतक भगवद्भाव वितरण करता रहेगा।

इस शिलान्यासके प्रसंगमें यहाँ दो महान् आयोजन और हो रहे हैं—एक व्रजके तथा बाहरके सम्मान्य सैकड़ों विद्वानोंद्वारा श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण और उसके साथ प्रसिद्ध भागवत-व्यास पं० श्रीनित्यानन्दजी भट्टद्वारा सप्ताह-कथा और दूसरा प्रसिद्ध प्रेमी भागवत-व्यास पं० श्रीव्रजकिशोरजी मिश्रद्वारा होनेवाली भागवत-सप्ताह-कथा। लगभग ३५० वर्ष पूर्व अत्याचारी औरंगजेबके द्वारा मन्दिरके ध्वंस किये जानेके बाद यही पहला अवसर है, जब इस पुण्य-भूमिमें व्रजके विद्वानोंद्वारा श्रीमद्भागवतका मंगल-पारायण हो रहा है। इस प्रकार भस्मीभूत भूमिपर जो पवित्र सुधाधारा प्रवाहित हो रही है, इसके लिये इन अनुष्ठानोंके पुण्यभागी संयोजकोंका हम सभी हृदयसे अभिनन्दन करते हैं। योग्य न होनेपर भी मुझे आपलोगोंने इस महान् पुण्यमय 'भागवत-भवन' के शिलान्यासका सौभाग्य प्रदान किया, इसके लिये मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ।

बोलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!

योगवासिष्ठका साध्य-साधन

योगवासिष्ठ महारामायणका प्रारम्भ होता है—देवराज इन्द्रके द्वारा महर्षि वाल्मीकिके पास राजा अरिष्टनेमिके भेजे जानेके प्रसंगसे। अरिष्टनेमि महर्षि वाल्मीकिसे मोक्षका साधन पूछते हैं। उसके उत्तरमें वाल्मीकिजी महाराज अपने शिष्य भरद्वाजके साथ हुए संवादका वर्णन करते हुए भगवान् रामके प्राकट्यकी बात सुनाते हैं। तदनन्तर महर्षि विश्वामित्रके दशरथ-दरबारमें आकर यज्ञरक्षार्थ रामको माँगनेका प्रसंग सुनाकर रामके वैराग्य तथा राम-वसिष्ठसंवादके रूपमें छः प्रकरणोंमें 'योगवासिष्ठ' नामक विशाल ग्रन्थका श्रवण कराते हैं।

योगवासिष्ठ अजातवाद या केवल ब्रह्मवादका ग्रन्थ है। इसके सिद्धान्तानुसार एकमात्र चेतनतत्त्व परब्रह्मके अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता ही नहीं है। जैसे समुद्रमें अनन्त तरंगें उठती-मिटती रहती हैं, वे समुद्रसे भिन्न नहीं हैं, इसी प्रकार नित्य समरूप अनादि अनन्त सच्चिदानन्दघन परमात्म-चैतन्यरूप समुद्रमें नाना प्रकारके अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशकी लीला-तरंगें दीखती रहती हैं। चित्त या अहंकार—जो वास्तवमें चेतन-ब्रह्मसे अभिन्न तथा ब्रह्मरूप ही है— इस दृश्य-प्रपंचका—सृष्टि-स्थिति-विनाशका कारण है। अहंकारका नाश होते ही जो अहंकारकी सत्ता न माननेसे ही नाश हो जाता है, केवल एक ब्रह्मचैतन्य ही रह जाता है। इसी एक तत्त्वका विभिन्न आख्यानों, इतिहासों, कथाओंके द्वारा इस विशाल ग्रन्थमें प्रतिपादन किया गया है। यह ग्रन्थ पुनरुक्तिपूर्ण है। एक ही सत्य-तत्त्वको दृढ़तापूर्वक हृदयमें जमा देनेके लिये, एक ही सत्य-तत्त्वकी अनुभूति या प्राप्ति करा देनेके लिये बार-बार विभिन्न रूपोंसे एक-सी ही युक्तियों तथा उपमाओंका उल्लेख किया गया है।

सृष्टि न कभी हुई, न है—एकमात्र ब्रह्म ही है। इस प्रकार सृष्टिका अभाव प्रतिपादन करनेपर भी इस ग्रन्थमें कहीं भी यथेच्छाचार, शास्त्रनिषिद्ध व्यवहार, राग-द्वेष-काम-क्रोधादिजनित अनाचार, भ्रष्टाचार, दुष्ट-संग आदिका समर्थन नहीं किया गया है, वरं बड़ी कड़ाईके साथ शास्त्राज्ञापालनरूप सदाचारपरायणता एवं त्यागमय पुण्यमय जीवनकी आवश्यकता बतायी गयी है। राग, ममता, कामना, तृष्णा, इच्छा और इनके मूल अहंकारके त्यागकी महत्ता स्थान-स्थानपर बतलायी गयी है। इन्द्रियभोगोंमें फँसे हुए मनुष्योंकी घोर दुर्दशाका वर्णन करते हुए वैराग्यकी अत्यन्त प्रयोजनीयताका प्रतिपादन किया गया है। साधक पुरुषको अहंभावनारूप ग्रन्थिका यथार्थ ब्रह्मज्ञानके द्वारा भेदन करके सच्चा ज्ञानी बननेका उपदेश दिया गया है, केवल ज्ञानका कथनमात्र करनेवाले 'ज्ञानबन्धु' (नकली ज्ञानी) बननेका नहीं। महर्षि वसिष्ठने यहाँतक कहा है कि वे ज्ञानबन्धु (नकली ज्ञानी)-से तो अज्ञानीको अच्छा समझते हैं (क्योंकि वह बेचारे अपनेको तथा दूसरोंको धोखा तो नहीं देते)। महर्षि कहते हैं—

ज्ञानिनैव सदा भाव्यं राम न ज्ञानबन्धुना।
अज्ञातारं वरं मन्ये न पुनर्ज्ञानबन्धुताम्॥

(निर्वाण-प्रकरण उ० २१। १)

फिर भगवान् श्रीरामके पूछनेपर नकली ज्ञानी (ज्ञान-बन्धु)-के लक्षण बतलाते हैं।

व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत्।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते॥
कर्मस्पन्देषु नो बोधः फलितो यस्य दृश्यते।
बोधशिल्पोपजीवित्वाज्ज्ञानबन्धुः स उच्यते॥

वसनाशनमात्रेण तुष्टाः शास्त्रफलानि ये।
जानन्ति ज्ञानबन्धूंस्तान्विद्याच्छास्त्रार्थशिल्पिनः॥

(निर्वाणप्रकरण उ० २१। ३—५)

'जैसे शिल्पी जीविकाके लिये ही शिल्पकला सीखता है, वैसे ही जो मनुष्य केवल भोगप्राप्तिके लिये ही शास्त्रको पढ़ता और उसकी व्याख्या करता है, स्वयं शास्त्रके अनुसार आचरणके लिये प्रयत्न नहीं करता, वह ज्ञानबन्धु कहलाता है। शास्त्राध्ययनसे जिसको शाब्दिक बोध हो गया है, परन्तु उस बोधका फल, जो विनाशशील भोगों—व्यवहारोंमें वैराग्य होना चाहिये, सो नहीं हुआ तो उसका वह शास्त्रज्ञान शिल्पमात्र है— तत्त्वज्ञानकी बातें बनाकर दूसरोंको ठगनेके लिये चातुर्यपूर्ण कलामात्र है। उस कलासे केवल जीविका चलानेवाला होनेके कारण वह मनुष्य ज्ञानबन्धु कहलाता है। जो केवल भोजन-वस्त्रमें ही संतुष्ट रहकर भोजनादिकी प्राप्तिको ही शास्त्राध्ययनका फल समझते हैं, वे शास्त्रोंके अर्थको एक शिल्पकला ही मानते हैं। ऐसे लोगोंको ज्ञानबन्धु जानना चाहिये।' फिर कहते हैं—

अपुनर्जन्मने यः स्याद् बोधः स ज्ञानशब्दभाक्।
वसनाशनदा शेषा व्यवस्था शिल्पजीविका॥

(निर्वाणप्रकरण उ० २२। ४)

'जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है, पुनर्जन्मकी नहीं, उसीका नाम ज्ञान है। उसके अतिरिक्त दूसरा जो शब्दज्ञानका चातुर्य है, वह तो रोटी-कपड़ा प्राप्त करनेकी कलामात्र है। उसे केवल भोजन-वस्त्र जुटानेवाली व्यवस्था समझनी चाहिये।'

इस परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये शम (मनकी स्ववशता), दम (इन्द्रियनिग्रह), शास्त्रीय सदाचारका सेवन, दैवी सम्पत्तिके गुणोंका अर्जन तथा भोग-वैराग्यपूर्वक ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छासे सद्गुरुकी शरणमें

जाना आवश्यक है। सद्‌गुरु वही है, जो शिष्यके अज्ञानान्धकारको अपने निर्मल स्वप्रकाश-ज्ञानकी विमल ज्योतिसे हर ले और शिष्य वही है, जो विनय तथा सेवापरायण होकर ज्ञानी गुरुसे प्रश्न करे और उनके आज्ञानुसार अपना जीवन निर्माण करे। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

अतत्त्वज्ञमनादेयवचनं वाग्विदांवर।
यः पृच्छति नरं तस्मान्नास्ति मूढतरोऽपरः॥
प्रामाणिकस्य तज्ज्ञस्य वक्तुः पृष्टस्य यत्नतः।
नानुतिष्ठति यो वाक्यं नान्यस्तस्मान्नराधमः॥

(मुमुक्षुप्रकरण ११। ४५-४६)

'वाग्वेत्ताओंमें श्रेष्ठ राम! जो तत्त्वका ज्ञान नहीं रखता, उसके वचन मानने योग्य नहीं हैं। ऐसे तत्त्वज्ञानहीन मनुष्यसे जो तत्त्वविषयक प्रश्न करता है, उससे बढ़कर दूसरा कोई 'मूर्ख' नहीं है। (साथ ही जो मनुष्य किसी सच्चे ज्ञानी महात्मासे) पूछकर भी उस प्रमाणकुशल तथा तत्त्वज्ञानी वक्ताके उपदेशके अनुसार यत्नपूर्वक आचरण नहीं करता, उससे बढ़कर 'नराधम' भी दूसरा कोई नहीं है।'

अतएव न तो बिना जाने-समझे किसीसे पूछना चाहिये तथा न तत्त्वज्ञ महात्माका उपदेश प्राप्त करके उसकी अवहेलना ही करनी चाहिये। साथ ही तत्त्वज्ञ पुरुषको भी चाहिये कि वे यथार्थ अधिकारीको ही तत्त्वका उपदेश दें। महर्षि कहते हैं—

पूर्वापरसमाधानक्षमबुद्धावनिन्दिते।
पुष्टं प्राज्ञेन वक्तव्यं नाधमे पशुधर्मिणि॥
प्रामाणिकार्थयोग्यत्वं पृच्छकस्याविचार्य च।
यो वक्ति तमिह प्राज्ञाः प्राहुर्मूढतरं नरम्॥

(मुमुक्षुप्रकरण ११। ४९-५०)

'ज्ञानी महात्माको चाहिये कि पूर्वापरका विचार करके यथार्थ निश्चय करनेमें जिसकी बुद्धि समर्थ हो, जिसके आचरण

दुराचारोंका नाश होता है या नहीं। उनके जीवनगत सहज शास्त्रप्रतिपादित आचरणोंसे इसे दुराचार-दुर्गुणोंके त्याग और सदाचार-सद्गुणोंके ग्रहणके लिये प्रेरणा मिलती है या नहीं। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

लोभमोहरूपां यस्य तनुतानुदिनं भवेत्।
यथाशास्त्रं विहरति स्वकर्मसु स सज्जनः॥

(स्थितिप्रकरण ३३। १५)

'जिसके संगसे लोभ, मोह और क्रोध प्रतिदिन क्षीण होते हों और जो शास्त्रके अनुसार अपने कर्मोंका आचरण करनेमें लगा रहता हो वह सत्पुरुष है।'

मोक्षके द्वारपर निवास करनेवाले ये चार द्वारपाल बतलाये गये हैं—शम, विचार, संतोष और साधुसंग। इन चारोंकी भलीभाँति सेवा की जाती है तो वे मोक्षरूपी राजप्रासादका द्वार खोल देते हैं।

ऐसे सैकड़ों, हजारों वचन इस महान् ग्रन्थमें हैं, जिनमें शास्त्रोक्त आचरण, संयम, नियम आदि साधनोंकी उपादेयता और नितान्त प्रयोजनीयताका उपदेश भरा है।

योगवासिष्ठमें दैवकी बड़ी निन्दा तथा पौरुषकी प्रशंसा की गयी है। एवं निष्कामभावसे सावधानीके साथ शास्त्रानुकूल सत्कर्म करनेपर बहुत जोर दिया गया है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्जरादिव॥

(मुमुक्षुप्रकरण ६। २८)

व्यवहारसहस्राणि यान्युपयान्ति यान्ति च।
यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु त्यक्त्वा सुखासुखे॥
यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादां स्वामनुज्झतः।
उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव॥

स्वार्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः।
प्रोक्ता पौरुषशब्देन सा सिद्ध्यै शास्त्रयन्त्रिता॥

(मुमुक्षुप्रकरण ६। ३०—३२)

'जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्मके सम्पादनमें कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत्‌के मोह-पाशसे वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरेसे सिंह। संसारमें आने-जानेवाले सहस्रों व्यवहार हैं। उनमें सुख-दुःख-बुद्धिका त्याग करके शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिये। शास्त्रके अनुकूल और कभी उच्छिन्न न होनेवाली अपनी मर्यादाका जो त्याग नहीं करता, उस पुरुषको समस्त अभीष्ट वस्तुएँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे सागरमें गोता लगानेवालेको रत्नोंका समूह। जिसमें अपना मानव-जीवनका प्रधान कार्य—स्वार्थ साधता हो, उस स्वार्थकी प्राप्ति करानेवाले साधनोंमें ही तत्पर हो रहनेको विद्वान्‌लोग 'पौरुष' कहते हैं।'

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता देवपरायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः॥

(मुमुक्षुप्रकरण ७। ३)

'जो लोग उद्योगका त्याग करके केवल दैवके भरोसे बैठे रहते हैं, वे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका नाश कर डालते हैं।' वे आलसी मनुष्य आप ही अपने शत्रु हैं।

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्।
प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः॥
यच्छ्रेयो यदतुच्छं च यदपायविवर्जितम्।
तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः॥

'अशुभ कर्मोंमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर प्रयत्नपूर्वक शुभ कर्मोंमें लगाना चाहिये। यह सब शास्त्रोंके सारका संग्रह है।

जो वस्तु कल्याणकारी है, वह तुच्छ नहीं है (वही सबसे श्रेष्ठ है)। तथा जिसका कभी नाश नहीं होता, उसीका यत्नपूर्वक आचरण करना चाहिये—गुरुजन यही उपदेश देते हैं।'

जीवन्मुक्तके लक्षण बतलाते हुए महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।
अस्तं गतं स्थितं व्योम जीवन्मुक्तः स उच्यते॥
बोधैकनिष्ठतां यातो जाग्रत्येव सुषुप्तवत्।
या आस्ते व्यवहर्तैव जीवन्मुक्तः स उच्यते॥
नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।
यथाप्राप्तस्थितेर्यस्य जीवन्मुक्तः स उच्यते॥
यो जागर्ति सुषुप्तस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते।
यस्य निर्वासनो बोधो जीवन्मुक्तः स उच्यते॥
यस्य नाहङ्कृतो भावो यस्य बुद्धिर्न लिप्यते।
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते॥
यस्योन्मेषनिमेषार्द्धाद्विदः प्रलयसम्भवौ।
पश्येत् त्रिलोक्याः स्वसमः स जीवन्मुक्त उच्यते॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥
शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥

(उत्पत्तिप्रकरण ९। ४—७,९—१२)

'यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुषकी दृष्टिमें यह जगत् ज्यों-का-त्यों बना हुआ ही विलीन हो जाता है और आकाशके समान शून्य प्रतीत होने लगता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जो व्यवहारमें लगा हुआ ही एकमात्र बोधनिष्ठाको प्राप्त होकर जाग्रत्-अवस्थामें भी सुषुप्त पुरुषकी भाँति राग-द्वेष तथा हर्ष-

शोकादिसे रहित हो जाता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जिसके मुखकी कान्ति सुखमें उदित नहीं होती—जगमगाती नहीं और दुःखमें अस्त—फीकी नहीं हो जाती और जो कुछ मिल जाय उसीमें संतोषपूर्वक जो जीवन-निर्वाह करता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। जो निर्विकार आत्मामें सुषुप्तिकी तरह स्थित रहता हुआ भी अविद्यारूप निद्राका निवारण हो जानेसे सदा जागता रहता है, पर जो जाग्रत् भी नहीं है, भोग-जगत्‌में सदा सोया हुआ है अर्थात् भोगबुद्धिसे जो किसी भी पदार्थका उपभोग नहीं करता और जिसका ज्ञान, वासनारहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसमें अहंकारका भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि कर्म करते समय कर्तृत्वके और कर्म न करते समय अकर्तृत्वके अभिमानसे लिप्त नहीं होती, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जो ज्ञानस्वरूप परमात्माके किंचित् उन्मेष तथा निमेषमें ही तीनों लोकोंकी प्रलय तथा उत्पत्ति देखता है और जिसका सबके प्रति समान आत्मभाव है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। न तो जिससे लोगोंको उद्वेग होता है और न लोगोंसे जिसको उद्वेग होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष और भयसे रहित है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। जिसकी संसारके प्रति सत्यताबुद्धि नहीं रही है, जो अवयवयुक्त दीखनेपर भी वस्तुतः अवयवरहित है। जो चित्तयुक्त होकर भी वास्तवमें चित्तसे रहित है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। जीवन्मुक्तकी इस स्वरूपव्याख्यासे पता लगता है कि यथार्थ ज्ञान ही जीवन्मुक्तका स्वरूप होता है। केवल मौखिक ज्ञान तो प्रदर्शनमात्र तथा धोखेकी चीज है।

योगवासिष्ठमें योगके साधन तथा योगसिद्धियोंका एवं योगभूमिकाओंका भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन है। उनका मर्म बिना अनुभवी योगसिद्ध गुरुके समझमें आना बहुत कठिन है। योग-

वासिष्ठमें दर्शन तथा योगसम्बन्धी ऐसे-ऐसे शब्द आये हैं, जिनका अर्थ समझना केवल भाषाज्ञानसाध्य नहीं, परंतु साधनसाध्य है।

योगवासिष्ठमें कर्म और भक्तिका कहीं निषेध नहीं है। कर्मकी तो परमावश्यकता ही बतलायी है। पौरुष कर्ममय ही होता है। अवश्य ही वह कर्म होना चाहिये: कामना, आसक्ति तथा अहंकारसे रहित। यद्यपि भक्तिका वैष्णवशास्त्रों-जैसा वर्णन नहीं है, तथापि सदाचार-सत्संगमूलक उपासनाका जगह-जगह प्रतिपादन है। प्रह्लादके प्रसंगमें भक्तिकी भी बहुत बातें आयी हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रको पूर्णब्रह्म बतलाकर स्वयं वसिष्ठने नमस्कार किया है। महर्षि भरद्वाजने अपने तथा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीमें भेद बतलाते हुए महर्षि वाल्मीकिजीसे कहा है—

श्रीरामचन्द्रजी तो परमयोगी, समस्त विश्वके वन्दनीय, देवताओंके ईश्वर, अजन्मा, अविनाशी, विशुद्ध ज्ञान-स्वभाव, समस्त गुणोंके निधान, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके आधार एवं तीनों लोकोंके उत्पादन, संरक्षण और अनुग्रह करनेवाले हैं—

स खलु परमयोगी विश्ववन्द्यः सुरेशो
जननमरणहीनः शुद्धबोधस्वभावः।
सकलगुणनिधानं सन्निधानं रमाया-
स्त्रिजगदुदयरक्षानुग्रहाणामधीशः॥

(नि० प्र०, पूर्वार्ध १२७। २)

महर्षि विश्वामित्रने भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बहुत बड़ी महिमाका गान किया है और वसिष्ठादि सभी उसे सुनकर अत्यन्त आह्लादित हुए हैं।

रही श्रीरामचन्द्रजीका अज्ञानी बनकर ज्ञान प्राप्त करनेकी बात, सो लीलामय भगवान्‌के लिये इसमें कौन-सी दोषकी बात है। जो भगवान् श्रीरामचन्द्र विद्यार्थी बनकर गुरु वसिष्ठसे विद्याध्ययन करते हैं, विश्वामित्रसे अस्त्र-शिक्षा ग्रहण करते हैं, सच्चे पतिके रूपमें सीताके

दुःखसे महान् दुःखी होते हैं, स्त्रैण तथा अज्ञकी भाँति सीताके लिये वन-वन रोते फिरते और जिस-किसीसे उनका पता पूछते हैं, लक्ष्मणके लिये विलाप-प्रलाप करते हैं, वे भगवान् यदि लोक-संग्रहके लिये अज्ञानी, वैराग्यवान् तथा मुमुक्षु सजकर आदर्श शिष्य-लीलामें प्रवृत्त होकर महर्षि वसिष्ठको ज्ञानशास्त्रके प्रतिपादनमें प्रवृत्त करते हैं और उसे सुनकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं तो इससे उनकी परात्परता, परब्रह्मरूपता, विशुद्धज्ञान-स्वरूपता, ईश्वरता आदिमें कहीं कुछ कमी आ जाती हो, यह तो मानना ही भूल है।

कुछ सज्जनोंका कथन है कि योगवासिष्ठमें बहुत अनुचित रूपसे नारी-निन्दा की गयी है, पर वस्तुतः ऐसी भी बात नहीं है। यों तो भोगदृष्टिसे जो कुछ भी आसक्ति-कामना बढ़ानेवाली चीजें हैं, परमार्थक्षेत्रमें वे सभी निन्दनीय तथा त्याज्य हैं—नारी, धन, राज्य, इन्द्रियोंके प्रत्येक विषय। पर योगवासिष्ठमें 'नारी-गौरव' की प्रतिष्ठा है। शिखिध्वज-जैसे राज्यत्यागी अरण्यवासी तपोमूर्ति पुरुषको चूडाला नारी ही विशुद्ध ज्ञानका उपदेश करके उन्हें परमपद प्राप्त करवाती है तथा अहंकारशून्य होकर राजकर्मके प्रतिपालनमें प्रवृत्त कराती है। चूडाला-जैसी योगसिद्धा, ज्ञान-विज्ञानसम्पन्ना, ब्रह्मैकनिष्ठ-ब्रह्मस्वरूपा नारीका जिस ग्रन्थमें विशद वर्णन हो और नारी इतनी उच्चस्तरतक पहुँच सकती है, इसका जिसमें प्रतिपादन हो, उस ग्रन्थको नारी-निन्दक मानना कभी युक्तिसंगत नहीं है।

योगवासिष्ठमें सुन्दर-सुन्दर आख्यानों, इतिहासोंके द्वारा बड़ी ही सुन्दर रीतिसे ब्रह्मैकतत्त्वका प्रतिपादन हुआ है, जो एक महान् कार्य है। इसमें दोषदृष्टि न करके सभीको अपनी रुचि तथा भावके अनुसार यथासाध्य लाभ उठाना चाहिये।

शिवपुराणमें शिवका स्वरूप

एक ही परमतत्त्व

सत्-चित्-आनन्दरूप परतम परात्पर ब्रह्म एक है, वह सर्वदा-सर्वथा पूर्ण, सर्वग, सर्वगत, अनन्त, विभु है, वह सर्वातीत है और सर्वरूप है। सम्पूर्ण देश-कालातीत है, सम्पूर्ण देश-कालमय है। वह नित्य-निराकार, नित्य-निर्गुण है, वह नित्य-साकार, नित्य-सगुण है। अवश्य ही उसकी आकृति पांचभौतिक नहीं और उसके गुण त्रिगुणजनित नहीं हैं। वह ब्रह्म स्वरूपतः नित्य एकमात्र होते हुए भी स्वरूपतः ही अनादिकालसे विविधरूप-सम्पन्न, विविधशक्ति-सम्पन्न एवं विविध-शक्ति-प्रकाश-प्रक्रिया-सम्पन्न है। नित्य एक होते हुए ही उसकी नित्य विभिन्न पृथक् सत्ता है। इन्हीं पृथक् रूपोंके नाम शिव, विष्णु, शक्ति , रमा, कृष्ण, गणेश आदि हैं। वह एक ही अनादिकालसे इन विविध रूपोंमें अभिव्यक्त है। वे सभी स्वरूप नित्य-शाश्वत आनन्दमय ब्रह्मरूप ही हैं—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥
परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः॥

'परात्पर ब्रह्मके वे सभी रूप नित्य शाश्वत परमात्म-स्वरूप हैं। उनके देह जन्म-मरणसे रहित और स्वरूपभूत हैं, कदापि प्रकृतिजनित नहीं हैं। वे परमानन्द-संदोह हैं, सर्वतोभावेन ज्ञानैकस्वरूप हैं, वे सभी समस्त भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं एवं सभी दोषोंसे (माया-प्रपंचसे) सर्वथा रहित हैं।'

शिवपुराणमें ये ही परात्पर ब्रह्म 'शिव' नामसे विख्यात हैं—इनके स्वरूपका शिवपुराणमें आदिसे अन्ततक जो वर्णन मिलता है, वह सब-का-सब पूर्णरूपसे परतम ब्रह्मका ही वर्णन है। वेद-उपनिषद्में परात्पर ब्रह्मके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, वही शिवपुराणमें भगवान् शिवके सम्बन्धमें कथित है। एक-एक अक्षर मानो औपनिषद ब्रह्मका वाचक है। कुछ उदाहरण लीजिये। शिवपुराणकी वायवीय-संहिताके पूर्वखण्डमें भगवान् वायुदेवने महेश्वर श्रीशिवका स्वरूप-वर्णन करते हुए कहा है—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्तान्ते संचुकोच यः॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः।
तथैव विश्वतो बाहुर्विश्वतः पादसंयुतः॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा॥
हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम्।
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तममृतं ध्रुवम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् संस्थितं प्रभुम्॥
अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः।
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत्॥
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥
सर्वतः पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत्॥

अचक्षुरपि यः पश्येदकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्॥
अणोरणीयान् महतो महीयानयमव्ययः।
गुहायां निहितश्चापि जन्तोरथ महेश्वरः॥
तमकर्तुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम्।
धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति॥
वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम्।
निरोधं जन्मनो यस्य वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥

(शिवपु०, वा० सं०, पू० ख० ६। १४—२६)

सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्‌की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं। स्वर्ग और पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाले वे ही एक महेश्वर देव हैं। वे ही सब देवताओंको उत्पन्न तथा पालन करते हैं। वे ही सब देवताओंमें सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं। वे ही सबसे अधिक श्रेष्ठ रुद्रदेव महान् ऋषि हैं। मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी अंगकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अज्ञानान्धकारसे परे विराजमान हैं। इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे उत्पन्न सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह समस्त जगत् परिपूर्ण है। ये भगवान् सब ओर मुख, सिर और कण्ठवाले हैं। सब प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करते हैं, सर्वव्यापी हैं, अतएव वे भगवान् शिव सर्वगत हैं। इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें

सबको व्याप्त करके स्थित हैं। ये सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। ये सबके स्वामी, शासक और शरणदाता सुहृद् हैं। ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्‌से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदय-गुफामें निवास करते हैं। जो मनुष्य सबकी रचना करनेवाले परमेश्वरकी कृपासे इन यज्ञस्वरूप संकल्परहित अत्यन्त महिमासे युक्त परमेश्वरको देख लेता है, वह सब प्रकारके शोकसे रहित हो जाता है। ब्रह्मवादी पुरुष जिनके जन्मका अभाव बतलाते हैं, उन सर्वव्यापी, सर्वत्र विद्यमान, जरा-मृत्यु आदिसे रहित, पुराणपुरुष परमेश्वरको मैं जानता हूँ। वायु देवता आगे फिर कहते हैं—

द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ।
एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति॥
छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो यद्भूतं भव्यमेव च।
मायी विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः॥
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्॥

× × × ×

परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः।
सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात् परात्परः॥
तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम्।
देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे॥
कालादिभिः परो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्तते।
धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ता-
द्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम्॥
न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते।
न तत्समोऽधिकश्चापि कश्चिज्जगति दृश्यते॥
परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता।
ज्ञानं बलं क्रिया चैव येभ्यो विश्वमिदं कृतम्॥
न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिङ्गं न चेशिता।
कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः॥
न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन।
न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः॥
स एकः सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः।
सर्वभूतान्तरात्मा च धर्माध्यक्षः स कथ्यते॥
सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः।
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम्॥
नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः।
एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति॥
सांख्ययोगाधिगम्यं यत् कारणं जगतां पतिम्।
ज्ञात्वा देवं पशुः पाशः सर्वैरेव विमुच्यते।
विश्वकृद्विश्ववित् स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी॥
प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः।
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत् स्वयम्॥
यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः।
मुमुक्षुरस्मात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम्॥

(शिवपु०, वा० सं०, पू० ख० ४। ६-७, ९-१०, ६। ५५—६७)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं यस्य वै विद्वान् न बिभेति कुतश्चन॥

(शिवपु०, वा० सं०, पू० ख० ३। १)

यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्रमाः।
यस्य भासा विभातीदमित्येषां शाश्वती श्रुतिः॥

(शिवपु०, वा० सं०, पू० ख० ३। १४)

'एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर)-का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है।'

'छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भू, वर्तमान और सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रचता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है। प्रकृतिको ही माया समझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है।'

'वे ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है। वे सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुतिके योग्य हैं, प्रजाओंके पालक, देवताओंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं। अपने हृदयमें विराजमान उन परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं। जो काल आदिसे परे हैं, जिनसे यह समस्त प्रपंच प्रकट होता है, जो धर्मके पालक, पापके नाशक, भोगोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके धाम हैं, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति हैं, उन भुवनेश्वरोंके भी ईश्वर महादेवको हम सबसे परे जानते हैं। उनके शरीर, रूप, कार्य और इन्द्रिय तथा मनरूपी कारण

नहीं है। उनके समान और उनसे अधिक भी इस जगत्‌में कोई नहीं दिखायी देता। ज्ञान, बल और क्रियारूप उनकी स्वाभाविक पराशक्ति वेदोंमें नाना प्रकारकी सुनी गयी है। उन्हीं शक्तियोंसे इस सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है। उसका न कोई स्वामी है, न कोई निश्चित चिह्न है, न उसपर किसीका शासन है। वह समस्त कारणोंका कारण है एवं उनका भी अधीश्वर है। उसका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके माया-मलादि हेतु ही हैं। वह एक ही सम्पूर्ण विश्वमें समस्त भूतोंमें गुहारूपसे व्याप्त है। वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है। वह सब भूतोंके अंदर बसा हुआ, सबका द्रष्टा, साक्षी, चेतन और निर्गुण है। वह एक है, वशी है, अनेकों विश्वात्मा निष्क्रिय पुरुषोंको वशमें रखनेवाला है। वह नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन है। वह एक है, कामनारहित है और बहुतोंकी कामना पूर्ण करनेवाला ईश्वर है। सांख्य और योग अर्थात् ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगसे प्राप्त करनेयोग्य सबके कारणरूप उन जगदीश्वर परमदेवको जानकर जीव सम्पूर्ण पाशों (बन्धनों)-से मुक्त हो जाता है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्रष्टा, सर्वज्ञ, स्वयं ही अपने प्राकट्यके हेतु, ज्ञानस्वरूप, कालके भी स्रष्टा, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, प्रकृति और जीवात्माके स्वामी, समस्त गुणोंके शासक तथा संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जिन परमदेवने सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और स्वयं उन्हें वेदोंका ज्ञान दिया, अपने स्वरूपविषयक बुद्धिको प्रसन्न (विकसित) करनेवाले उन परमेश्वर शिवको जानकर मैं इस संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये उनकी शरणमें जाता हूँ।'

'जिन्हें न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करनेवाला पुरुष कभी भी किसीसे नहीं डरता।'

'जिसके पास न तो यह बिजली प्रकाश करती है, न सूर्य और चन्द्रमा ही अपनी प्रभा फैलाते हैं, उन्हींके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। ऐसा सनातनी श्रुतिका कथन है।'

इस प्रकारके स्वरूप-व्याख्यानसे शिवपुराण भरा है। इससे सिद्ध है कि शिवपुराणके शिव परतम परात्पर वही ब्रह्म है, जो विष्णुपुराणके महाविष्णु, श्रीमद्भागवतके महाविष्णु या श्रीकृष्ण हैं, रामायणके श्रीराम हैं, देवीभागवतकी दुर्गा हैं। वस्तुतः एक ही ब्रह्म अनादिकालसे ही विभिन्न नाम-रूपोंसे अभिव्यक्त है **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'** एक ही तत्त्वस्वरूप परात्पर सर्वलोकमहेश्वर, सर्वगत, सर्वातीत प्रभुको ऋषियोंने विभिन्न रूपोंमें जाना, देखा और कहा है। शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेश एक ही परमात्माके पाँच सगुणरूप हैं। महाप्रलयके समय वे एकमात्र ब्रह्म ही रह जाते हैं। फिर कल्पके प्रारम्भमें उन्हीं एक ब्रह्मकी शक्तिके द्वारा उनके किसी रूपसे शक्तिका तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—इन त्रिदेवोंका प्राकट्य होता है। यह कभी 'शिव' रूपसे होता है, कभी विष्णु, शक्ति या अन्य किसी रूपसे। वैसे तत्त्वतः या वस्तुतः इनमें कोई भी भेद नहीं है।

भगवान् शिव और विष्णुमें तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रमें अभिन्नता

भगवान् हरि-हर तो सर्वथा एक हैं ही। लीलामात्रके लिये कहीं भगवान् हर-रूपसे उपास्य एवं हरि-रूपसे उपासक होते हैं, तो कहीं हरि-रूपसे उपास्य और हर-रूपसे उपासक होते हैं।

उपासनाका तत्त्व बतलानेके लिये ही वे परस्पर उपास्य-उपासककी लीला करते हैं। वस्तुतः—

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम्।
एकस्यैव नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात्॥

'हरि और हरमें मूलतः भेद नहीं है। प्रत्ययमें ही रूपका भेद होता है। नाटकमें अभिनेता विभिन्न रूप धारण करता है, पर वस्तुतः वह जो है, वही रहता है।' बृहद्धर्मपुराण (पूर्वखण्ड अध्याय ९। १०) में एक बड़ी सुन्दर कथा है—

एक बार भगवान् नारायण अपने दिव्य वैकुण्ठलोकमें सोये हुए स्वप्न देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिसे युक्त, त्रिशूल-डमरूधारी, स्वर्णाभूषणोंसे विभूषित, सुरेन्द्रवन्दित, अणिमादि सिद्धियोंके द्वारा सुसेवित त्रिलोचन भगवान् शिव प्रेम तथा आनन्दातिरेकसे उन्मत्त हो उनके सामने नृत्य कर रहे हैं। उन्हें इस प्रकार नृत्य-परायण देखकर भगवान् विष्णु हर्षोत्फुल्ल हो सहसा उठकर शय्यापर बैठ गये और ध्यान करने लगे। उन्हें यों विराजित देखकर भगवती लक्ष्मीजीने उनसे इस प्रकार उठ-बैठनेका कारण पूछा, पर वे बोले नहीं। कुछ समय पश्चात् बाह्यभावमें आकर उन्होंने कहा—'देवि! मैंने अभी स्वप्नमें अपूर्व आनन्द और मनोहर शोभासे संयुक्त श्रीमहेश्वरके दर्शन किये हैं। इससे ज्ञात होता है श्रीशंकरने मुझे स्मरण किया है, अतः चलो, हमलोग कैलास जाकर भगवान् महादेवके दर्शन करें।'

यों कहकर वे दोनों तुरंत कैलासकी ओर चल दिये। कुछ ही दूर गये होंगे कि उन्हें सामनेसे भगवती उमाके साथ स्वयं शिव आते दिखायी दिये। मानो घर बैठे ही निधि मिल गयी। समीप पहुँचते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेमसे मिले।

प्रेम और प्रेमानन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। दोनों ही पुलकित-कलेवर हो परस्पर लिपट गये। दोनोंके ही सुन्दर नेत्रोंसे आनन्दाश्रुका प्रवाह बह चला। बातचीत होनेपर पता लगा कि भगवान् शिवको भी रात्रिमें स्वप्न हुआ, जिसमें उन्होंने विष्णुभगवान्‌को इसी रूपमें देखा और फिर उनसे मिलने चल दिये।

अब दोनों ही परस्पर अपने यहाँ लिवा ले जानेके लिये आग्रह करने लगे। भगवान् शंकरसे नारायणने कहा—'वैकुण्ठ पधारिये' और भगवान् शम्भुने उन्हें कैलास-प्रस्थान करनेके लिये कहा। दोनोंके ही आग्रह अलौकिक प्रेमसे परिपूर्ण थे, इसलिये यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कहाँ चला जाय। इसी बीच वीणा बजाते, हरि-गुण गाते देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। नारदजीको आये देखकर दोनोंने ही उनसे यह निर्णय कर देनेके लिये अनुरोध किया कि कहाँ जाना चाहिये। नारदजी तो प्रेमी हैं ही, वे श्रीहरि-हरके इस अलौकिक मिलन-प्रेमको देखकर मुग्ध हो गये और दोनोंका गुणगान करने लगे। अब निर्णय कौन करे। अन्तमें इसका भार भगवती उमाको सौंपा गया—वे जो कह दें, वैसा ही किया जाय। कुछ देर तो भगवती उमा चुप रहीं फिर दोनोंको लक्ष्य करके बोलीं—

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम्॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन आत्मैकोऽन्यतनुर्मिथः॥
या प्रीतिर्दर्शिता देव युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन भार्ये आवां पृथङ् न वाम्॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन द्वेष एकस्य स द्वयोः॥

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन अपूजैकस्य च द्वयोः॥

'हे नाथ! हे केशव! आपलोगोंके इस प्रकारके विलक्षण अनन्य और अचल प्रेमको देखकर यही निश्चय होता है कि आपके निवासस्थान पृथक् नहीं हैं। जो कैलास है, वही वैकुण्ठ है और जो वैकुण्ठ है, वही कैलास है। केवल नाममें ही भेद है। मुझे तो यह लगता है कि आपका आत्मा भी एक है, केवल शरीरसे आप दो दिखायी देते हैं। मुझे तो यह दीख रहा है कि आपकी भार्याएँ भी एक ही हैं, दो नहीं। जो मैं हूँ, वही ये श्रीलक्ष्मी हैं और जो श्रीलक्ष्मी हैं, वही मैं हूँ। अतः आपलोगोंमेंसे जो एकके प्रति द्वेष करता है, वह दूसरेके प्रति ही करता है और जो एककी पूजा करता है, वह स्वाभाविक ही दूसरेकी भी करता है एवं जो एकको अपूज्य मानता है, वह दूसरेको भी अपूज्य ही मानता है।'

'मेरा तो यह निश्चय है कि आप दोनोंमें जो भेद मानता है, उसका निश्चय ही घोर पतन होता है। मैं देखती हूँ कि आपलोग मुझे इस प्रसंगमें मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवंचना कर रहे हैं, मुझे भुलावा दे रहे हैं या विनोद कर रहे हैं। मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप दोनों ही अपने-अपने लोकको पधारें। श्रीविष्णु यह समझें हम शिवरूपसे वैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूपसे कैलासको प्रस्थान कर रहे हैं।' भगवती उमाके इस निर्णयसे दोनों ही परम प्रसन्न होकर भगवतीकी प्रशंसा करते हुए परस्पर प्रणामालिंगन करके अपने-अपने लोकको पधार गये।

वैकुण्ठ पहुँचनेके बाद भगवान् नारायणने श्रीलक्ष्मीजीसे कहा—

स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः।
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव॥

'वस्तुतः मैं ही जनार्दन विष्णु हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग-अलग दो घड़ोंमें रखे हुए जलकी भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है।'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामसे भगवान् श्रीशिवका सम्बन्ध-निरूपण करते हुए बहुत ठीक कहा है—

सेवक स्वामि सखा सिय पी के।

भगवान् महादेव कभी श्रीरामके साथ सेवककी लीला करते हैं, कभी स्वामीकी और कभी सखाकी। कभी वे उन्हें पूजते हैं, कभी वे। तुलसीदासजीके भगवान् राम और सीता शिवपुराणके भगवान् शिव और शक्तिकी भाँति ही परात्पर परब्रह्म हैं। उन्हींसे—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

भगवान् शिव और भगवान् विष्णुकी भिन्नताके प्रसंग प्रायः सभी पुराणोंमें हैं और इनमें भेद माननेवालोंका नरकगामी होना बतलाया गया है। यहाँ केवल दो उदाहरण दिये जाते हैं—

पद्मपुराणमें भगवान् परात्पर रामरूपसे भगवान् शिवके प्रति कहते हैं—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्त्रकम्॥

ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिंकराः॥

(पद्म०, पाताल० २८। २१—२३)

'आप शिव मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें हूँ। हम दोनोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। मूढ़ तथा दुर्बुद्धि लोग ही हममें भेद मानते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, हममें भेदभावना करनेवाले मनुष्य हजार कल्पोंतक कुम्भीपाकादि नरकोंमें यन्त्रणा भोगते हैं। जो धार्मिक पुरुष आपके भक्त हैं, वे सदा ही मेरे भक्त हैं और जो मेरे भक्त हैं वे महान् भक्तिसे आपको ही प्रणाम करते हैं।'

शिवपुराणमें परात्पर परतम भगवान् शिवरूपसे कहते हैं—

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम॥

(९। ५५-५६)

रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन॥

(१०। ६)

रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति।
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति॥

(१०। ८)

नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात् पुरुषोत्तम।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥

(१०। ९)

त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम्॥

(१०। १४)

(शिव०, रु० सृ०)

'मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मुझे विशेष प्रिय है। हे विष्णो! आप रुद्रके ध्येय हैं और रुद्र आपके ध्येय हैं। आपमें और रुद्रमें तनिक भी अन्तर नहीं है। जो मनुष्य रुद्रका भक्त होकर आपकी निन्दा करेगा, उसका सारा पुण्य तुरंत भस्म हो जायगा। पुरुषोत्तम विष्णो! आपसे द्वेष करनेके कारण मेरी आज्ञासे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा, यह बात सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। जो आपकी शरणमें आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरणमें आ गया। जो मुझमें और आपमें भेद जानता है, वह अवश्य ही नरकमें गिरता है।'

ये ही परतम परात्पर ब्रह्म कल्पके आदिमें (सदाशिव, महाविष्णु, राम, कृष्ण, शक्ति आदि) अपने किसी रूपसे अपने ही अंश त्रिदेवोंको (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रको) प्रकट करके अखिल विश्वकी सृष्टि, पालन और संहारकी लीला करते हैं। इस सिद्धान्तका प्रायः सभी शैव और वैष्णवपुराणोंमें प्रतिपादन किया गया है और सर्वत्र ही परतम परात्पर ब्रह्मसे प्रकट उन तीनों देवोंकी और उनसे परतम परात्पर ब्रह्मकी अभिन्नता बतलायी गयी है।

शिवपुराणमें इनका प्राकट्य परात्पर ब्रह्म भगवान् शिवसे बतलाया गया है। शिवके दक्षिण भागसे ब्रह्माका, वाम भागसे विष्णुका और हृदयसे रुद्रका प्राकट्य हुआ है। इन्हीं शिवके आदेशसे फिर ब्रह्माका भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे और रुद्रका ब्रह्माके मस्तकसे प्रकट होना बतलाया गया है। इन्हीं सदाशिवसे पराशक्तिका प्राकट्य और फिर उनसे समस्त दैवी शक्तियोंका उदय होना बतलाया है। देवीभागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराणमें परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके दक्षिण

भागसे भगवान् विष्णुका, वामभागसे भगवान् महेश्वरका और नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रकट होना बतलाया है और उन्हींसे आदिशक्तिका प्राकट्य बतलाया गया है। यह सब लीलावैचित्र्य है। तत्त्व एक ही है। शिवपुराणमें परात्पर भगवान् शिवके परात्पर निर्गुण स्वरूपको 'सदाशिव', सगुण स्वरूपको 'महेश्वर', विश्वका सृजन करनेवाले स्वरूपको 'ब्रह्मा', पालन करनेवाले स्वरूपको 'विष्णु' और संहार करनेवाले स्वरूपको 'रुद्र' कहा गया है।

श्रीमद्भागवतमें दक्षसे स्वयं भगवान् विष्णु कहते हैं—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीयं केवले परमात्मनि।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥
यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

(४।७।५०—५४)

'जगत्का परम कारण मैं ही ब्रह्मा और शिव हूँ। मैं ही सबका आत्मा, ईश्वर, उपद्रष्टा, स्वयंप्रकाश और भेदरहित हूँ। विप्रवर! त्रिगुणमयी अपनी मायाके द्वारा जब-जब मैं सृजन, पालन और संहारकी लीला करता हूँ, तब-तब मैं ही उस लीला-कार्यके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—इन नामोंको धारण करता हूँ। ऐसे मुझ केवल अद्वितीय विशुद्ध परमात्मासे अज्ञानी लोग ही ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको

विभिन्न रूपसे देखते हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर और हाथ-पैर आदि भुजाओंमें ये मुझसे भिन्न हैं—ऐसी बुद्धि नहीं करता वैसे ही मत्परायण मेरा भक्त किसी प्राणीको मुझसे भिन्न नहीं देखता। ब्रह्मन्! हम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनों स्वरूपतः एक ही हैं। हम सर्वभूतरूप हैं। अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है।' पद्मपुराण (पातालखण्ड, अ० २८)-में भगवान् शिव परात्पर भगवान्के रामरूपसे कहते हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधारूपं गृह्णासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥

'आप प्रकृतिसे पर साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकला ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप होकर विश्वका सृजन, पालन और संहार करते हैं। आप रूपरहित होते हुए भी विश्वके परम कारण हैं। आप एक ही लीलासे त्रिविध रूप ग्रहण करते हैं—विश्वकी सृष्टिके समय ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय अपने प्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और जगत्के प्रलयके समय साक्षात् मुझ शिवका रूप ले लेते हैं।'

शिवपुराणमें ही भगवान् शंकरके द्वारा सीतान्वेषणमें तत्पर दशरथपुत्रके रूपमें भगवान् श्रीरामको प्रणाम किये जानेकी कथा इस प्रकार आती है—

एक समयकी बात है, तीनों लोकोंमें विचरनेवाले लीला विशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ नन्दीपर आरूढ़ हो इस

भूतलपर भ्रमण कर रहे थे। घूमते-घूमते वे दण्डकारण्यमें आये। वहाँ उन्होंने लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा बलपूर्वक हरी गयी अपनी प्यारी पत्नी सीताकी खोज कर रहे थे। वे 'हा सीते!' ऐसा उच्चस्वरसे पुकारते, जहाँ-तहाँ देखते और बारम्बार रोते थे। उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था। लक्ष्मणके साथ वनमें भ्रमण कर रहे थे और उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। उस समय उदारचेता पूर्णकाम भगवान् शंकरने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये। भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामके सामने अपनेको प्रकट नहीं किया। भगवान् शिवकी मोहमें डालनेवाली ऐसी लीला देख सतीको बड़ा विस्मय हुआ। वे उनकी मायासे मोहित हो उनसे इस प्रकार बोलीं।

सतीने कहा—देवदेव सर्वेश! परब्रह्म परमेश्वर! आप ही सबके द्वारा प्रणाम करनेयोग्य हैं, क्योंकि वेदान्त-शास्त्रके द्वारा यत्नपूर्वक जाननेयोग्य निर्विकार परम प्रभु आप ही हैं। नाथ! ये दोनों पुरुष कौन हैं? इनकी आकृति विरहव्यथासे व्याकुल दिखायी देती है। ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरते हुए क्लेशके भागी और दीन हो रहे हैं। इनमें जो ज्येष्ठ है, उसकी अंगकान्ति नील-कमलके समान श्याम है। उसे देखकर किस कारणसे आप आनन्दमग्न हो उठे थे? आपका चित्त क्यों अत्यन्त प्रसन्न हो गया था? स्वामिन्! कल्याणकारी शिव! आप मेरे संशयको दूर कीजिये।

इसपर भगवान् शिवने कहा—देवि! ये दोनों भाई वीरोंद्वारा सम्मानित हैं। इनके नाम हैं—श्रीराम और लक्ष्मण! इनका प्राकट्य सूर्यवंशमें हुआ है। ये दोनों राजा दशरथके विद्वान् पुत्र

हैं। इनमें जो गोरे रंगके छोटे बन्धु हैं, वे साक्षात् शेषके अंश हैं। उनका नाम लक्ष्मण है। इनके बड़े भैयाका नाम श्रीराम है। इनके रूपमें उपद्रवरहित भगवान् विष्णु ही अपने सम्पूर्ण अंशसे प्रकट हुए हैं। ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके कल्याणके लिये इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं—

ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः।
अवतीर्णः क्षितौ साधुरक्षणाय भवाय नः॥

(श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें इसीके आधारपर सती-त्यागकी सुन्दर कथा लिखी है)।

महाभारतकी गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही अपनेको परात्पर ब्रह्म तथा सबका आदि प्रकटकर्ता बतलाया है।

किसी-किसी कल्पमें जीव भी ब्रह्माकी कोटिमें पहुँच जाते हैं, ऐसा माना जाता है। परंतु त्रिदेवगत ये ब्रह्मा भगवद्रूप हैं और इनके लिये भी वही बात कही गयी है, जो भगवान् शिव और भगवान् विष्णुके लिये कही गयी है।

देवीपुराणमें ब्रह्माजीका स्तवन करते हुए कहा गया है—

जय देवाधिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय कारणाय महात्मने॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोगुणगणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्।

(अध्याय ८३)

'देवाधिदेव! ब्रह्मदेव! आपकी जय हो। आप अव्यक्त-व्यक्त-स्वरूप, त्रिगुणमय, सर्वकारण, श्रेष्ठबुद्धि एवं विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप तीनों भावोंसे भावित हैं। आप रजोगुणसे आविष्ट होकर

ब्रह्मारूपसे इस चराचर जगत्का सृजन करते हैं, सत्त्वगुणका प्रयोग करके विष्णुरूपसे पालन करते हैं और तमरूप होकर अखिल विश्वका संहार करते हैं।'

विष्णुपुराणमें महर्षि पराशर परतम परात्पर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥

(१।२।१—५)

'विकाररहित, नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप, सर्वव्यापी, सर्वविजयी, विष्णु, हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), हरि, शंकर (रुद्र), वासुदेव, मायासे तारनेवाले, विश्वकी सृष्टि, स्थिति और अन्त करनेवाले, एक तथा अनेकरूप, स्थूल तथा सूक्ष्मरूप, अव्यक्त-व्यक्तस्वरूप और मुक्तिप्रदाता भगवान् विष्णुके प्रति मेरा बारंबार नमस्कार है। इस जगत्का सृजन, पालन और विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके मूल कारण जगन्मय परमात्मा विष्णुभगवान्को मेरा नमस्कार है। विश्वके आधार, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, समस्त भूतोंके अंदर स्थित अच्युत पुरुषोत्तमभगवान्को मेरा प्रणाम है।'

निन्दनीय न हों, ऐसे ही पुरुषको उसके पूछे हुए तत्त्वका उपदेश दे जो आहार-निद्रा, भय-मैथुन आदि पशुधर्मसे संयुक्त है, ऐसे अधमको उपदेश न दे। प्रश्नकर्तामें श्रुति आदि प्रमाणोंके द्वारा निर्णय किये हुए तत्त्व-पदार्थको ग्रहण करनेकी योग्यता है या नहीं, इसका विचार किये बिना ही जो वक्ता उसे उपदेश देता है, उसको ज्ञानीजन इस लोकमें महान् मूढ़ बतलाते हैं।'

इसीलिये महर्षि वसिष्ठ आदर्श गुरु हैं तथा भगवान् रामचन्द्र आदर्श शिष्य हैं। गुरु-शिष्यको इन्हींका अनुसरण करनेवाले होना चाहिये।

मुमुक्षुके जीवनमें सहज ही शास्त्रानुकूल आचरण, संयम, सत्य, शम, दम, विषय, वैराग्य और मोक्षकी तीव्र इच्छा होनी ही चाहिये। महर्षि वसिष्ठ तो शम, दम, सत्यादि गुणोंसे रहित मनुष्यको मनुष्य ही नहीं मानते। वे कहते हैं—

येषां गुणेष्वसंतोषो रागो येषां श्रुतं प्रति।
सत्यव्यसनिनो ये च ते नराः पशवोऽपरे॥

(स्थितिप्रकरण ३२। ४२)

'जिनका (इन शम-दमादि) गुणोंके विषयमें संतोष नहीं है (इनको जो बढ़ाना ही चाहते हैं), जिनका शास्त्रके प्रति अनुराग है तथा जिनको सत्यके आचरणका ही व्यसन है, वे ही वास्तवमें मनुष्य हैं, दूसरे तो पशु ही हैं।'

अतएव सच्चे कल्याणकामी पुरुषोंको इन शास्त्रानुमोदित गुणोंसे सम्पन्न होकर परमात्माके यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके लिये पूर्णरूपसे साधनाभ्यास करना चाहिये। इसके लिये सच्चे महात्मा पुरुषोंका संग तथा सेवन (उनके कथनानुसार जीवन-निर्माण) आवश्यक है। इसके बिना कोरे तप, तीर्थ या शास्त्राध्ययनसे सफलता नहीं मिलती। पर महात्मा सच्चे होने चाहिये। और कुछ न हो तो इतना अवश्य देख ले कि हम जिनका संग करते हैं, उनकी संगतिसे दुर्गुणों-

शिवपुराणमें स्थान-स्थानपर इसी सिद्धान्तका विविध प्रसंगोंमें विविध भाँतिसे उल्लेख है। कुछ उदाहरण देखिये! एक स्थानपर शिवके चतुर्व्यूहका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि गुणत्रयसे अतीत परात्पर भगवान् सदाशिव चारों व्यूहोंके रूपमें अभिव्यक्त हैं—ब्रह्मा, काल, रुद्र और विष्णु। वे स्वयं सबके आधार और शक्तिके भी मूल हैं। कहा गया है—

देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः।
सकलः सकलाधारशक्तेरुत्पत्तिकारणम्॥
सोऽयमात्मात्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च।
लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः॥
यः सर्वस्मात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः।
स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः॥
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा।
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम्॥

(शिवपु०, वा० सं०, पू० ख० १०। ९—१२)

'चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट देवाधिदेव महेश्वर तीनों गुणोंसे अतीत हैं, वे सर्वमय हैं, सबकी आधाररूपा शक्तिकी भी उत्पत्तिके कारण हैं। वे ही तीनों गुणोंको (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रके) विग्रहरूपमें धारण करनेवाले उनके आत्मरूप हैं, प्रकृति और पुरुष भी उन्हींके शरीर हैं और वे उन दोनोंके भी आत्मा हैं। लीलासे ही—खेल-ही-खेलमें वे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना कर देते हैं। जगन्नियन्ता ईश्वररूपसे भी वे ही स्थित हैं। जो सबसे परे, नित्य, निष्कल—अखण्ड अथवा कलना—कल्पनामें न आनेयोग्य परमेश्वर हैं, वे ही सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंचके आधार, उसके आत्मा तथा अधिष्ठान भी हैं। सुतरां भगवान् सदाशिव ही महेश्वर हैं, वे ही प्रकृति-पुरुष भी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी वे ही हैं। वस्तुतः सब कुछ भगवान् सदाशिव ही हैं।'

परात्पर भगवान् शिव भगवान् विष्णु और ब्रह्मासे कहते हैं—

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ताहं सगुणोऽगुणः।
परब्रह्म निर्विकारः सच्चिदानन्दलक्षणः॥ २७॥
त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽहं सदा हरे॥ २८॥
सुवर्णस्य यथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति।
अलंकृतिकृते देव नामभेदो न वस्तुतः॥ ३५॥
यथैकस्या मृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः।
कारणस्यैव कार्ये च संनिधानं निदर्शनम्॥ ३६॥
वस्तुवत् सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम।
अहं भवानजश्चैव रुद्रो योऽयं भविष्यति॥ ३८॥
एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै बन्धनं भवेत्।
तथापि च मदीयं हि शिवरूपं सनातनम्॥ ३९॥
मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्।
एवं ज्ञात्वा सदा ध्येयं मनसा चैव तत्त्वतः॥ ४०॥

(शिव०, रुद्र० सृ०, अ० ९)

'विष्णो! मैं ही सृष्टि, पालन और प्रलयका कर्ता हूँ। मैं ही सगुण-निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। हे हरे! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और हर (रुद्र) नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। वस्तुतः मैं सदा निष्कल हूँ। हे देव! जैसे एक ही सुवर्णके अनेक अलंकार बनते हैं, उनमें नाम तथा आकृतिका भेद है, वस्तुतः कोई भेद नहीं है। जैसे मिट्टीके विभिन्न प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तवमें कोई भेद नहीं है, सब मिट्टी ही है। कार्यके रूपमें कारण ही रहता है। यही दृष्टान्त पर्याप्त है। अतः सबको

वस्तुके समान शिवरूप ही मानना चाहिये, यह मेरा मत है। मैं, आप और जो रुद्र प्रकट होंगे—सब एकरूप ही हैं। इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा। तथापि मेरा परात्पर शिवरूप ही सनातन है। वही सदा सब रूपोंका मूलभूत कहा गया है। यह सत्य ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।'

विभिन्न कल्पोंमें साक्षात् परतम परात्पर महेश्वरके विभिन्न स्वरूपोंसे त्रिदेवोंका प्राकट्य होता है और विभिन्न प्रसंगोंपर परस्पर एक-दूसरेका स्तवन किया जाता है। इससे न तो उनके मूल वास्तव रूपमें कोई भेद आता है और न कोई छोटा-बड़ा ही होता है। इस बातको भी शिवपुराणमें स्पष्टरूपसे स्वीकार किया गया है—

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षान्महेश्वरात्।
चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः॥ १३॥
परमैश्वर्यसंयुक्ताः परमेश्वरभाविताः।
तच्छक्त्याधिष्ठिता नित्यं तत्कार्यकरणक्षमाः॥ १४॥
पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु।
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे तथा॥ १५॥
लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादं परमेष्ठिनः।
ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत्॥ १७॥
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः।
विष्णुश्च भगवान् रुद्रं ब्रह्माणमसृजत्पुनः॥ १८॥
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः।
एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ १९॥
परस्परेण जायन्ते परस्परहितैषिणः।
तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः॥ २०॥

(शिवपु०, वा० सं०, पू० ख० अ० १३)

'ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों ही कारणात्मा हैं। वे क्रमशः चराचर जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहारके हेतु हैं और साक्षात् महेश्वर (परात्पर परतम भगवान्)-से प्रकट हैं। उनमें परम ऐश्वर्य विद्यमान है। वे परमेश्वरसे भावित और उनकी शक्तिसे अधिष्ठित हो नित्य उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। पूर्वकालमें पिता महेश्वरने ही उन तीनोंको तीन कार्योंमें नियुक्त किया था। ब्रह्माकी सृष्टिकार्यमें, विष्णुकी पालनकार्यमें और रुद्रकी संहारकार्यमें नियुक्ति हुई थी। कल्पान्तरमें परमेश्वर शिवके प्रसादसे रुद्रदेवने ब्रह्मा और नारायणको प्रकट किया था। इसी प्रकार दूसरे कल्पमें जगन्मय ब्रह्माने रुद्र तथा विष्णुको प्रकट किया। फिर कल्पान्तरमें भगवान् विष्णुने रुद्र तथा ब्रह्माको प्रकट किया। इसी प्रकार पुनः ब्रह्माने नारायणको और रुद्रदेवने ब्रह्माको प्रकट किया। इस तरह विभिन्न कल्पोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर परस्पर उत्पन्न होते और एक-दूसरेका हित चाहते हैं। उन-उन कल्पोंके वृत्तान्तको (किस रूपसे किसका प्राकट्य होता है, इस वर्णनको) लेकर महर्षिगण उनके (इसीके अनुसार उन-उन रूपोंके) प्रभावका वर्णन करते हैं।'

इसी हेतुसे कहीं किसीको बड़ा बतलाया गया है, कहीं किसीको। इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये।

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥
क्वचिद् ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद् रुद्रः प्रशस्यते।
नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचाश्च न संशयः॥

(शिवपु०, वा० सं०, पू० ख० २०। ६—८)

'ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) एक-दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक-दूसरेको धारण करते हैं, एक-दूसरेसे बढ़ते रहते हैं और एक-दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, तो कहीं विष्णुकी और कहीं रुद्रकी। इससे उनके ऐश्वर्यमें कोई अधिकता या न्यूनता नहीं आती। जो लोग क्रोधवश ऐसा कहते हैं कि 'अमुक श्रेष्ठ हैं, अमुक श्रेष्ठ नहीं हैं'—वे अगले जन्ममें राक्षस या पिशाच होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं।'

शिव और शक्तिमें अभिन्नता

इस प्रकार तीनों महान् देवताओंकी अभिन्नता और उनसे परात्पर परतम ब्रह्मकी (सदाशिव, महाविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्णकी) अभिन्नता सर्वसम्मत है। ये परात्पर ब्रह्म नित्य ही स्वरूपभूता परा-शक्तिसे सम्पन्न हैं। कभी वह शक्ति शक्तिमान्में छिपी निष्क्रिय रहती है, कभी प्रकट होकर क्रियाशीला बन जाती है। भगवान्ने गीतामें प्रकृतिको 'महद्योनि' और अपनेको 'बीजप्रद पिता' कहा है। वास्तवमें शक्ति और शक्तिमान्का नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है। इसीसे शिवपुराणमें भी कहा गया है—

एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।
न शिवेन विना शक्तिर्न च शक्त्या विना शिवः॥

(शिवपु०, वा० सं०, उत्तर० ४)

'इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान्को सदा एक-दूसरेकी अपेक्षा रहती है। न तो शिव (शक्तिमान्)-के बिना शक्ति रह सकती है और न शक्तिके बिना शिव ही रह सकते हैं।' शक्तिमान् न हों तो शक्ति कहाँ रहे और शक्ति न हो तो शक्तिमान्का अस्तित्व ही न हो। इसीसे 'इ' कार (शक्ति)-हीन शिवको 'शव' कहा जाता है।

एवं विज्ञाय मां देवाः स्वं स्वं गर्वं विहाय च।
भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम्॥

(शिवपु०, उ० सं० ४८। २७—३८)

'मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणवरूपिणी तथा युगलरूपधारिणी हूँ। मैं ही सब कुछ हूँ। मुझसे भिन्न कुछ भी पदार्थ नहीं है। मैं निराकार होकर भी साकार हूँ। सर्वतत्त्वस्वरूपा हूँ। मेरे गुण अतर्क्य हैं। मैं नित्यस्वरूपा तथा कार्यकारणरूपिणी हूँ। मैं ही कभी प्राणवल्लभा नारीका आकार धारण करती हूँ और कभी प्राणवल्लभ पुरुषका। कभी एक साथ स्त्री और पुरुष दोनों रूपोंमें (अर्धनारीश्वररूपमें) प्रकट होती हूँ। मैं सर्वरूपिणी ईश्वरी हूँ। मैं ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हूँ, मैं ही जगत्पालक अच्युत विष्णु हूँ और मैं ही संहारकर्ता रुद्र हूँ। सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली महामाया भी मैं ही हूँ। काली, लक्ष्मी और सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सभी कलाएँ भी मेरे ही अंशसे प्रकट हुई हैं। मेरे ही प्रभावसे तुम देवताओंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय प्राप्त की है। मुझ सर्वविजयिनीको न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेको सर्वेश्वर मान रहे हो। जैसे इन्द्रजाल करनेवाला सूत्रधार कठपुतलीको नचाता है, वैसे ही मैं ईश्वरी ही समस्त प्राणियोंको नचाती हूँ। मेरे भयसे हवा चलती है, मेरे भयसे अग्निदेव सबको जलाते हैं तथा मेरा भय मानकर ही लोकपालगण निरन्तर अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं। मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ और अपनी लीलासे ही कभी देवसमुदायको विजयी बनाती हूँ, कभी दैत्यसमूहको। मायासे अतीत जिस अविनाशी परात्पर धामका श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, वह मेरा ही रूप है। सगुण और निर्गुण—मेरे ये दो रूप माने गये हैं। इनमें प्रथम मायायुक्त है, दूसरा मायारहित। देवताओ!

ऐसा जानकर गर्वका त्याग करो और मुझ सनातनी प्रकृति (परात्परा शक्ति)-की प्रेमपूर्वक आराधना करो।'

परमात्मा शिवकी ये पराशक्ति सर्वेश्वर सदाशिवके अनुरूप ही समस्त अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न उनकी सहधर्मिणी हैं। इन शिवशक्तिकी ही सारी लीला है। यह अनन्त विश्व केवल शक्ति-शक्तिमान्का ही लीला-विस्तार है। जितने पुरुष हैं, सब शिव हैं और उनकी जो सहधर्मिणी जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब शक्तिरूपा हैं। इसी तत्त्वको दिखलाते हुए शिवपुराणमें कहा गया है—"शक्ति और शक्तिमान्से प्रकट होनेके कारण यह जगत् 'शाक्त' और 'शैव' कहा गया है। जैसे माता-पिताके बिना पुत्रका जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानीके बिना इस चराचर जगत्की उत्पत्ति नहीं होती। स्त्री और पुरुषसे प्रकट हुआ जगत् स्त्री और पुरुषरूप ही है। यह स्त्री और पुरुषकी विभूति है, अतः स्त्री और पुरुषसे अधिष्ठित है। इनमें शक्तिमान् पुरुषरूप शिव तो 'परमात्मा' कहे गये हैं और स्त्रीरूपिणी शिवा उनकी 'पराशक्ति'। शिव सदाशिव कहे गये हैं और शिवा मनोन्मनी। शिवको महेश्वर जानना चाहिये और शिवा माया कहलाती हैं। परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति। महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी वल्लभा शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं, तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शिव भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा। कामनाशन शिव महेन्द्र हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा शची। महादेवजी अग्नि हैं और उनकी अर्धांगिनी उमा स्वाहा। भगवान् त्रिलोचन यम हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा यमप्रिया। भगवान् शंकर निर्ऋति हैं और पार्वती नैर्ऋती।

भगवान् रुद्र वरुण हैं और पार्वती वारुणी। चन्द्रशेखर शिव वायु हैं और पार्वती वायुप्रिया शिवा। शिव यक्ष हैं और पार्वती ऋद्धि। चन्द्रार्धशेखर शिव चन्द्रमा हैं और रुद्रवल्लभा उमा रोहिणी। परमेश्वर शिव ईशान हैं और परमेश्वरी शिवा आर्या। नागराज अनन्तको वलयरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शंकर अनन्त हैं और उनकी वल्लभा शिवा अनन्ता। कालशत्रु शिव कालाग्नि रुद्र हैं और काली कालान्तकप्रिया हैं। जिनका दूसरा नाम पुरुष है, ऐसे स्वायम्भुव मनुके रूपमें साक्षात् शम्भु ही हैं और शिवप्रिया उमा शतरूपा हैं। साक्षात् महादेव दक्ष हैं और परमेश्वरी पार्वती प्रसूति। भगवान् भव रुचि हैं और भवानीको ही विद्वान् पुरुष आकूति कहते हैं। महादेवजी भृगु हैं और पार्वती ख्याति। भगवान् रुद्र मरीचि हैं और शिववल्लभा सम्भूति। भगवान् गंगाधर अंगिरा हैं और साक्षात् उमा स्मृति। चन्द्रमौलि पुलस्त्य हैं और पार्वती प्रीति। त्रिपुरनाशक शिव पुलह हैं और पार्वती ही उनकी प्रिया हैं। यज्ञविध्वंसी शिव क्रतु कहे गये हैं और उनकी प्रिया पार्वती संनति। भगवान् शिव अत्रि हैं और साक्षात् उमा अनसूया। कालहन्ता शिव कश्यप हैं और माहेश्वरी उमा देवमाता अदिति। कामनाशन शिव वसिष्ठ हैं और साक्षात् देवी पार्वती अरुन्धती। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं।

भगवान् शिव विषयी हैं और परमेश्वरी उमा विषय। जो कुछ सुननेमें आता है, वह सब उमाका रूप है और श्रोता साक्षात् भगवान् शंकर हैं। जिसके विषयमें प्रश्न या जिज्ञासा होती है, उस समस्त वस्तुसमुदायका रूप शंकरवल्लभा शिवा स्वयं धारण करती हैं तथा पूछनेवाला जो पुरुष है, वह

शक्तिमान्के स्वरूपकी अभिव्यक्ति उनकी शक्तिसे ही होती है। अतएव शक्तिका स्वरूप भी वही है, जो शक्तिमान्का है। शिवपुराणमें ही भगवती पराशक्ति उमादेवी इन्द्रादि देवोंसे स्वयं कहती हैं—

परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी।
अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन॥
निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी।
अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी॥
कदाचिद्दयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः।
कदाचिदुभयाकारा सर्वकाराहमीश्वरी॥
विरञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगद्धाताहमच्युतः।
रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी॥
कालिकाकमलावाणीमुखाः सर्वा हि शक्तयः।
मदंशादेव संजातास्तथेमाः सकलाः कलाः॥
मत्प्रभावाज्जिताः सर्वे युष्माभिर्दितिनन्दनाः।
तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः॥
यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः।
तथैव सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी॥
मद्भयाद् वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक्।
लोकपालाः प्रकुर्वन्ति स्वस्वकर्माण्यनारतम्॥
कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्मनाम्।
करोमि विजयं सम्यक् स्वतन्त्रा निजलीलया॥
अविनाशि परं धाम मायातीतं परात्परम्।
श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपं तु ममैव हि॥
सगुणं निर्गुणं चेति मद्रूपं द्विविधं मतम्।
मायाशबलितं चैकं द्वितीयं तदनाश्रितम्॥

बाल-चन्द्रशेखर विश्वात्मा शिवरूप ही है। भववल्लभा उमा ही द्रष्टव्य वस्तुओंका रूप धारण करती हैं और द्रष्टा पुरुषके रूपमें शशिखण्डमौलि भगवान् विश्वनाथ ही सब कुछ देखते हैं। सम्पूर्ण रसकी राशि महादेवी हैं और उस रसका आस्वादन करनेवाले मंगलमय महादेव हैं। प्रेमसमूह पार्वती हैं और प्रियतम विषभोजी शिव हैं। देवी महेश्वरी सदा मन्तव्य वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और विश्वात्मा महेश्वर महादेव उन वस्तुओंके मन्ता (मनन करनेवाले) हैं।

भववल्लभा पार्वती बोद्धव्य (जाननेयोग्य) वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और शिशु-शशि-शेखर भगवान् महादेव ही उन वस्तुओंके ज्ञाता हैं। सामर्थ्यशाली भगवान् पिनाकी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हैं और सबके प्राणोंकी स्थिति जलरूपिणी माता पार्वती हैं। त्रिपुरान्तक पशुपतिकी प्राणवल्लभा पार्वतीदेवी जब क्षेत्रका स्वरूप धारण करती हैं, तब कालके भी काल भगवान् महाकाल क्षेत्रज्ञरूपसे स्थित होते हैं। शूलधारी महादेवजी दिन हैं तो शूलपाणिप्रिया पार्वती रात्रि। कल्याणकारी महादेवजी आकाश हैं और शंकरप्रिया पार्वती पृथिवी। भगवान् महेश्वर समुद्र हैं तो गिरिराजकन्या शिवा उसकी तटभूमि हैं। वृषभध्वज महादेव वृक्ष हैं तो विश्वेश्वरप्रिया उमा उसपर फैलनेवाली लता हैं। भगवान् त्रिपुरनाशक महादेव सम्पूर्ण पुँल्लिंगरूपको स्वयं धारण करते हैं, और महादेवी मनोरमा देवी शिवा सारा स्त्रीलिंगरूप धारण करती हैं। शिववल्लभा शिवा समस्त शब्द-जालका रूप धारण करती हैं और बालेन्दुशेखर शिव सम्पूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थकी जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति तो विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं और वह-वह सारा पदार्थ साक्षात् महेश्वर हैं। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुण्यमय है तथा

जो मंगलरूप है, उस-उस वस्तुको महाभाग महात्माओंने उन्हीं दोनों शिव-पार्वतीके तेजसे विस्तारको प्राप्त हुई बताया है।

'जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका ही यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं, अतः सदा ही उन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये।'

(शिवपुराण, वायवीयसं०, उ० ख०, अध्याय ४)

कृष्णयजुर्वेदीय 'रुद्रहृदयोपनिषद्' में इसी सिद्धान्तको इन शब्दोंमें व्यक्त किया गया है—

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रः पुष्पमुमा गन्धस्तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रोऽर्थ अक्षरा सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः।

इसी उपनिषद्में यह भी बतलाया गया है कि इन उमा-महेश्वरसे लक्ष्मी-विष्णुकी सर्वथा अभिन्नता है—'जो भगवती उमा हैं, वही विष्णुभगवान् हैं, जो भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्की

अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वज शिवजीकी ही पूजा करते हैं। जितने पुँल्लिग प्राणी हैं, सब महेश्वर हैं; जितने स्त्रीलिंग प्राणी हैं, सब भगवती उमा हैं। समस्त व्यक्त जगत् उमाका स्वरूप है और अव्यक्त जगत् महेश्वरका स्वरूप है। उमा और शंकरका योग ही विष्णु कहलाता है—

'या उमा सा स्वयं विष्णुः'।
'येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्।'
'पुँल्लिगं सर्वमीशानं स्त्रीलिंगं भगवत्युमा।'
'व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं च महेश्वरः।'
'उमाशंकरयोर्योगः स योगो विष्णुरुच्यते।'

इसी सिद्धान्तका निरूपण समस्त शिवपुराणमें है। शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य—ये पाँच सगुण देवता एक ही भगवान्के स्वरूप माने गये हैं। इन सबकी एकता शिवपुराणमें प्रतिपादित है। शिव, विष्णु, शक्तिकी बात संक्षेपमें ऊपर आ ही गयी है। गणेशका प्रसंग शिवपुराणमें विस्तारसे है और सूर्यभगवान्को स्वयं भगवान् शिवने अपना रूप बतलाकर उन्हें अर्घ्यादि देकर पूजन करनेकी आज्ञा दी है (शिवपुराण, वायवीयसंहिता, उत्तरखण्ड, अ०८)। इस प्रकार एक ही परम परात्पर भगवत्तत्त्वका निरूपण तथा व्याख्यान शिवपुराणमें है। यही शिवपुराणमें 'शिव' का स्वरूप है।

शिव सनातन ब्रह्म तथा लिंगपूजा भी सनातन

ये परात्पर परतम भगवान् शिव न तो आधुनिक देवता हैं, न ये अवैदिक हैं और न अनार्योंके ही देवता हैं। न लिंगपूजा ही दूषित, आधुनिक या अनार्यसेवित है। शिव अनादि परमात्मा परब्रह्म हैं। ये वैदिक देवता हैं। वेदोंमें शिव तथा रुद्रपरक प्रसंग भरे हैं। रुद्राध्याय तो शिवभगवान्के नामोंसे ही पूर्ण है। कपर्दिन्,

पशुपति, सहस्राक्ष, सद्योजात आदि नाम भी बहुत जगह आये हैं। शिवलिंग-उपासनाका प्रमाण भी वेदोंमें मिलता है। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थोंमें भी शिवका विशद वर्णन है।

उपनिषदोंमें श्वेताश्वतरोपनिषद् आदि कई उपनिषद् तो केवल शिवपरक ही हैं। केन, कैवल्य, नारायण, रुद्रहृदय, जाबाल, बृहज्जाबाल, दक्षिणामूर्ति, नीलरुद्रोपनिषद् आदिमें भी उमा-शिवविषयक प्रसंग ही हैं। अतएव इस भ्रमको निकाल देना चाहिये कि शिव अनार्य या अवैदिक देवता हैं और उनकी उपासना आधुनिक है। इतना अवश्य है कि द्वेषबुद्धिको छोड़कर ही अपने-अपने साध्य इष्टस्वरूप तथा उसके साधनमें लगे रहना चाहिये। किसीको छोटा-बड़ा न मानकर सभी भगवत्स्वरूपोंको अपने ही इष्टदेवके विभिन्न नाम-रूपोंवाले वस्तुतः उन्हींके स्वरूप मानकर अपने इष्टस्वरूपकी उपासनामें संलग्न रहना चाहिये और अन्य किसी भी भगवत्स्वरूपकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। एक ही भगवान्के अनेक नाम-रूप तथा तदनुरूप उपासनाके लिये विभिन्न नियम हैं।

शिवतत्त्व और शैवोपासना

तावत्प्रसीद कुरु नः करुणाममन्द-
माक्रन्दमिन्दुधर मर्षय मा विहासीः।
ब्रूहि त्वमेव भगवन् करुणार्णवेन
त्यक्तास्त्वया कमपरं शरणं व्रजामः॥

(स्तुतिकुसुमांजलि)

भगवान् एक ही हैं। लीलाभेदसे उन्हींके अनेकों दिव्य नाम-रूप हैं। साधक अपनी-अपनी प्रकृति और रुचिके अनुसार किसी भी नाम-रूपकी उपासना करके भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। भारतवर्षके ऋषि-मुनियोंने जैसे भगवान् विष्णुकी आराधना की है, वैसे ही भगवान् शिवकी की है और यह सिद्ध कर दिया है कि एक ही परम तत्त्व इन दो रूपोंमें प्रकाशित है। जिस प्रकार भगवान् विष्णु परब्रह्म, सर्वव्यापी, सृष्टिकर्ता, साकार, सगुण भगवान् हैं, वैसे ही भगवान् शिव हैं। कल्पभेदसे कभी विष्णुस्वरूपकी प्रधानता होती है—कभी शिवस्वरूपकी। वे आप ही एक स्वरूपसे स्रष्टा बनते हैं, दूसरेसे सृष्टि, एक स्वरूपसे उपासक बनते हैं, दूसरेसे उपास्य। आप पूजते हैं और आप ही पुजवाते हैं। यह सारी लीला उनकी महान् रहस्यमयी है।

यजुर्वेदकी माध्यन्दिनीय शाखाके १६ वें अध्यायमें शिवजीके निराकार-साकार स्वरूपका स्पष्ट वर्णन है। कैवल्योपनिषद् (७) में कहा है—

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्‌भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्॥

'वे आदि, मध्य और अन्तहीन हैं, निराकार हैं, एक हैं, विभु हैं, चिदानन्द हैं, अद्‌भुत हैं, स्वामी हैं, उमाके साथ रहनेवाले हैं, त्रिनेत्र और नीलकण्ठ हैं, परम शान्त हैं।' इस मन्त्रमें भी भगवान् शिवके निर्गुण-सगुण दोनों स्वरूपोंका वर्णन है। श्वेताश्वतरमें कहा है—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ता-
द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

(६।७)

'वे ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता, पतियोंके भी परम पति, परात्पर, परम पूज्य और भुवनेश्वर हैं।'

शिवपुराणमें कहा गया है—

सत्यं ज्ञानमनन्तश्च चिदानन्दं उदाहृतः।
निर्गुणो निरुपाधिश्च निरञ्जनोऽव्ययस्तथा॥
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
तदेव प्रथमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञितम्॥

(ध्यान०, अ० ७६)

'वे सत्य, ज्ञान और अनन्त हैं, चिदानन्दस्वरूप हैं, निर्गुण-निरुपाधि, निरंजन और अविनाशी हैं। मनके सहित वाणी जिनको न पाकर लौट आती है अर्थात् जो मन-वाणीकी सीमासे परे हैं, वह ब्रह्म 'शिव' नामसे पहले कहे गये हैं।'

यही शिव—

रुद्रो नाम स विज्ञातो लोकानुग्रहकारकः।
ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत्॥
स एव च शिवः साक्षाद् भक्तवात्सल्यकारकः।

(शिव०, ज्ञान०, अ० ७७)

'संसारपर अनुग्रह करनेके लिये रुद्र नामसे जाने जाते हैं। सबके ध्यानमें आनेके लिये इन्होंने अरूप होनेपर भी दिव्य रूप धारण किया। ये भक्तवत्सलरूपधारी (साकार) रुद्र साक्षात् शिव ही हैं।'

इन्हींकी शक्ति माया प्रकृति हैं और ये मायाके अधिपति मायी महेश्वर हैं। इनकी मायाशक्तिके द्वारा इन्हींके अवयवभूत जीवोंसे यह अखिल जगत् व्याप्त हो रहा है।

इन महेश्वर और उनकी मायासे ही ये अखिल विश्व हैं। ये ही उसके परम आधार, स्रष्टा और अभिन्ननिमित्तोपादानकारण हैं। इन्हीं परमपुरुष भगवान्‌का नाम सृष्ट्युन्मुखी होनेपर 'अनादि लिंग' है और इन परम आधेयको आधार देनेवाली इन्हींकी अनादिशक्ति देवीका नाम 'योनि' है। ये ही दोनों अखिल ब्रह्माण्ड चराचरके परम कारण हैं।

इनके साकार रूप लीलाभेदसे अनेकों प्रकारके हैं और सभी अधिकारिभेदसे पूज्य और उपास्य हैं। इनका पंचमुख स्वरूप प्रसिद्ध है। पाँच मुख हैं—ईशान, घोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात। इसी प्रकार अनेकों रूप हैं। यहाँ चार स्वरूपोंके ध्यान और उपासनाके मन्त्र लिखे जाते हैं। अच्छी तरह विधि जानकर विधिपूर्वक ही इनका अनुष्ठान करना उचित है। परंतु एक मन्त्र ऐसा है जिसका अनुष्ठान सब लोग सब अवस्थाओंमें कर सकते हैं और वह मन्त्र बड़ा ही कल्याणकारी है। वह है—'**नमः शिवाय।**'

(१)

बालार्कायुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतशेखरजपवटीं शूलं कपालं करैः।
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत्पञ्चाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे॥

'भगवान् श्रीनीलकण्ठ दस हजार बालसूर्योंके समान तेजस्वी हैं। सिरपर जटाजूट, ललाटपर अर्धचन्द्र और मस्तकपर साँपोंका मुकुट धारण किये हैं। चारों हाथोंमें जपमाला, शूल, नर-कपाल और खट्वांग मुद्रा हैं। तीन नेत्र हैं। पाँच मुख हैं। अति सुन्दर विग्रह है, बाघम्बर पहने हुए हैं और सुन्दर पद्मपर विराजित हैं। इन श्रीनीलकण्ठदेवका भजन करना चाहिये।'

इनका मन्त्र है—'**प्रौं ह्रीं ठः।**'

(२)

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्॥

'श्रीशंकरजीका शरीर नीलमणि और प्रवालके समान सुन्दर (नीललोहित) है। तीन नेत्र हैं। चारों हाथोंमें पाश, लाल कमल, कपाल और शूल हैं। आधे अंगमें अम्बिकाजी और आधेमें महादेवजी हैं। दोनों अलग-अलग शृंगारोंसे सज्जित हैं। ललाटपर अर्धचन्द्र है और मस्तकपर मुकुट सुशोभित है। ऐसे स्वरूपको नमस्कार है।'

इनका मन्त्र है—

'**रं क्षं मं यं औं ॐ।**'

(३)

स्वच्छ स्वच्छारविन्दस्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुम्भौ
द्वाभ्यामेणाक्षमाले निजकरकमले द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलां चामृतैः प्लावयन्तं
देहं देवो दधानः प्रदिशतु विशदाकल्पजालः श्रियं वः॥

'त्र्यम्बक भगवान्‌का शरीर अत्यन्त निर्मल है। वे सुन्दर

स्वच्छ कमलपर विराजित हैं। आठ हाथ हैं। दो हाथोंमें दो अमृतके घड़े हैं, दो हाथोंमें क्रमशः मृगमुद्रा और अक्षमाला हैं, दो हाथोंमें दो अमृतसे भरे घड़े हैं और दो हाथोंसे उन घड़ोंके अमृतको अपने सिरमें स्थित चन्द्रकलापर उँडेल रहे हैं। ऐसे निर्मल वेशसे सुसज्जित भगवान् त्र्यम्बकदेव तुमलोगोंका मंगल करें।'

इनका मन्त्र है—

'ॐ हौं जूं सः। ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। भूर्भुवः स्वः जूं सः हौं ॐ।'

(४)

वटवृक्ष महोच्छ्रायं पद्मरागफलोज्ज्वलम्।
गारुन्मतमयैः पत्रैर्विचित्रैरुपशोभितम्॥
नवरत्नमहाकल्पैर्लम्बमानैरलंकृतम्।
विचिन्त्य वटमूलस्थं चिन्तयेल्लोकनायकम्॥
स्फटिकरजतवर्णं मौक्तिकीमक्षमाला-
ममृतकलशविद्याज्ञानमुद्राः कराब्जैः।
दधतमुरगकक्षं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं
विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्तिमीडे॥

'एक ऊँचा वट-वृक्ष है, उसके पद्मरागमणिके फल हैं। जिनकी आभासे वृक्ष उद्भासित हो रहा है। उसके मरकत-मणिके पत्ते हैं। उस वृक्षमें नौ रत्न लटक रहे हैं। ऐसे वट-वृक्षके मूलदेशमें भगवान् शिव समासीन हैं। उनके शरीरका वर्ण स्फटिक तथा चाँदीके समान शुभ्र है। वे मोतियोंकी तथा रुद्राक्षकी माला धारण किये हैं। हाथोंमें अमृत-कलश और विद्या तथा ज्ञान-मुद्रा हैं। हृदयपर नागोंका यज्ञोपवीत लटक रहा

है। ललाटमें चन्द्रमा है। तीन नेत्र हैं और विविध आभूषणोंसे विभूषित—ऐसे श्रीदक्षिणामूर्तिकी हम वन्दना करते हैं।'

इनका मन्त्र है—

'ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा'

(द्वाविंशत्यक्षरमन्त्र)

शिवगायत्री यह है—

'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'

भगवान् शिव बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। श्रीतुलसीदासजीने ब्रह्माजीके द्वारा आशुतोष भगवान् शिवजीकी अतुलनीय उदारताके सम्बन्धमें श्रीपार्वतीजीके प्रति एक बड़ा सुन्दर व्यंगकी भाषामें महिमासूचक निवेदन करवाया है, उससे भगवान् शंकरके आशुतोष और औढरदानीपनका बड़ा अच्छा आभास मिलता है। पद यह है—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकन कौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी॥

(विनयपत्रिका ५)

(ब्रह्माजी लोगोंका भाग्य बदलते-बदलते हैरान होकर पार्वतीजीके पास जाकर कहने लगे—) हे भवानी! आपके नाथ

(शिवजी) पागल हैं। सदा देते ही रहते हैं। जिन लोगोंने कभी किसीको दान देकर बदलेमें पानेका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त किया, ऐसे लोगोंको भी वे दे डालते हैं। जिससे वेदकी मर्यादा टूटती है। आप बड़ी सयानी हैं, अपने घरकी भलाई तो देखिये (यों देते-देते घर खाली होने लगा है, अनधिकारियोंको) शिवजीकी दी हुई अपार सम्पत्ति देख-देखकर लक्ष्मी और सरस्वती भी (व्यंगसे) आपकी बड़ाई कर रही हैं। जिन लोगोंके मस्तकपर मैंने सुखका नाम-निशान भी नहीं लिखा था, आपके पति शिवजीके पागलपनके कारण उन कंगालोंके लिये स्वर्ग सजाते-सजाते मेरे नाकों दम आ गया। कहीं भी रहनेकी जगह न पाकर दीनता और दुःखियोंके दुःख भी दुःखी हो रहे हैं और याचकता तो व्याकुल हो उठी है। लोगोंकी भाग्यलिपि बनानेका यह अधिकार कृपाकर आप किसी दूसरेको सौंपिये। मैं तो इस अधिकारकी अपेक्षा भीख माँगकर खाना अच्छा समझता हूँ। इस प्रकार ब्रह्माजीकी प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंगसे भरी हुई सुन्दर वाणी सुनकर महादेवजी मन-ही-मन मुदित हुए और जगज्जननी पार्वती मुसकराने लगीं।

पुरुषोत्तम-मासके कर्तव्य

आगामी भाद्रपद कृष्ण अमावस्याके बाद 'अधिकमास' भाद्रपद आरम्भ होगा। अधिकमासको 'मलमास' और 'पुरुषोत्तम-मास' भी कहते हैं। इस मासकी 'मलमास' की दृष्टिसे जैसे निन्दा है, 'पुरुषोत्तम-मास' की दृष्टिसे इसकी बड़ी महिमा है। भगवान् पुरुषोत्तमने इसको अपना नाम देकर कहा है कि अब मैं इस मासका स्वामी हो गया हूँ और इसके नामसे सारा जगत् पवित्र होगा और मेरी सादृश्यताको प्राप्त करके यह मास अन्य सब मासोंका अधिपति होगा। यह जगत्पूज्य और जगत्का वन्दनीय होगा और इसकी पूजा करनेवाले सब लोगोंके दारिद्र्यका नाश करनेवाला होगा।[१]

इस पुरुषोत्तम-मासमें नियमसे रहकर भगवान्की विधिपूर्वक पूजा करनेसे भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और भक्तिपूर्वक उन भगवान्की पूजा करनेवाला यहाँ सब प्रकारके सुख भोगकर मृत्युके बाद भगवान्के दिव्य गोलोकमें निवास करता है।[२]

तीर्थोंमें, घरोंमें, मन्दिरोंमें जगह-जगह इस मासमें भगवान्की कथा होनी चाहिये। भगवान्का विशेषरूपसे पूजन होना चाहिये और

१-अहमेवास्य संजातः स्वामी च मधुसूदन।
एतन्नाम्ना जगत्सर्वं पवित्रं च भविष्यति॥
मत्सादृश्यमुपागम्य मासानामधिपो भवेत्।
जगत्पूज्यो जगद्वन्द्यो मासोऽयं तु भविष्यति॥
पूजकानां च सर्वेषां दुःखदारिद्र्यखण्डनः।

२-येनाहमर्चितो भक्त्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तमे।
धनपुत्रसुखं भुक्त्वा पश्चाद् गोलोकवासभाक्॥

भगवान्‌की कृपासे देश और विश्वका मंगल हो तथा गो-ब्राह्मण एवं धर्मकी रक्षा हो, इसके लिये व्रत-नियमादिका आचरण करते हुए दान, पुण्य और भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। महर्षि वाल्मीकिने पुरुषोत्तम-मासके नियमोंके सम्बन्धमें कहा है कि इस मासमें गेहूँ, चावल, सफेद धान, मूँग, जौ, तिल, मटर, बथुआ, शहतूत, सामक, ककड़ी, केला, घी, कटहल, आम, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, इमली, सुपारी, आँवला, सेंधा नमक आदि हविष्यान्नका भोजन करना चाहिये।

सब प्रकारके अभक्ष्य, मांस, शहद, चावलका माड़, चौलाई, उरद, राई, नशेकी चीजें, दाल, तिलका तेल, दूषित अन्नका त्याग करना चाहिये। किसी प्राणीसे द्रोह नहीं करना चाहिये। पर-स्त्रीका भूल करके भी सेवन नहीं करना चाहिये। देवता, वेद, ब्राह्मण, गुरु, गाय, साधु-संन्यासी, स्त्री और बड़े लोगोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। ताँबेके बर्तनमें गायका दूध, चमड़ेमें रखा हुआ पानी और केवल अपने लिये ही पकाया हुआ अन्न दूषित माना गया है। अतएव इनका त्याग करना चाहिये।

इस 'पुरुषोत्तम-मास' में जमीनपर सोना, पत्तलमें सायंकाल एक समय भोजन करना, रजस्वला स्त्रीसे दूर रहना और धर्मभ्रष्ट संस्कारहीन लोगोंसे सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। प्याज, लहसुन, नागरमोथा, कुकुरमुत्ता, गाजर, मूली इत्यादिका त्याग करना चाहिये। चान्द्रायणादि व्रत-उपवास करना उत्तम है।

प्रात:काल सूर्योदयसे पूर्व उठकर शौच, स्नान, संध्या आदि अपने-अपने अधिकारके अनुसार नित्यकर्म करके भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये और पुरुषोत्तम-मासके नियम ग्रहण करने चाहिये। पुरुषोत्तम-मासमें श्रीमद्भागवतका

पाठ करना महान् पुण्यदायक है और एक लाख तुलसीपत्रसे शालग्राम भगवान्का पूजन करनेसे अनन्त पुण्य होता है।

विधिपूर्वक षोडशोपचारसे नित्य भगवान्का पूजन करना उचित है। इस पुरुषोत्तम-मासमें—

गोवर्द्धनधरं वन्दे गोपालं गोपरूपिणम्।
गोकुलोत्सवमीशानं गोविन्दं गोपिकाप्रियम्॥

—इस मन्त्रका एक महीनेतक भक्तिपूर्वक बार-बार जप करनेसे पुरुषोत्तमभगवान्की प्राप्ति होती है। प्राचीन कालमें श्रीकौण्डिन्य ऋषिने यह मन्त्र बताया था। मन्त्र जपते समय नवीन मेघश्याम द्विभुज मुरलीधर पीतवस्त्रधारी श्रीराधिकाजीके सहित श्रीपुरुषोत्तमभगवान्का ध्यान करना चाहिये।

वास्तवमें श्रद्धाभक्तिपूर्वक भगवान्का नाम-जप, स्थान-स्थानमें भगवन्नामकीर्तन, गोरक्षाके लिये दान, विधवा-अनाथ-असहाय लोगोंकी निष्काम सेवा, धार्मिक आचरणोंका पालन—इस मासमें विशेषरूपसे करना चाहिये।

सत्कथाका महत्त्व

'सत्' उसे कहते हैं जो सदा है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, जो नित्य सत्य चिदानन्दस्वरूप है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—चारों अवस्थाओंमें सम एवं एकरूप है, जो सबका आश्रय, ज्ञाता, प्रकाशक और आधार है, श्रुतियाँ **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** आदि कहकर जिसका संकेत करती हैं और जो एकमात्र चैतन्यघन होनेपर भी अनेक रूपोंमें दिखायी पड़ता है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(२। १६)

जो 'असत्' है, उसका कभी अस्तित्व नहीं है और जो 'सत्' है, उसका कभी अभाव नहीं है। अर्थात् वह सदा सर्वत्र है। सब कुछ उसीमें है, वही सबमें समाया है। यह 'सत्' ही परमात्मा—परात्पर ब्रह्म है। यथार्थमें इस 'सत्' की उपलब्धि ही मानव-जीवनका प्रधान ही नहीं, एकमात्र लक्ष्य है। इसीके लिये भगवान् दया करके जीवको मनुष्य-योनिमें भेजते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

जो मनुष्य नरदेहका यह वास्तविक लाभ न उठाकर पशु या पिशाचवत् भोगोंके उपार्जन और उनके भोगमें ही लगा रहता है, उसका मानव-जन्म व्यर्थ जाता है। केवल व्यर्थ ही नहीं जाता, भोगकामनासे मनुष्यका विवेक ढक जाता है और वह भोगोंकी प्राप्तिके लिये अनेकों पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होकर मानव-जीवनको असुर-जीवनमें परिणत कर डालता है। जिसका बहुत बुरा परिणाम होता है। भगवान्ने कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। २०)

'कौन्तेय! वे मूढ़लोग मुझ (भगवान्)-को तो प्राप्त होते ही नहीं, जन्म-जन्ममें आसुरी-योनिमें जाते हैं और फिर उससे भी अति नीच गति (घोर नरकों)-को प्राप्त होते हैं।'

इसलिये मनुष्यका यही एकमात्र कर्तव्य या धर्म होता है कि वह लोक-परलोकके कल्याण तथा मानव-जीवनके परम साध्य परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही सब कार्य करके अपने जीवनको सफल करे। विषय-भोगोंको इस जीवनका लक्ष्य समझकर उन्हींको प्राप्त करनेमें जीवन लगाना तो अमृत देकर बदलेमें जहर लेना है। भगवान् श्रीरामचन्द्रने कहा है—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

वे आगे चलकर कहते हैं कि इस प्रकारकी दुर्लभ सुविधा पाकर भी जो भवसागरसे नहीं तरता, वह आत्म-हत्यारेकी गतिको प्राप्त होता है—

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

यही बात श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें कही गयी है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

(११। २०। १७)

श्रुति कहती है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोपनिषद् २। ५)

'यदि इस मनुष्य-शरीरमें परमात्मतत्त्वको जान लिया जायगा तो सत्य है—(सत्यकी उपलब्धिसे मानव-जीवनकी सार्थकता है) और यदि इस जन्ममें उसको नहीं जाना तो महान् हानि है। धीर पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माका चिन्तन कर—परमात्माको समझकर इस देहका त्याग करके अमृतको प्राप्त होते हैं अर्थात् इस देहसे प्राणोंके निकल जानेपर वे अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।'

इस 'सत्' स्वरूप चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिके जितने साधन हैं या परमात्माको प्राप्त महापुरुषमें अथवा परमात्मप्राप्तिके साधनमें लगे हुए सच्चे साधकमें जिन-जिन गुणों और क्रियाओंका प्रकाश और विकास देखा जाता है, वे सब भी 'सत्' ही हैं। इसीसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

(१७। २६-२७)

'सत्' इस (परमात्माके नाम)-का सद्भावमें और साधुभावमें प्रयोग किया जाता है तथा अर्जुन! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है और यज्ञ, तप तथा दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' है—ऐसा कहा जाता है। एवं उस परमात्माके लिये किया गया (प्रत्येक) कर्म ही 'सत्' है—ऐसा कहा जाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा या भगवान् भी 'सत्' है तथा उस सत्के साधन एवं सत्यके प्राप्त होनेपर स्वभावतः ही सत्पुरुषमें दीखनेवाले गुण भी 'सत्' हैं—अर्थात् सद्‌गुण, सद्भाव, सद्‌विचार, सदाचार, सद्‌व्यवहार, सत्यभाषण, सत्-आहार और सद्‌विहार—जो कुछ भी भगवान्‌के प्राप्त्यर्थ, प्रीत्यर्थ या सहज दैवीगुणरूपमें विकसित भाव-विचार-गुण-कर्म आदि हैं, सभी 'सत्' हैं और ये जिसके जीवनमें प्रत्यक्ष प्रकट हैं, वे ही 'सत्पुरुष' हैं। ऐसे सत्पुरुषों या उनके सदाचारों तथा सद्‌विचारोंका संग ही 'सत्संग' है। इस प्रकारके 'सत्संग' में ही वास्तविक 'सत्कथा'—हरिकथा प्राप्त होती है, उससे मोहका नाश (भोगपदार्थोंमें—इहलोक तथा परलोकके प्राणिपदार्थोंमें—सुखबोधरूप मोहका नाश) होकर भगवच्चरणोंमें दृढ़ प्रेमकी प्राप्ति होती है—

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

हरिकथा ही 'सत्कथा' है जिससे श्रीहरिके पवित्र लीलाचरित्रोंका गान हो अथवा जो भगवान् श्रीहरिकी ओर ले जानेवाले सफल साधन बताती हो, वह 'सत्कथा' है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ४०)

'जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार होना चाहते हैं

अथवा जो भाँति-भाँतिके दु:खदावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तमभगवान्‌की लीला-कथा-रसका सेवन करनेके सिवा और कोई साधन नहीं है, कोई नौका नहीं है। केवल लीला-कथा-रसायनका सेवन करके ही वे अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।'

हरिकथाको छोड़कर और सभी कथाएँ असत् हैं तथा त्याज्य हैं। श्रीमद्भागवतके अन्तमें श्रीसूतजी महाराजने कहा है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥

(१२।१२।४८-४९)

'जिस वाणीके द्वारा घट-घटवासी भगवान्‌के नाम-गुण-लीलाका कथन नहीं होता, वह भावयुक्त होनेपर भी व्यर्थ-सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और वस्तुत: वह 'असत्-कथा' है। जो वचन भगवान्‌के गुणोंसे पूर्ण रहते हैं, वे ही परम पवित्र हैं, वे ही मंगलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवान्‌के परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, परम रुचिर और प्रतिक्षण नया-नया लगता है, वही अनन्त कालतक मनके लिये परम महोत्सवरूप है। वह मनुष्यके शोकरूपी गहरे समुद्रको सुखा देनेवाला है।'

जहाँ 'सत्कथा' होती है वहाँ उसके प्रभावसे प्राणिमात्रमें परस्पर प्रेम हो जाता है। वहाँ लोग वैर छोड़कर सुखी हो जाते हैं। प्रचेतागण भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः।
निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन॥
यत्र नारायणः साक्षाद् भगवान् न्यासिनां गतिः।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः॥

(श्रीमद्भा० ४। ३०। ३५-३६)

'जहाँ (भगवद्भक्तोंमें) सदा भगवान्‌की दिव्य कथा होती रहती है, जिनके श्रवणमात्रसे भोगतृष्णा सर्वथा शान्त हो जाती है। प्राणिमात्र सब परस्पर निर्वैर हो जाते हैं और उनमें कोई उद्वेग नहीं रहता। सत्कथाओंके द्वारा अनासक्त भावसे महान् त्यागियोंके एकमात्र आश्रय साक्षात् भगवान् श्रीनारायणका बार-बार गुण-गान होता रहता है।'

जिन लोगोंको सत्कथा-सुधाका स्वाद मिल जाता है, वे तो फिर उसे पीते ही रहना चाहते हैं, कभी तृप्त होते ही नहीं। विदेह राजा निमिने योगीश्वरोंसे प्रार्थना की है—

नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम्।
संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम्॥

(श्रीमद्भा० ११। ३। २)

'मैं मृत्युका शिकार और संसारके तापोंसे संतप्त हूँ। आपलोग मुझे जिस हरि-कथा-अमृतका पान करा रहे हैं, वह इन तापोंको नष्ट करनेकी एकमात्र ओषधि है, इसलिये आपकी वाणीका सेवन करते-करते मैं तृप्त नहीं होता।'

सत्कथा-सुधाके परम पिपासु भक्तराज ध्रुव सत्संगकी चाह करते हुए भगवान्‌से बोले—

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥

(श्रीमद्भा० ४। ९। ११)

'अनन्त परमात्मन्! जिनकी आपमें अविच्छिन्न भक्ति है, उन निर्मलहृदय महापुरुष भक्तोंका मुझे संग दीजिये। उनके संगसे आपके गुण और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर मैं उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही अनेक दुःखोंसे पूर्ण इस भयंकर भवसागरसे उस पार पहुँच जाऊँगा।'

परम सौभाग्यमयी श्रीगोपांगनाएँ जो भगवत्कथा-सुधा-रसकी रसिका ही ठहरीं। उनके समान इस रससुधाका अनुभव किसने किया है।—प्रेममतवारी वे गोपियाँ बड़े ही करुण-मधुर स्वरमें गाती हैं—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। ९)

'श्यामसुन्दर! तुम्हारी कथा-सुधा (तुम्हारे विरहसे) संतप्त पुरुषोंके लिये जीवनरूप है, ज्ञानी महात्माओंके द्वारा उसका गान किया गया है। वह सारे पाप-तापोंको मिटानेवाली है, श्रवण-मात्रसे मंगल करनेवाली है, परम मधुर और परम सुन्दर तथा विस्तृत है। जो तुम्हारी लीला-कथाका गान करते हैं, वे ही वास्तवमें पृथ्वीमें सबसे बड़े दाता हैं।'

महात्मा मुनि मैत्रेयजी तो कथा-सुधा-पान न करनेवालोंको मनुष्य ही नहीं मानते। वे विदुरजीसे कहते हैं—

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्
पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-
महो विरज्येत विना नरेतरम्॥

(श्रीमद्भा० ३।१३।५०)

'अरे संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार—असली मानव-पुरुषार्थका रहस्य जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो आवागमनरूपी भवसे छुड़ा देनेवाली भगवान्‌की प्राचीन कथाओंमेंसे किसी भी कथा-सुधाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उसकी ओरसे मन हटा लेगा?'

श्रीगोस्वामीजी महाराज सत्कथा (रामकथा)-के महत्त्वका वर्णन करते हुए कहते हैं—

महामोह महिषेसु बिसाला। राम कथा कालिका कराला॥
राम कथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥
राम कथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥

सत्कथासे ही मनुष्यको अपनी भूलोंका पता लगता है और भवाटवीसे निकलकर सच्चे सुखकी प्राप्तिका सन्मार्ग, उसका पाथेय, प्रकाश और सहायक शुभ संग प्राप्त होता है। सत्कथाओंमें भी जो प्रभाव उपदेशका पड़ता है, उससे बहुत ही अधिक घटना-प्रसंगोंका पड़ता है। विषय-वासना, भोग-कामना, कामोपभोगपरायणता, भोगार्थ दुष्कर्ममें प्रवृत्ति, अन्यायसे अर्थोपार्जनकी वृत्ति आदि सभी दोषोंको मिटाकर जो आत्महित, लोकहितके साथ-साथ भगवत्-प्रीतिसम्पादनमें सहायक और प्रेरक हो, जिससे दैवी सम्पत्तिके गुणोंका विकास

तथा संवर्धन होता हो, ऐसी घटनाओंका श्रवण, कथन, मनन ही 'सत्कथा' का सेवन है।

इसके विपरीत जिन कथाओंसे आसुरी सम्पदाके दुर्गुण, दुर्विचार, दुराचार आदिका विकास तथा संवर्धन होता हो— जिनसे हिंसा, असत्य, स्तेय, दम्भ, दर्प, अभिमान, मद, द्वेष, वैर, क्रोध, काम, लोभ, छल, कपट, कायरता, असहिष्णुता, मन-इन्द्रियोंकी गुलामी, व्यभिचार, तृष्णा, ईश्वर तथा धर्ममें अविश्वास, दोषदर्शनकी वृत्ति, निन्दा-चुगलीमें प्रीति, मिथ्या प्रशंसाकी इच्छा, शरीरके अत्यन्त आरामकी भावना आदि दोष उत्पन्न होते हों, उभड़ते हों, बढ़ते हों, फैलते हों—वह असत्कथा है। उससे सदा दूर रहना चाहिये।

असत् मानव-चरित्रोंका तथा असत् घटनाओंका भूलकर भी कभी श्रवण, पठन, कथन, स्मरण नहीं करना चाहिये। जैसे सत्पुरुषोंके सत्-चरित्र और सत्-घटना आदिसे चरित्र-निर्माणमें प्रेरणा, सहायता तथा आदर्शकी प्राप्ति होती है, ठीक इसके विपरीत असत्-चरित्र तथा घटनाओंसे चरित्रनाश होता है। इसीलिये असत् साहित्यका प्रकाश और प्रचार-प्रसार संसारके लिये हानिकर माना गया है। इसीलिये शास्त्र तथा सत्पुरुष बार-बार सावधान करते हुए सब प्रकारके दुःसंगका त्याग करनेके लिये प्रेरणा देते हैं। स्खलन अथवा पतन बहुत शीघ्र होता है, पैर जरा-सा फिसला कि आदमी गिरा। परंतु फिसलाहटसे बचनेमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है और चढ़नेके लिये तो परिश्रम या प्रयास भी करना पड़ता है। 'असत्-कथा' मानव-जीवनका पतन करनेके लिये बहुत बड़ी फिसलाहट है। इसलिये 'असत्-कथा' से सदा बचकर 'सत्कथा' का ही सेवन करना चाहिये।

सत्कथाके सेवनसे मनुष्यको अपने कर्तव्यका ज्ञान होता है। अपने प्रति तथा दूसरोंके प्रति कैसे बर्ताव करना चाहिये—यह बात ठीक समझमें आती है। संसारमें किस प्रकार रहना चाहिये, घरमें रहते हुए भी बन्धन न हो, कोई भी काम या चेष्टा ऐसी न हो, जिससे किसी भी प्राणीका अहित होता हो। सदा स्वाभाविक ही सबका हित-परहित होता रहे, इसकी सच्ची जानकारी उन पुरुषोंकी जीवन-घटनाओंसे ही प्राप्त होती है, जो ऐसे हैं और जिनके जीवनमें ये चीजें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं।

हमारे यहाँ चार पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। संसारमें जीवन-निर्वाह तथा स्वयं कष्ट न पाकर सबको आराम पहुँचाने, अपने आश्रितोंका स्नेह तथा भक्तिपूर्वक पालन-पोषण करनेके लिये अर्थ और कामकी भी आवश्यकता है। इसीलिये धर्मके स्वरूपकी व्याख्या करते हुए हमारे सर्वदर्शी तथा आत्मस्वरूपमें स्थित महर्षिने कहा—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

'जिससे लौकिक अभ्युदय—सर्वांगीण उन्नति और निःश्रेयस—परमकल्याणकी सिद्धि हो वह धर्म है।' परंतु मानव-जीवनका प्रधान लक्ष्य है—मोक्ष या भगवत्प्राप्ति। इसलिये अर्थ और काम ऐसे न हों जो मनुष्यको कामोपभोगपरायण बनाकर उसे आसुरी जीवनमें पहुँचा दें। वे अर्थ और काम धर्मनियन्त्रित होने चाहिये। धर्मानुसार ही अर्थ-कामका अर्जन, प्रयोग और उपयोग होना चाहिये। यह बात सीखनेको मिलती है—'सत्कथा' से ही।

हमारे ऋषि घोषणा करते हैं—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

'धर्मके सार-सर्वस्वको सुनो और सुनकर उसे धारण करो—

वह धर्मसर्वस्व यही है कि जो-जो कार्य या व्यवहार तुम्हारे मनसे प्रतिकूल हैं, दूसरोंके साथ उन्हें न करो।' इसका यथार्थ रूप कैसा होना चाहिये। इस बातका पता 'सत्कथा' से ही लगता है।

दूसरोंका न कभी बुरा करो, न चाहो ही। तुम्हारे चाहने-करनेसे किसीका बुरा नहीं होगा। वह तो तभी होगा, जब किसीके वैसे अपने कर्म कारणरूपमें पहलेसे बने हुए विद्यमान होंगे और जो फलदानोन्मुख हो चुके होंगे। पर किसीका बुरा चाहते ही तुम्हारा तो बुरा निश्चितरूपसे हो ही गया।

जिससे अपना तथा दूसरोंका परिणाममें अहित होता हो, वही पाप है और जिससे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, वही पुण्य है।

दूसरोंका अहित चाहने तथा करनेवालोंका परिणाममें कभी हित नहीं होता और दूसरोंका हित चाहने तथा करनेवालोंका परिणाममें कभी अहित नहीं होता।

हमारा अहित या नुकसान हमारे कर्मसे होता है, दूसरा कोई भी हमारा अहित नहीं कर सकता। यदि कोई वैसी चेष्टा करता है तो वह अपने लिये ही बुराईका बीज बोता है और जो अपने अहितका कार्य आप करता है, वह पागल है और पागल दयाका पात्र होता है, द्वेषका नहीं।

किसी भी स्थिति, अवस्था, प्राणी, पदार्थ, वस्तु आदिसे जो सुखकी आशा रखता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। वह सदा निराश ही रहेगा, फलतः दुःखी रहेगा।

सुख-दुःख किसी वस्तु या स्थितिमें नहीं हैं, न कोई सुख-दुःख देता ही है। मनकी अनुकूलतामें सुख है और प्रतिकूलतामें दुःख है। यदि मनुष्य ज्ञानकी दृष्टिसे अपनेको निर्लिप्त केवल द्रष्टा मान ले तो सर्वत्र अनुकूलता-प्रतिकूलताका नाश होकर समता हो

जाती है तथा फिर सुख-दुःख मिटकर आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है अथवा भक्तिकी दृष्टिसे सब कुछको भगवान्‌का मंगल विधान मान लें तो सर्वत्र प्रत्येक सांसारिक परिणाममें अनुकूल दृष्टि हो जाती है—प्रतिकूलता रहती ही नहीं, तब फिर वह नित्य आनन्दको प्राप्त कर सकता है।

अपनेको राहमें पड़े तिनकेसे भी नीचा समझे, वृक्षकी भाँति बुरा करनेवालेका भी अपना सर्वस्व देकर हित करे, स्वयं मानका त्याग करके सबको मान दे और सदा-सर्वदा श्रीभगवान्‌का कीर्तन करे।

पतन या पापका कारण प्रारब्ध नहीं है। विवेकका अनादर करके कामनाके वशमें होनेपर मनुष्य पापाचरण करता है और तभी उसका पतन होता है।

अपनी स्थितिसे अधिक खर्च करनेवाले मनुष्यको धनकी चाह सदा बनी ही रहती है और धन कमानेके लिये वह सदा अशान्त रहता हुआ, विविध प्रकारके दुराचरण करने लगता है। जिसकी आवश्यकता जितनी कम है, वह उतना ही अधिक सुखी है।

सारे क्लेशोंका कारण ममता और अहंता है। ज्ञानकी दृष्टिसे नाम तथा रूपसे अहंता निकालकर एकमात्र निर्विशेष ब्रह्ममें अहंता करें, फिर जगत्‌के प्राणिपदार्थोंसे ममता आप ही निकल जायगी। अथवा भक्तिकी दृष्टिसे अपना सारा 'अहम्' भगवान्‌के दासत्वमें लगा दे अर्थात् अपनेको केवल भगवान्‌का दास मान ले और अपनी सारी ममता सब जगहसे हटाकर भगवान्‌के चरणोंमें ही जोड़ दे। 'मैं भगवान्‌का दास और भगवान्‌के चरणकमल ही मेरे।' 'मैं और कुछ नहीं तथा मेरा और कुछ भी नहीं।'

साधु, भक्त, महात्मा सजकर जो दुनियाको धोखा देना चाहता है, वह अपने-आपको ही धोखा देता है और मानव-जीवनको पापमय बनाता है।

शरीरसे भगवत्स्वरूप संसारकी सेवा करे, मनसे भगवान्‌का चिन्तन करे, वह परम साधन है।

माता-पिताकी सेवा और अपने वर्णाश्रम-धर्मका पालन कष्ट सहकर भी आनन्दपूर्वक सौभाग्य मानकर करे।

दूसरेके अधिकारकी यथासाध्य पूर्ति कर दे और अपना कोई अधिकार माने नहीं, दूसरोंकी इच्छाको उनकी आशासे अधिक पूरी करे, दूसरोंसे स्वयं इच्छापूर्तिकी कोई आशा रखे ही नहीं।

संसारके सारे सम्बन्ध भगवान्‌के सम्बन्धसे माने। घर भगवान्‌का, घरके प्राणी भगवत्स्वरूप, घरका काम भगवान्‌की सेवा। जबतक भगवान् इन वस्तुओंको रखें—तबतक इन्हें अपनी न मानकर भगवान्‌के नाते सेव्य माने और इनकी आदरपूर्वक सेवा करे। भगवान् अपनी वस्तुओंको अन्यत्र भिजवा दें या सेवा करनेवालेको ही दूसरी जगह भेजकर दूसरी सेवा सौंप दें तो खूब प्रसन्नतासे स्वीकार करे। सेवा करनी है—ममता नहीं। प्रेम करके देना है—किसीसे कुछ लेना नहीं है।

बड़ोंकी सेवा न करना, अपवित्र रहना, अकड़े रहना, ब्रह्मचर्यका नाश करना, किसीको चोट पहुँचाना—ये शरीरसे होनेवाले पाँच पाप हैं। ऐसी वाणी बोलना, जिससे सुननेवालेको उद्वेग हो, जो असत्य हो, जो कटु हो और जो अहित करनेवाली हो तथा भगवान्‌के नाम-गुणोंका गान न करना—ये वाणीसे होनेवाले पाँच पाप हैं। तथा मनका विषाद, निर्दयता, व्यर्थ चिन्तन, उच्छृंखलता, अशुद्ध भाव—ये पाँच मनसे बननेवाले पाप हैं। इनको छोड़कर शरीरसे देव-द्विज, गुरु-प्राज्ञका पूजन, शौच, सीधापन, ब्रह्मचर्यका पालन और अहिंसाका सेवन करे। वाणीसे अनुद्वेगकर, सत्य, मधुर और हितकर वचन बोले तथा स्वाध्याय करता रहे एवं मनसे प्रसन्नता, सौम्यता, मौन

(भगवान्‌के नाम, रूप, गुणोंका मनन) मनका निग्रह, भावोंकी शुद्धि—इनका सेवन करे।

किसी भी लोभ या भयसे सत्य एवं धर्मका त्याग न करे, बल्कि सत्य तथा धर्मकी रक्षाके लिये अपने जीवनको न्योछावर कर दे।

दूसरेके दुःखको कभी अपना सुख न बनावे। अपना सारा सुख देकर दूसरेके दुःखोंका हरण करे और उसे सुखी बनावे तथा इसीमें परम सुखका अनुभव करे।

जितनेसे अपना पेट भरे उतनेपर ही अपना हक है। इससे अधिकको अपना माननेवाला चोर है और दण्डनीय है। अतएव सबका हक यथायोग्य सबको देकर केवल अपने हकसे ही अपना जीवन चलावे।

दूसरे सबको उनका स्वत्व देकर बचे हुएको प्रसादरूपसे खाना ही यज्ञावशिष्ट भोजन है और इसीसे पाप नाश होते हैं। जो केवल अपने लिये ही कमाता-खाता है, वह तो पाप खाता है।

अपने पास संग्रह करे ही नहीं, यदि कोई वस्तु या धन-सम्पत्ति अपने पास हो तो अपनेको उसका स्वामी न माने, ट्रस्टी माने और उस वस्तुको ट्रस्टकी सम्पत्ति माने तथा यथायोग्य नियमानुसार उसका भगवत्सेवार्थ जन-सेवामें खुले हाथों उपयोग करता रहे और उसमें अपना कुछ भी श्रेय न समझे।

किसीको कुछ देकर न उसपर अहसान करे, न उससे कृतज्ञता या बदला चाहे, न गिनावे, उसीकी वस्तु उसे दी गयी है, यही समझकर इसे भूल जाय।

अपने द्वारा किसीका कभी कुछ हित हुआ हो, उसे भूल जाय। दूसरेके द्वारा कभी अपना अहित हुआ हो उसे भूल जाय। दूसरेके द्वारा अपना कुछ हित हुआ हो उसे याद रखे और अपने द्वारा कभी किसीका कुछ अहित हुआ हो उसे याद रखे।

जैसे थोड़ा-सा भी कोढ़ सर्वांगसुन्दर शरीरको बिगाड़ देता है, वैसे ही तनिक-सा भी लोभ यशस्वी पुरुषोंके शुद्ध यश और गुणी पुरुषोंके प्रशंसनीय गुणोंको नष्ट कर देता है।

चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें अर्थ—धनसे उत्पन्न होते हैं। इस अर्थनामधारी अनर्थमें ममता-आसक्ति न करके बुद्धिमान् पुरुषको इसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। और मिल जाय तो उसे भगवान्‌की सेवामें लगा देना चाहिये।

संकल्पत्यागके द्वारा कामको जीते, कामके त्यागसे क्रोधको जीते, धनसे होनेवाले अनर्थोंको दृष्टिमें रखकर लोभका त्याग करे तथा तत्त्वविचारके द्वारा भयको जीते।

महान् पापी भी यदि भगवान्‌को एकमात्र शरणदाता मानकर उनको अनन्यचित्तसे पुकारता है तो वह साधु ही माना जाता है।

भगवान्‌की कृपामें जितना बल है, उतना पापीके पापमें नहीं है। भगवान्‌की सभी शक्तियोंमें कृपाशक्ति सबसे बड़ी है।

किसीके नामके बहाने, परिहासमें, गीतके आलाप आदिके लिये अथवा अवहेलनासे भी लिया हुआ भगवान्‌का नाम सब पापोंको नाश करता है। अनजानमें अथवा जानकर उच्चारण किया हुआ जो श्रीहरिका नाम है, वह मनुष्यकी पापराशिको उसी प्रकार जला देता है जैसे आग ईंधनको।

संसार बड़ा स्वार्थी है, यह दूसरेके संकटको नहीं जानता, जानता होता तो किसीसे कोई याचना नहीं करता और जो देनेमें समर्थ है, वह माँगनेपर कभी इनकार नहीं करता।

धन, उत्तम कुल, रूप, तपस्या, वेदाध्ययन, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पुरुषार्थ, बुद्धि और योग—इन बारह गुणोंसे युक्त

ब्राह्मण भी यदि भगवान् पद्मनाभके चरणकमलसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल ही श्रेष्ठ है, जिसने मन, वचन, कर्म, धन, प्राण सब कुछ भगवान्के चरणोंमें समर्पण कर दिये हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलको पवित्र करता है, किंतु बड़प्पनका अधिक अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता।

धन और भोगोंसे संतोष न होना ही जीवके संसारबन्धनमें पड़नेका कारण है। जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीमें संतोष कर लेनेवालेको मुक्ति मिलती है।

भोगोंकी प्राप्तिसे भोगकामना कभी शान्त नहीं होती, अपितु घी-ईंधनसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निकी भाँति अधिकाधिक बढ़ती है।

जो संतुष्ट है, निष्काम है तथा आत्मामें ही रमण करता है, उसे जो सुख मिलता है, वैसा सुख कामलालसा और धनकी इच्छासे इधर-उधर दौड़नेवालोंको कभी नहीं मिल सकता।

मनुष्यदेह भगवत्प्राप्तिके लिये मिला है, भोगप्राप्तिके लिये नहीं। मानवकी मानवता तभी सिद्ध होती है, जब वह भगवान्की प्राप्तिके साधनोंमें लगकर अपने जीवनको सर्वथा भगवान्के अनुकूल बना लेता है या बनाना चाहता है।

सबमें सर्वदा भगवान्के दर्शन करके सबकी सेवा करनेवाला महापुरुष है। केवल मानवमें ही नहीं—पशु, पक्षी, कीट-पतंग, जड़-चेतन सभीमें भगवान् भरे हैं।

भगवान् ही उनके रूपमें प्रकट हैं। यह अनुभव करके सबका हित, सबकी सेवा, सबको प्रणाम करे।

उपर्युक्त सभी चीजोंको समझना और जीवनमें उतारना

मानव-जीवनकी पूर्णताके लिये अत्यावश्यक हैं। पर ये चीजें केवल सुननेसे नहीं मिलतीं। जिनके जीवनमें ये सब चीजें मूर्तिमान् हुई हों, जिन्होंने इनका प्रत्यक्ष पोषण और सेवन किया हो, उनकी उन जीवन-घटनाओंसे इनको प्राप्त करनेकी तीव्र प्रेरणा मिलती है, करनेकी युक्ति प्राप्त होती है और प्राप्त करके कैसे उनका सेवन किया जाता है, इसके लिये एक अनुभवपूर्ण आदर्श मिलता है। यही 'सत्कथा' की विशेषता तथा उपादेयता है।

प्रत्येक कल्याणकामी बालक-वृद्ध, नर-नारी, गृहस्थ, विरक्त मानवमात्रको 'सत्कथा' का श्रवण, मनन, अध्ययन करके उसके अनुसार जीवन बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। यही विनीत प्रार्थना है।

भगवान् बुद्धदेव और उनका सिद्धान्त

जन्म और जीवन

आज भगवान् बुद्धदेवके महापरिनिर्वाणका पवित्र दिवस है। ईसासे पाँच सौ तिरसठ वर्ष पूर्व इन महामानवका भारतवर्षमें ही अवतार हुआ था। गोरखपुरके समीप ही कपिलवस्तुमें शाक्यवंशीय महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। यह शाक्यवंश-प्रसिद्ध सूर्यवंशीय इक्ष्वाकुवंशकी ही एक शाखा माना जाता है। इसी पवित्र इक्ष्वाकुवंशमें पूर्ण-परात्पर-ब्रह्म मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका अवतार त्रेतायुगमें हुआ था।

महाराज शुद्धोदनके दो रानियाँ थीं—महामाया और महाप्रजावती। पर इनके कोई संतान नहीं थी। चौवालीस वर्षकी अवस्थामें एक दिन रानी महामायाने स्वप्नमें देखा कि एक चार दाँतोंवाला श्वेत वर्णका हाथी है और छः नोकवाला एक प्रकाशपुंज तारा है। वह तारा महामायाके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। उस दिन सूर्य कर्कराशिका था। ज्योतिषियोंने इसका बहुत अच्छा फल बतलाया।

रानी महामाया गर्भवती हुईं, दसवें महीने वे अपने पीहर जा रही थीं। रास्तेमें लुम्बिनी वनमें एक शाल वृक्षकी डाल पकड़कर खड़ी हो गयीं, वहीं बालकका जन्म हो गया। बालक बड़ा तेजस्वी, अत्यन्त सुन्दर, सर्वजनमनमोहन था। वह विचित्र बालक उत्पन्न होते ही सात पग चलता गया। कहते हैं कि उसने जहाँ पैर रखे वहीं धरतीमातासे सुन्दर कमलपुष्प प्रकट होते गये। राजाने अपने समस्त अर्थ सिद्ध हुए जानकर उसका नाम 'सिद्धार्थ' रखा। मातृवंश गौतमवंशका होनेसे वह बालक गौतम कहलाया।

सिद्धार्थके जन्मसे सातवें दिन महामायाका देहावसान हो गया,

तदनन्तर महाप्रजावतीने बालकका बड़े स्नेहसे पालन-पोषण किया। बालक दिनोदिन सभी दिशाओंमें प्रगति करने लगा। सारी शिक्षा मानो वह साथ ही लेकर जन्मा था। महान् कुशाग्रबुद्धि, तीव्रतम स्मरणशक्ति, न्याय-तर्कादिमें भी असाधारण पाण्डित्य, धनुर्विद्यामें निपुणता। सभी कुछ विलक्षण। सबसे विलक्षण वस्तु तो राजकुमारका अहिंसा-सुशोभित दयाद्रवित करुण-कोमल हृदय था। वे आखेट करने जाते तो मृगपर बाण न चलाकर उसे भाग जाने देते। घोड़ा थककर हाँफ जाता तो उतरकर उसका पसीना पोंछते, धीरे-धीरे सहलाते और बड़े प्यारसे पुचकारकर थपकी देते।

एक दिन राजकुमार बगीचेमें टहल रहे थे। बाणसे बिंधा एक हंस उनके पास आ गिरा। उन्होंने उसे उठाकर गोदमें ले लिया और बाण निकाला। राजकुमारके चचेरे भाई देवदत्तने उस उड़ते हंसको बाण मारकर गिराया था। देवदत्तने आकर उसे माँगा और कहा कि 'यह मेरा शिकार है, मैंने इसपर निशाना लगाया था। अतः इसपर मेरा अधिकार है।' सिद्धार्थने कहा—'पक्षीको मारनेवालेकी अपेक्षा उसे बचानेवालेका उसपर अधिक अधिकार है।' उन्होंने हंस नहीं दिया और जब हंस उड़नेयोग्य हुआ, तब उसे उड़ा दिया। देवदत्तने इस बातको अपने मनमें वैर मान लिया।

लक्ष्यवेध-परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर राजकुमारी यशोधराके साथ उनका विवाह हो गया। राजा शुद्धोदनने राजकुमारको वैराग्य न हो जाय—इस भयसे उन्हें सदा भोगसुखमें लिप्त रखनेका पूरा आयोजन कर दिया। सुन्दर राजप्रासाद, विभिन्न ऋतुओंका सौन्दर्य, विहरते हुए मनोरम नील कमलोंसे पूर्ण सरोवर, नित्य नवीन वस्त्राभूषण, स्वस्थ, सबल और आज्ञाकारी सदा उपस्थित सेवकसमुदाय, सेवार्थ विविध वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित तरुणियोंकी मण्डली, नित्य मनोहर गान, वाद्य और नर्तन। अपनी जानमें कुछ भी कसर नहीं रखी

राजाने। परंतु विधाताका विधान कुछ और था। सिद्धार्थका अवतार साधारण मानव प्राणियोंकी भाँति विषय-भोगोंमें प्रलिप्त रहनेके लिये नहीं, वरं स्वयं त्याग-वैराग्यके मूर्तिमान् स्वरूप बनकर जगत्के प्राणियोंको दुःख-दावानलसे बचानेके लिये हुआ था। अतः वैसा ही संयोग बन गया।

एक दिन वे शहरमें घूमने निकले। बड़ी व्यवस्था की गयी थी कि राजकुमारके सामने कोई ऐसा दृश्य न आने पाये, जिससे उनको वैराग्यकी प्रेरणा मिले। पर दैव-विधानसे एक वृद्ध सामने आ गया। उन्होंने देखा—श्वेत केश हैं, बदनपर झुर्रियाँ पड़ी हैं, दाँत नहीं हैं, गाल पिचके हैं, कुबड़ा शरीर है, धँसी आँखें हैं उनमें गीड़ भरी है और जल बह रहा है, देहमें मांस नहीं, चमड़ेसे ढका हड्डियोंका ढाँचामात्र है, फटा-मैला चिथड़ा लपेटे है, हाथमें लाठी है, बड़ी कठिनतासे चल पाता है। राजकुमारने पूछा, 'छन्दक! यह कौन है?' छन्दकने कहा—'कुमार! यह वृद्ध है, कभी यह भी जवान था, सुन्दर था, सबल था, वृद्धावस्थाने इसकी यह दशा कर दी है।' राजकुमारने व्यथित होकर फिर पूछा—'क्या यह वृद्धावस्था सभीकी होती है? क्या मेरी भी यही दशा होगी?' छन्दकने कहा—'जन्मके साथ जरा लगी रहती है। मनुष्य जीवित रहा तो बूढ़ा होगा ही, आप हों चाहे मैं।' राजकुमार सुनकर सहम गये। अहो! जवानीका सारा मद चूर्ण हो जाता है इस स्थितिमें। मेरी भी यही दशा होगी, यशोधराकी भी और गंगा-गौतमी आदि सखियोंकी भी। हाय! राजकुमारने कहा—'छन्दक! लौट चलो।'

राजाज्ञासे दूसरे दिन फिर राजकुमार छन्दकको साथ लेकर सेठ और मुनीमका वेश बनाकर निकले। आज एक रोगी मिल गया, जो पीड़ासे छटपटा रहा था। उसका सारा शरीर क्षत-विक्षत था, काँप रहा था, बड़ी बुरी दशा थी। राजकुमारके पूछनेपर

छन्दकने बताया—'यह रोगी है, इसीसे इतना परवश और दुःखी हो रहा है। रोग भी सभीको हो सकता है।' राजकुमारको जवानीपर तो अनास्था हो ही गयी थी। शरीरके स्वास्थ्यका भरोसा भी जाता रहा। तीसरी बार एक मुर्दा मिला। 'राम नाम सत्य है' बोलते हुए चार आदमी अर्थीको उठाये लिये जा रहे थे। घरके लोग पीछे-पीछे रोते हुए चल रहे थे। मुर्दा श्मशानमें ले जाकर जला दिया गया। राजकुमारने पूछा—'क्या सबकी यही गति होगी?' छन्दकने कहा—'जो जन्मा है, वह तो मरेगा ही।' राजकुमारका हृदय वैराग्यसे भर गया। वे महलमें लौट आये। सारे विलास-उल्लास, नृत्य-गान बंद हो गये। फिर एक बार राजकुमारने एक संन्यासीको देखा, उसने बताया कि वह जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिसे छूटनेके प्रयत्नमें लगा है। राजकुमारको यह बात बहुत अच्छी लगी। उन्होंने गृह-त्यागका निश्चय कर लिया।

राजाको पता लगा तो वे बहुत दुःखी हुए और राजकुमारका मन बदलनेके लिये विविध प्रयास करने लगे। विविध प्रकारके भोगोंसे लुभाये जानेका कुछ भी असर राजकुमारपर नहीं हुआ। पिता शुद्धोदनने बहुत तरहसे समझाया-बुझाया पर वे अपना निश्चय छोड़नेको तैयार नहीं हुए। राजाके बहुत कहने-सुननेपर राजकुमारने कहा—'अच्छा, यदि ऐसी ही बात है तो आप मेरी चार शर्तें स्वीकर कर लीजिये—मैं तपोवनमें नहीं जाऊँगा।'

न भवेन्मरणाय जीवितं मे
विहरेत् स्वास्थ्यमिदं च मे न रोगः।
न च यौवनं मा क्षिपेज्जरा मे
न च सम्पत्तिमिमां हरेद् विपत्तिः॥

अर्थात् 'मैं कभी मरूँ नहीं, मैं कभी बीमार न पड़ूँ, मैं कभी बूढ़ा न होऊँ और मेरी यह राज्य-सम्पत्ति सदा बनी रहे।'

राजाने इन शर्तोंको स्वीकार करनेमें असमर्थता प्रकट की। कुमारका निश्चय और भी दृढ़ हो गया। वे एक रातको अपनी प्रियतमा पत्नी यशोधरा और नवजात पुत्र राहुलको छोड़कर जानेके लिये तैयार हो गये। वे उस समय अधीर हो रहे थे मानो उन्हें मायापाशको तोड़कर तुरंत चले जानेके लिये कोई प्रबल और अपरिहार्य प्रेरणा प्राप्त हो रही है। यशोधरा मीठी नींदमें सो रही थी मानो बेला-पुष्पोंकी उज्ज्वल धवल चादरमें गुलाबोंका ढेर ढुलका हुआ हो। पास ही शिशु राहुल ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो गुलाबकी मृदु सुन्दर कली मुसकरा रही हो। कुमारने उनको देखा फिर आँखें फेर लीं। पुनः देखा—बस, 'यह सारा मायाजाल है, मेरा बन्धन है।' उन्होंने तीन बार पलंगकी परिक्रमा की और पत्नी, पुत्र, पिता, परिवार तथा समृद्धिके सारे बन्धनोंको तोड़कर वे तुरंत नीचे उतर आये। महलके नीचे जाकर सारथि छन्दकको जगाया और उसके द्वारा कन्थक घोड़ेको मँगवाकर वे उसपर सवार हो गये। कपिलवस्तुसे पैंतालीस कोस अनामाके उस पार जाकर उन्होंने छूरेसे अपने लम्बे केश काट डाले। राजसी वस्त्राभूषणोंको उतारकर सारथिको दे दिया और घोड़ेके साथ उसे लौटा दिया।

सच्चे धर्मकी खोजमें वे बहुत-से विद्वानोंके पास गये; पर कहीं संतोष न मिलनेपर वनमें एक वृक्षके नीचे बिना खाये-पीये बैठकर ध्यान करने लगे। कठोर तपसे उनका शरीर सूख गया।

एक दिन उस वनमेंसे कुछ स्त्रियाँ गाती हुई निकलीं—'वीणाके तारको इतना मत खींचो कि वह टूट जाय और इतना ढीला मत छोड़ो कि उससे स्वर न निकले।' इस गीतसे बुद्धने शिक्षा ली और कठोर तपका मार्ग छोड़कर 'मध्यम मार्ग' ग्रहण किया।

नाना प्रकारके बाधा-विघ्नोंको हटाते हुए, मार तथा राक्षसोंको अपनी दृढ़ प्रज्ञासे पराजित करते हुए उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया

पैंतीस वर्षकी अवस्थामें बोधिवृक्षके मूलमें। फिर तो जगत्के भूले प्राणियोंके उद्धारार्थ वे निकल पड़े। संघ बने। पैंतालीस वर्षतक इस धराधामपर सनातनधर्मका एक आकर्षकरूपमें विविध भाँतिसे प्रचार करके दुःख-विदग्ध प्राणियोंको शान्ति प्रदान करते रहे और अन्तमें कुशीनगरमें आकर मल्लोंके शालवनमें दो शाल वृक्षोंके बीचमें भिक्षु आनन्दके द्वारा बिछाये हुए चीवरपर लेट गये और लेटे-लेटे ही उन्होंने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया।

बुद्ध नास्तिक नहीं थे

भगवान् बुद्धने न तो किसी नये धर्मका प्रवर्तन किया और न अपनेको कभी किसी नवीन धर्मका संस्थापक या अवतार ही बतलाया। उस समयके देश-कालकी परिस्थितिको देखकर उन्होंने सनातनधर्म या हिंदूधर्मकी ही एक विशेष प्रकारसे व्याख्या की। वस्तुतः उन्होंने स्वयं धर्मका आचरण करके लोगोंको धर्मकी शिक्षा दी। उन्होंने जो कुछ उपदेश दिया, सब हिंदूधर्मके प्राचीन ग्रन्थ— वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता आदिके आधारपर ही दिया।

उन्हें नास्तिक, अनात्मवादी, दुःखवादी, अनीश्वरवादी और मरणोत्तर आत्माका अस्तित्व न माननेवाले कहा जाता है, पर ऐसी बात वास्तवमें है नहीं। उन्होंने आत्मा, मुक्ति , पुनर्जन्म, कर्मानुसार जन्म, ब्रह्मप्राप्त पुरुषकी स्थिति आदिको माना है और उनके सम्बन्धमें वही बातें कही हैं, जो परम्परासे हिंदू-धर्ममें मानी जाती हैं।

उदाहरणार्थ वेद-विरोधकी बात लीजिये—'बुद्धने (हिंसात्मक) कर्मकाण्डका विरोध किया। सो वस्तुतः सनातनधर्ममें भी ज्ञानके उच्च स्तरपर कर्मकाण्डरूप यज्ञोंको बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया गया है। वैदिक यज्ञके सम्बन्धमें मुण्डकोपनिषद्में आया है— '**प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः।**' और इन अदृढ़ नौकापर सवार होनेवालोंकी निन्दा की गयी है। गीतामें भगवान्ने भी कहा है—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

(२।४५)

और—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥

(२।४२)

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥

(२।४६)

—इनमें सकाम कर्मकाण्डका विरोध किया गया है, ज्ञानमय वेदका विरोध नहीं।

बुद्धभगवान्ने जगत्को दुःखमय माना है और इस दुःखसे त्राण पानेके लिये मार्ग बताया है। यही बात सारे सनातनधर्मके शास्त्रोंमें है। गीतामें भगवान्ने जगत्को दुःखमय बतलाया है—

'दुःखालयमशाश्वतम्', 'अनित्यमसुखं लोकम्।'
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(५।२२)

पर इसका अर्थ यह नहीं है कि दुःखातीत परम सुख नहीं है। भगवान्ने '**आत्यन्तिकसुखमश्नुते**' (गीतामें) कहा है, वैसे ही बुद्धभगवान् भी कहते हैं कि 'जीव' जहाँ पाशमुक्त होकर, विसंयुक्त होकर निर्वाणमें प्रतिष्ठित है, वहाँ विपुल सुख, अद्भुत परमानन्द—भूमानन्द है '**प्रामोद्य बहुल**' (पामोज्जबहुलो) बुद्धदेवने हिंदूधर्मकी भाँति ही स्वर्ग-नरक माने हैं। वे कहते हैं—'**सग्गां सुकृतिनो यस्सि निरये पापकम्मिनो अभूतवादी निरयं उपेति।**'

(धम्मपद)

'पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गमें जाते हैं और पापकर्मी लोग नरकमें। असत्यवादी नरकमें जाते हैं।' हिंदूधर्मकी भाँति ही उन्होंने कर्म-भेदसे पुनर्जन्म माना है और दैव, मानुष, नरक, पैशाच, पशु तथा तिर्यक्-योनिकी प्राप्ति वैसे ही बतलायी है, जैसे छान्दोग्य-उपनिषद्में उत्तम कर्म करनेवालोंके लिये उत्तम योनि और नीच कर्म करनेवालोंके लिये कूकर-सूकरादि नीच योनिकी प्राप्ति कही है।

बुद्धदेवको शून्यवादी कहते हैं—पर उनका शून्य वस्तुतः ब्रह्मवादियोंका अनिर्वचनीय अचिन्त्य ब्रह्म ही है—

यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत्।

'क्योंकि उन्होंने शून्यको 'अक्षय' कहा है।'

ये च सुभूते! शून्या अक्षया अपि ते।

जिसका कभी क्षय न हो, व्यय न हो, अपचय-उपचय न हो, वह अजर-अमर अक्षय शून्य है। वह शून्य ब्रह्मरूप है, यही परमानन्दस्वरूप है। गीतामें कहा है—'**सुखमक्षयमश्नुते।**'

अब रहा उनका निर्वाण—सो वस्तुतः ब्राह्मी स्थितिको ही बुद्धभगवान्ने निर्वाण कहा है—यही निर्वाण गीतामें आया है—'**ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति**'।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥

(५। २४—२६)

इस निर्वाणकी प्राप्तिके लिये बुद्धदेवने भी राग-द्वेष-मोह

आदिका त्याग साधन बतलाया है। निर्वाणकी प्राप्ति जीवित अवस्थामें भी होती है, उसे 'सोपाधि-शेषनिर्वाण' कहा है, यही हिंदूधर्मकी 'जीवन्मुक्ति' है और देहान्तके बाद होनेवाले निर्वाणको 'अनुपाधि-शेषनिर्वाण' कहा है, यही विदेहमुक्ति है।

निर्वाणका स्वरूप बतलाते हुए बुद्धदेवने कहा है—'हे भिक्षुओ! यहाँ अजात, अभूत, अकृत एवं असंघटित है— **अजातं अब् भूतं अकतं अब् संखतं।** वहाँ न वायु है, न जल है, न अग्नि है, न यह संसार है, न यह चन्द्रमा है, न सूर्य है, वहाँ सब दुःखोंका अन्त है। विपुल आनन्द है।' ठीक यही बात उपनिषद्‌में आयी है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

(कठ० २। २। १५, मुण्डक० २। २। १०)

'यत्र न सूर्यस्तपति, यत्र न वायुर्वाति, यत्र न चन्द्रमा भाति, यत्र न नक्षत्राणि भान्ति, यत्र नाग्निर्दहति, यत्र न मृत्युः प्रविशति, यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति, सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदम्।'

(बृहज्जाबाल-उपनिषद् ८। ६)

गीता भी कहती है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।

(१५। ६)

बुद्धदेव कहते हैं—वहाँ इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार नहीं है, सो ठीक ही है। इसीसे तो उपनिषद्‌में उसे 'नेति-नेति' कहा है और बताया है कि वह इन्द्रियोंसे अतीत, लक्षणसे अतीत, मनसे अतीत, वचनसे अतीत है।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो०।

(केनोपनिषद् १। ३)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

(ब्रह्मोपनिषद्)

पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह कुछ नहीं है। 'है' अवश्य, पर बतलाया नहीं जा सकता। इसीसे बुद्धदेव चुप रहे हैं। पर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि उस निर्वाणमें परम सुख है—भूमानन्द है—वहाँ अमानुषी रति, विपुल सुख तथा परमानन्द, भूमानन्दस्वरूप है, सारे दुःखोंका अन्त है, सुखमय शान्तपद है।

सम्पस्सं विपुलं सुखं, अमानुषी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो। निब्बाणं परमं सुखं।

ततो पामोज्ज बहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति॥
पामोज्ज बहुलो भिक्खू पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं संखारूपसमं सुखम्॥

(धम्मपद)

अतएव बुद्धदेवका निर्वाण—हिंदूधर्मका ब्रह्मस्वरूप ही है। वह निर्वाण अतर्क्य, अवर्ण्य, अकथ्य, अचिन्त्य होने तथा वहाँ व्यक्तिभावका विलोप एवं जीवभावका अभाव होनेपर भी 'नास्तित्व' नहीं है, यह अक्षय परम सुखरूप है। इस निर्वाणको प्राप्त पुरुषको ही 'अर्हत' (मुक्त) कहा गया है।

इससे सिद्ध है कि भगवान् बुद्धने अपने जीवनमें वैदिक विचारधाराका विरोध न करके उसीका अनुसरण किया था। उनके निर्वाणके बाद अपनेको बुद्धके अनुयायी माननेवाले लोगोंने स्वेच्छाचार किया। वेदका विरोध प्रत्यक्ष किया। वे एक प्रकारसे घोर वाममार्गी हो गये। इसीसे इस मतको 'नास्तिक' माना गया, इसका विरोध बहिष्कार हुआ और फलतः पतन भी हुआ!

बुद्धकी शिक्षा

बुद्धभगवान्ने चार 'आर्य सत्य' बतलाये हैं—दुःख, दुःखसमुदाय (दुःखकी उत्पत्ति), दुःख-निरोध (दुःखसे मुक्ति) और दुःखनिरोध-मार्ग (दुःख-मुक्तिका उपाय)। दुःखमुक्ति ही निर्वाण है, उसका अमोघ उपाय बतलाया गया है—आर्य-आष्टांगिक मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

सम्यक् दृष्टिका अर्थ है—यथार्थ विचार-दृष्टि, अनित्य-नित्य, अच्छे-बुरेकी पहचान, चार आर्य सत्योंका वास्तविक परिचय।

सम्यक् संकल्प—काम-क्रोध-हिंसा आदि दोषोंसे बचे रहनेका दृढ़ संकल्प।

सम्यक् वाणी—असत्य न बोलना, चुगली-निन्दा न करना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ न बोलना। सत्य, मित, हित, मधुर वाणी बोलना।

सम्यक् कर्मान्त—चोरी, व्यभिचार, प्राणिहिंसा आदि न करना।

सम्यक् आजीविका—शस्त्र, प्राणी, मांस, मद्य और विषका व्यापार न करना; अधर्म, अन्याय, हिंसासे पैसा न कमाना।

सम्यक् व्यायाम—बुरे विचारोंको उत्पन्न न होने देना, उत्पन्न बुरे विचारोंका नाश करना, अच्छे विचारोंको उत्पन्न करना, उत्पन्न अच्छे विचारोंकी रक्षा करना—उन्हें बढ़ाना। मानसिक और शारीरिक दुर्बलता न आने देना।

सम्यक् स्मृति—सदा सावधानी। क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये—इसकी स्मृति। कार्य करते समय भी यह ज्ञान कि मैं अमुक कार्य कर रहा हूँ।

सम्यक् समाधि—शुभ कर्मोंमें, सत्यमें चित्तका समाधान—निरोध।

इसीके साथ भगवान् बुद्धने गृहस्थ-भिक्षु दोनोंके लिये पाँच शील बताये हैं—हिंसा-विरति, मिथ्याभाषण-विरति, स्तेय-विरति, व्यभिचार-विरति और मादक द्रव्य-विरति। किसी प्राणीकी हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना और नशेकी किसी चीजका सेवन न करना।

इनके अतिरिक्त पाँच शील केवल भिक्षुओंके लिये और हैं—वे दस शीलोंका पालन करें। वे पाँच हैं—दोपहरके बादका भोजन न करना, नाच-गानका त्याग, माला आदि श्रृंगारका त्याग, बढ़िया शय्याका त्याग और सोने-चाँदीका त्याग। ये शील योगदर्शनके यम-नियमके आधारपर ही हैं। आजकल जो अन्ताराष्ट्रिय जगत्में पंचशीलकी चर्चा हो रही है, उनका मूल भी ये बुद्ध-भगवान्के उपर्युक्त पंचशील ही हैं।

निर्वाणकी प्राप्तिके लिये मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाकी शिक्षा दी गयी है, जो योगदर्शनमें आती है। समान स्थितिवालोंसे मित्रता, दुःखियोंके प्रति करुणा, सुखी लोगोंको देखकर प्रसन्नता, अपने प्रति बुराई करनेवालोंके प्रति उपेक्षा। इससे चित्तके राग-द्वेष-मोहादि मलोंका नाश होता है और साधक निर्वाणपदके योग्य होता है।

बुद्धभगवान्ने आत्माका प्रतिपादन चाहे उतना न किया हो, पर उन्होंने अपने अहिंसा तथा दयासे पूर्ण हृदयसे, दया-दृष्टिसे प्राणिमात्रमें एकात्माका अनुभव करके, जीवनको सहज सर्वभूतहितमें लगाकर वास्तविक आत्मदर्शनका परिचय दिया है, जो सबके लिये अनुकरणीय है। एक बात और है—बुद्धभगवान्ने जान-बूझकर ही साध्यका निर्णय न करके साधनपर विशेष जोर दिया है। साधन यथार्थ होनेपर साध्यकी प्राप्ति तो अपने-आप ही हो जायगी और तभी साध्यके यथार्थ स्वरूपका पता लगेगा। आत्मा,

ब्रह्म क्या है, संसार कैसे बना, कब बना, संसार अनादि अनन्त है या अनादि सान्त है, इसका कोई कर्ता है या नहीं, वह सगुण है या निर्गुण, आदि विषयोंपर उन्होंने कहना उचित नहीं समझा। वास्तवमें कहनेसे ये समझमें आते भी नहीं। इनका सम्यक् ज्ञान तो साधनसम्पन्न पुरुषको अपने-आप ही होता है। '**यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः**' उन्होंने समझा कि इन दार्शनिक प्रश्नोंकी उलझनमें पड़कर किसी मताग्रहको स्वीकार करना तथा जीवनके परम लक्ष्यकी प्राप्तिके साधनसे वंचित रहकर खण्डन-मण्डन करनेकी अपेक्षा साधनमें लगना—मार्ग तय करना श्रेयस्कर है। मनुष्यको चुपचाप अपने जीवनके परम लक्ष्यकी प्राप्तिमें ही लगे रहना चाहिये। इसीमें बुद्धिमानी है। उन्होंने एक बार भिक्षुओंसे इस आशयकी बात कही थी—'किसी आदमीके विषबुझा बाण लगा हो और बाण निकलवानेके लिये उसे किसी वैद्यके पास ले जाया जाय। वहाँ वह यदि यह कहे कि मैं तो बाण तभी निकलवाऊँगा जब मुझे इसका पूरा पता लग जायगा कि बाण चलानेवाला कौन था, किस जातिका था, मोटा था या दुबला; उसने बाण क्यों मारा, कब मारा। तो उसे मूर्ख ही माना जायगा। वह इन प्रश्नोंका उत्तर जाननेके फेरमें पड़ेगा तो उत्तर प्राप्त होनेके पहले ही मर जायगा। अतएव उसको जैसे इन प्रश्नोंके उत्तर पानेके बखेड़ेमें न पड़कर बाण निकलवाना चाहिये, वैसे ही तुम लोगोंको भी इन प्रश्नोंके चक्करमें न पड़कर राग-द्वेष-मोहसे छूटनेका उपाय करना चाहिये।'

इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध होता है कि कोई बाण मारनेवाला अवश्य है और उसने बाण मारा है। पर उसका पता लगानेकी अपेक्षा पहले बाण निकलवाना उचित है; इसी प्रकार सृष्टिकर्ता ईश्वर तो है ही, उसने सृष्टिकी रचना भी की ही है, परंतु अल्प

जीवनमें उसका पता लगानेके पहले संसारसे मुक्त होनेकी साधना करनी चाहिये। मुक्त होनेपर आप ही पता लग जायगा कि वह कौन है, कैसा है? अतएव बुद्धदेव नास्तिक नहीं थे। वे सनातन हिंदूधर्मके ही प्रचारक-प्रसारक थे और बुद्धधर्म भी कोई अलग धर्म नहीं है, वह विशाल वटवृक्षरूप हिंदूधर्मकी ही अलग दीखनेवाली एक महत्त्वपूर्ण शाखा है।

यह बड़े ही आनन्दकी बात है कि बुद्धभगवान्‌के जन्म तथा निर्वाणस्थान भारत तथा भारतेतर देशोंमें भी आज बुद्ध-महापरिनिर्वाण दिवसका महान् उत्सव मनाया जा रहा है। यद्यपि हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकारने उदारतावश अपने 'सेकुलेरिज्म' (धर्मनिरपेक्षता)-की सीमासे आगे पग बढ़ाया है, परंतु यह शुभ चिह्न है। आज सरकारके द्वारा बुद्ध-जयन्ती मनायी जाती है तो आगे चलकर हम कोटि-कोटि मनुष्योंके नित्य आराध्य भगवान् श्रीराम-कृष्णकी जयन्ती तथा शंकर-रामानुज आदि आचार्योंकी जयन्ती भी सरकारके द्वारा मनायी जानेकी आशा कर सकते हैं। पर एक बात अवश्य विचारणीय है। उत्सव मनाना, प्रभात फेरी निकालना, प्रवचन करना, नारे लगाना, बुद्धके जीवनसम्बन्धी नाटक-गान-वाद्य करना, बुद्धधर्मकी महत्ताके गुण गाना, भगवान् बुद्धकी प्रशंसा करना—उनके स्मारकादि बनवाना सभी उत्तम हैं, परंतु जबतक हम भगवान् बुद्धकी शिक्षाओंको, उनके जीवनके आदर्शको अपने जीवनमें नहीं उतारते, उतारनेका प्रयत्न नहीं करते, तबतक हमारा यह आयोजन आत्म-विडम्बना ही है। बुद्धभगवान्‌का वैराग्य, उनकी दयार्द्रता, उनकी सर्वभूतहितमें सहज रति, उनकी अहिंसा, उनका राग-द्वेष-मोह-त्याग, उनकी समता, उनका सर्वस्व-त्याग आदि महान् गुणोंमेंसे कुछ भी हमारे जीवनमें प्रकट हो जाय तो हमारा आजका यह घृणा, द्वेष, हिंसा,

अनाचारसे पूर्ण और अणु तथा उद्‌जनबमोंसे आतंकित संसार प्रेम और आनन्दका स्वर्ग बन सकता है। तभी जयन्ती मनाना भी सार्थक है। पर यदि बुद्धकी जयन्ती मनाना भी हमारा एक बाहरी दिखावा या मत-प्रचार, खुले स्वेच्छाचार-अनाचारके प्रचार और बौद्धमतावलम्बियोंकी संख्या-वृद्धिका साधन ही रहा या इसका उपयोग इसीमें किया गया तो हम अपनेको और मानव-समाजको धोखा ही देंगे। अतः हमें भगवान् बुद्धको श्रद्धांजलि अर्पण करनेके साथ ही यह भी निश्चय करना चाहिये कि हम उनके पवित्र त्याग, दया, अहिंसा* और राग-द्वेषरहित सर्वभूतहितके आदर्शको जीवनमें उतारें।

भगवान् बुद्धकी जय हो!

* आजके सर्वभक्षी बौद्ध देशोंमें और बुद्धभगवान्‌के अनुयायियोंमें हिंसाका जो प्रचार बढ़ा हुआ है, वह बड़ा ही दुःखद और बुद्धकी जीवन-शिक्षाके सर्वथा विरुद्ध है। बुद्धके भक्तोंको बुद्ध-जयन्तीके इस पवित्र अवसरपर जीवनभर मांसाहार तथा प्राणिहिंसासे सर्वथा विरत होनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

बदला लेने या देनेवाले सात प्रकारके पुत्र

(१) अपनी पूर्वजन्मकी रखी धरोहरको लेनेके लिये, (२) अपने पूर्वजन्मका ऋण चुकानेके लिये, (३) पूर्वजन्मका वैर लेनेके लिये, (४) पूर्वजन्ममें प्राप्त अपकारके बदले अपकार करनेके लिये, (५) पूर्वजन्ममें प्राप्त सेवा-सुखके बदलेमें सेवा-सुख देनेके लिये, (६) पूर्वजन्ममें प्राप्त उपकारके बदलेमें उपकार करनेके लिये और (७) निरपेक्ष। इनमें जो जिस कामके लिये पुत्र बनकर आते हैं, वे कर्मानुसार अपना काम पूरा करके मर जाते हैं या कर्मानुसार दीर्घ कालतक जीवित रहकर बदला लेते-देते रहते हैं।

केवल पुत्र ही नहीं—पत्नी, पति, भाई, बहिन, नौकर तथा गौ आदि पशुतक कर्म-ऋण लेने या चुकानेके लिये पूर्वजन्मानुसार सम्बन्ध जोड़कर सीमित या दीर्घ कालके लिये प्राप्त होते हैं।

गया-पिण्ड सभीको दीजिये

किसी भी जाति-वर्णका कोई भी मनुष्य हो, वह मरकर कर्मवश प्रेतयोनिमें जा सकता है और प्रेतयोनिके प्राणियोंके लिये गया-श्राद्धकी बड़ी आवश्यकता होती है। अतएव गयामें या कहीं भी पिण्डदान किया जाय तो अपने कुटुम्बके लिये ही नहीं, बन्धु-बान्धव, मित्र, शत्रु, परिचित-अपरिचित जो कोई भी याद आवे, सबको पिण्डदान करवाना चाहिये। परिचित प्रेत तो आशा-प्रतीक्षा करते रहते हैं और समयपर प्रत्यक्ष होकर माँग भी लेते हैं। एक व्यक्ति गया-श्राद्ध करने गये थे। वहाँ एक दिन रात्रिको एक नौजवान नाई-प्रेतने प्रकट होकर कहा, 'मैं आपके गाँवका अमुक नाई हूँ, मुझे पिण्ड दीजिये'। वे उसे पहचानते नहीं थे, पर पिण्डदान दे दिया। घर लौटनेपर पता लगाया तो मालूम हुआ कि 'कई वर्ष पूर्व इस नामका एक नौजवान नाई मर गया था।'

अन्य धर्मावलम्बी भी सद्गतिके लिये गया-पिण्ड चाहते हैं

अंग्रेजी राज्यमें कलकत्तेमें ब्रिटिश तथा पश्चिमीय देशोंके सैकड़ों व्यापारी-संस्थान (फर्म) थे, जो प्रायः आयात-निर्यातका व्यापार करते थे। उनके साथ बाजारके व्यापारियोंसे क्रय-विक्रयका सौदा करानेवाले सैकड़ों बड़े-बड़े प्रतिष्ठित भारतीय फर्म थे, जो कमीशनपर मध्यस्थका काम करते थे। एक अंग्रेज फर्म था श्रीएण्ड्रयू यूल कम्पनी (Andrew Yule Co.) जो अब भी है। उसके मध्यस्थका काम करनेवाला था—कलकत्तेका प्रसिद्ध 'जटिया' फर्म।

इस जटिया फर्मके बड़ोंके दिवंगत हो जानेपर स्व० श्रीकन्हाईलाल जटिया गया-श्राद्ध कराने गये थे। वहाँ चतुर्दशीकी रात्रिको इन्हें उपर्युक्त ईसाई फर्मके दिवंगत श्रीयूल (yule) साहेब दिखायी दिये और उन्होंने इनसे अपने लिये पिण्डदान करनेका अनुरोध किया और दूसरे दिन वह पिण्डदान किया गया।

एक मृत पारसी आत्माने एक सज्जनसे कहकर अपने लिये गयामें पिण्डदान करवाकर सद्गति प्राप्त की थी।

प्रारब्ध नहीं बदल सकता

प्रारब्धका न तो फल भुगताये बिना नाश होता है, न प्रारब्ध बदल सकता है। परंतु मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र होनेके कारण यदि सम्यक् प्रकारसे शास्त्रोक्त देवाराधन, सेवा, भगवदाराधन आदि प्रबल कर्म करे तो तुरंत नवीन प्रारब्धका निर्माण हो सकता है। और वह प्रारब्ध फलदानोन्मुख पहले प्रारब्धके बीचमें अपना फल दे देता है। जैसे—फलदानोन्मुख प्रारब्धमें पुत्र-प्राप्तिका योग नहीं है, पर यदि पुत्रेष्टि-यज्ञ विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाय तो नवीन प्रारब्धके निर्माणसे पुत्र प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार अन्यान्य विषयोंके लिये भी समझना चाहिये। प्रबल शाप-वरदानसे भी तुरंत नया प्रारब्ध बन सकता है। वास्तवमें उत्तम तो यही है कि भौतिक प्राणिपदार्थ-परिस्थितियोंके लिये प्रारब्ध-निर्माणका प्रयत्न न कर भगवान्‌का निष्काम भजन करना और प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल भोगको भगवान्‌का मंगल विधान जानकर नित्य प्रसन्न रहना चाहिये। संसारकी प्रत्येक स्थितिमें समता और भगवान्‌में अनन्य ममता करनी चाहिये।

कर्म रहते जीवकी मुक्ति नहीं

कर्म तीन प्रकारके हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। जो नये कर्म कामना-अहंकारसे किये जाते हैं, वे 'क्रियमाण' हैं, वे संचितमें चले जाते हैं, जैसे खेतसे अनाज आया और अन्नके कोठारमें चला गया। 'संचित' उनका नाम है, जो अनन्त जन्मोंके अच्छे-बुरे कर्म-फल बिना भुगताये पड़े हैं और जिनमें नये कर्म जमा हो रहे हैं। उस संचित कर्मराशिमेंसे एक जन्ममें फल भुगतानेके लिये जो कर्म पृथक् हो जाते हैं और जन्मसे पहले ही जिनका फल निर्माण हो जाता है उन फलदानोन्मुख कर्मोंको 'प्रारब्ध' कहते हैं। जबतक नये कर्म बनते रहते हैं और जबतक संचित कर्मोंका नाश नहीं हो जाता, तबतक जीव बन्धनमुक्त नहीं हो सकता, उसे कर्मफल-भोगके लिये बार-बार सत्-असत् योनियोंमें जन्म धारण करना और स्वर्ग-नरकादि लोकोंमें जाना-आना पड़ता ही है। अहंकार, कामना न रहनेपर नवीन कर्म संचितमें नहीं जाते और ज्ञानकी अग्नि अथवा भगवान्की शरणागतिसे संचितकी कर्मराशि जल जाती है, तब जीव मुक्त हो जाता है, अतएव अहंकार-कामनाका त्याग करके भगवच्छरणागतिपूर्वक सब कुछ भगवान् ही हैं, ऐसा समझते हुए भजन करना चाहिये। मनुष्य-जीवनका यही चरम और परम ध्येय है।

मरनेके समय रोगी क्या करे ?

मृत्युके समय होश रहे तो रोगीको रोगमें 'तप' की तथा मरणमें 'मुक्ति' की दृढ़ भावना करनी चाहिये। वैराग्यपूर्वक घरका, जगत्का चिन्तन छोड़कर भगवन्नामका मन-ही-मन जप-स्मरण करना चाहिये। वृत्ति लग सके तो भगवान्के जिस रूपमें रुचि हो, उसका ध्यान करना चाहिये। सम्भव हो तो भगवान्का कोई सुन्दर चित्र सामने रखकर उसे देखते रहना चाहिये। सुनानेवाले हों तो श्रीमद्भगवद्गीताका आठवाँ, पंद्रहवाँ अध्याय, रामचरितमानसका जटायुका मरण-प्रसंग अथवा भगवन्नामकी ध्वनि सुननी चाहिये, जिससे मन भगवान्में ही लग जाय।

घरवाले स्नेहीजनोंसे घरकी बात, उनके सुख-दुःखकी बात, जगत्के किसी भी विषयकी चर्चा बिलकुल नहीं करनी चाहिये, न सुननी चाहिये।

अच्छी संतानके लिये क्या करे ?

हो सके तो गर्भाधानके समय सावधान रहकर पति-पत्नी दोनों सत्-संतान पुत्र या कन्या (जिसकी इच्छा हो)-की प्राप्तिके लिये मनमें दृढ़ संकल्प करें।

जिस प्रकारकी वीर, धीर, भक्त , ज्ञानी, योगी, उदार आदि भावोंकी संतान अपेक्षित हो, उसी प्रकारके पुरुषों या स्त्रियोंके चित्र जिस कमरेमें गर्भिणी स्त्री रहती और सोती हो उसमें लगावे।

गर्भकालमें स्त्री पुरुष-सहवास कभी न करे। ईश्वरनिन्दा, लड़ाई, कलह, विवाद, दुःख, शोक, विषाद, भय, क्रोध, हिंसा, असत्य, चोरी, छल, निन्दा-चुगली आदिसे सर्वथा बचे।

उपनिषद् , श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतपुराण, श्रीरामायण आदिकी कथाएँ, भक्तगाथाएँ रोज सुने-पढ़े। सदा प्रसन्न रहे। सेवा-शुश्रूषा, सात्त्विक कर्म, सात्त्विक बातचीत करे। सात्त्विक सादा भोजन करे। तामसिक वस्तुएँ—मांस, अंडे, मछली, मद्य, प्याज, लहसुन तथा जूँठन कभी न खाय। शारीरिक श्रम करे; पर ऐसा श्रम न करे जो गर्भविघातक हो।

रोज बड़ोंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करे। हो सके तो प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करे। विष्णुसहस्रनाम आदिका पाठ करे।

मृतात्माका आवाहन क्या सत्य है?

एक सज्जन पूछते हैं—'मृतात्माओंका आवाहन किया जाता है। आत्मा आते हैं। बात करते हैं। यह कहाँतक सत्य है?'

इसका उत्तर है कि मृतात्मा आ सकते हैं, आते हैं। बिना बुलाये भी स्वेच्छासे, किसी भी वासना या ममताको लेकर, उनमेंसे जिनकी शक्ति हो, वे प्रकट दिखायी भी दे सकते हैं। तिपाई, प्लेंचेट तथा माध्यमद्वारा भी बात कर सकते हैं। यह वास्तवमें सत्य है। परंतु मृतात्माओंको बुलाने, बात करने-करानेके जितने प्रसंग कहे-सुने जाते हैं, वे सब सत्य ही हों, ऐसी बात नहीं है। इसमें विभिन्न कारणोंसे बहुत झूठ-फरेब चलता है। पैसे कमाने, ठगने, अन्य स्वार्थ-साधन करने, अपनी महत्ता दिखलाने, नाम-यश प्राप्त करने या किसीको डरा-धमकाकर छिपे तौरपर वैर लेने आदिके लिये मिथ्या ढोंग रचे जाते हैं। विदेशोंमें ऐसे बहुत-से जालसाज लोगोंपर मुकदमे चलाये जाकर उन्हें सजा दी गयी है। अब भी ऐसे लोग पकड़े जाते हैं (श्री Simeon Edmunds लिखित Spiritulism a critical survey नामक पुस्तकका 'Fraud' शीर्षक अध्याय देखिये)। मुझे तो अपने देशके ही प्रसिद्ध आत्मा-आह्वानकारी कुछ सज्जनोंकी सत्यतापर सप्रमाण संदेह है। परंतु सभी मिथ्यावादी हैं, ऐसी बात भी नहीं है। कई जगह तो उनके अपने मस्तिष्ककी कमजोरी, प्रबल भावना, माध्यमके चित्तकी दुर्बलता आदिके कारण भी धोखा हो जाता है। समझा जाता है—आत्माका आना, पर वस्तुतः होती है—केवल अपने या दूसरेके मस्तिष्ककी कल्पना ही। तथापि यह सर्वथा अनुभूत सत्य है कि 'आत्मा आते हैं और बात भी करते हैं।'

मृत्युके बाद क्या किया जाय ?

किसीकी मृत्युके बाद शास्त्रोक्त पिण्डदान, नारायण-बलि और तर्पण-श्राद्ध आदि अवश्य-अवश्य किये जायँ। मृतात्माके लिये अपनी शक्तिके अनुसार अन्न, जल तथा वस्त्रका दान अवश्य करें, उसकी जिस भोजनमें रुचि थी, वैसा भोजन किसी सरल सदाचारी ब्राह्मणको करावें। सम्भव हो तो गोदान अवश्य करें, पर गौ होनी चाहिये स्वस्थ, जवान, नयी ब्यायी हुई, दूध देनेवाली तथा गोदान लेनेवाला होना चाहिये—गौकी सेवा करनेवाला तथा लोभवश उसको किसी अनुचित व्यक्तिके हाथ न बेच देनेवाला।

मृतात्माके कल्याणके लिये अखण्ड भगवन्नामकीर्तन अवश्य किया जाय। भगवान्‌के नामोंका जप किया जाय। श्रीविष्णुसहस्रनामके तथा श्रीमद्भगवद्‌गीताके जितने भी हो सके, अधिक-से-अधिक पाठ घरवाले स्वयं करें या दूसरोंके द्वारा करवायें। श्रीमद्भागवतका सप्ताह पाठ एक या अधिक किया या कराया जाय। गायत्री-मन्त्रके चौबीस लाख या अधिक, (कम-से-कम चौबीस हजार) जप किये-कराये जायँ। गया-श्राद्ध अवश्य किया जाय। ऐसा करनेसे मृतात्माको, वह किसी भी लोकमें हो, सुख-शान्ति मिलती है तथा दुर्गतिमें हो तो सद्‌गति प्राप्त होती है।

श्राद्धकी अनिवार्य आवश्यकता

मृतात्माके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि अवश्य करने चाहिये। प्रतिदिन ही तर्पण तथा बलिवैश्वदेवके अंगस्वरूप श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। वैसे आश्विन कृष्ण पक्षमें मृतककी निधन-तिथिको तथा जिस मासमें जिस तिथिको मृत्यु हुई थी, उसी मासकी उस तिथिके दिन प्रतिवर्ष अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। यदि मृतात्मा यमलोकके प्रेतविभाग या पितृविभागमें है, तब तो उसकी भयानक भूखमें इससे बड़ी तृप्ति मिलेगी। देवलोकमें चला गया है या किसी स्थूल शरीरको प्राप्त हो गया है तो वहाँ भी उस देहके अनुरूप तृप्तिकारक वस्तुके रूपमें परिणत होकर वह उसे मिल जायगा। जीव जहाँ भी होता है, वहीं उसको उसके अनुरूप होकर वह वस्तु मिल जाती है, वैसे ही जैसे सुदूर देशमें भारतसे प्रेषित रुपये, प्रेषणविभागद्वारा वहाँ भेज दिये जाते हैं और वहाँके प्रचलित सिक्केके रूपमें (जैसे भारतका रुपया अमेरिकामें डालरके रूपमें मिल जाता है, वैसे ही) जिसके नाम भेजे गये हैं, उसको मिल जाते हैं।

श्राद्धके अतिरिक्त समय-समयपर मृतकके लिये अन्नदान, जलदान और वस्त्रदान तो यथाशक्ति करते ही रहना चाहिये।

ऐसा कहा जाता है कि गया-श्राद्ध करनेपर या अमुक तीर्थमें पिण्ड देनेपर उसके लिये श्राद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि वह प्राणी मुक्त हो जाता है। यह सत्य भी हो सकता है। परंतु यदि कदाचित् किसी कारणवश वह मुक्त न हुआ हो तो श्राद्ध न करनेसे वह आत्मा अतृप्त, दु:खी रह जाता है तथा हम कर्तव्यसे

च्युत होते हैं। अतएव गया-श्राद्ध या तीर्थमें विशेष पिण्डदान देनेके बाद भी श्राद्ध तो करते ही रहना चाहिये।

जिसके लिये श्राद्ध किया जाता है, कदाचित् वह मुक्त हो गया तो यहाँ किया हुआ श्राद्धकर्मरूपी पुण्य, वैसे ही कर्त्ताके पास लौट आता है, जैसे किसीके नाम मनीआर्डर या बीमा भेजे जानेपर उसके मृत हो जाने या न मिलनेपर भेजनेवालेके पास वापस लौट आता है। अतएव हर हालतमें श्राद्धकर्म करना ही चाहिये।

मृतकके लिये श्राद्धकी अनिवार्य आवश्यकता है।

वैरसे भयानक दुर्गति

यदि कोई तुम्हारी बुराई करे तथा तुमसे वैर रखे तो उसको भूला हुआ मानो; क्योंकि तुम्हारी बुराई तो तुम्हारे प्रारब्धके बिना हो नहीं सकती; वह अपनी ही बुराई कर रहा है। अत: दयाका पात्र है। उसको क्षमा करो तथा भगवान्‌से प्रार्थना करो कि वे उसकी बुद्धिको सुधार दें। तुम अपने मनमें कभी वैर मत रखो; क्योंकि वैर सदा जलाता रहता है। मरनेके बाद नरकोंमें डालता है और वैररूप बनाकर उत्तरोत्तर अधोगतिमें ले जाता है।

एक घटना है—एक भले आदमीने एक छूरा खरीदा था, जिसके हाथमें लेते ही मनमें हिंसाके भाव जाग उठते थे। पर वे संयमी पुरुष अपनेको रोके रखते थे। एक दिन वे छूरा हाथमें लिये 'ऐसा क्यों होता है'—इस विचारमें बैठे थे कि मनमें बड़ा उद्वेग हुआ और क्रोधमें भरा हुआ एक पठान सूक्ष्मरूपमें दिखायी पड़ा। वह उनके शरीरमें धँसना चाहता था पर उनकी सात्त्विक वृत्तिके कारण धँस पाता नहीं था। पता लगा कि उस पठानकी स्त्रीका किसी अन्य पुरुषसे अवैध सम्बन्ध था और पठानने इसी छूरेसे उन दोनोंको मार दिया था। फिर तो वह स्त्री-जातिका वैरी बन गया एवं दो स्त्रियोंकी और हत्या करके स्वयं मारा गया। तबसे वह इस छूरेके साथ सूक्ष्मरूपसे रहने लगा और जिसके हाथमें छूरा गया, उसीके द्वारा स्त्रियोंका वध कराने लगा। इस बातका पता लगनेपर उस भले आदमीने उस छूरेको चूर-चूर करके जमीनमें गाड़ दिया। इस घटनासे पता लगता है कि वैर मनुष्यकी किस प्रकार परलोकमें भी भयानक दुर्गति कराता है।

सुपुत्रके लक्षण तथा उसकी प्राप्तिका उपाय

कुलोद्धारक श्रेष्ठ पुत्र

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—'अर्जुन! योगभ्रष्टका न तो इस लोकमें नाश (पतन) होता है, न परलोकमें ही। वह कल्याण-कर्म (भगवदर्थ-कर्म) करनेवाला दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके उत्तम लोकों (स्वर्गादि)-को प्राप्त होकर वहाँ बहुत समयतक निवास करके तदनन्तर पवित्र आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है। अथवा (उन लोकोंमें न जाकर) ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेता है, परंतु इस प्रकारका जन्म इस संसारमें बहुत ही दुर्लभ है।'

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥

(गीता ६। ४०—४२)

इससे यह सिद्ध है कि पूर्व-जन्मका सुसंस्कृत, उन्नत, साधनरत पुरुष पवित्राचार श्रीमानोंके अथवा ज्ञानवान् योगियोंके घरमें जन्म लेता है। ऐसा ही या इसी श्रेणीका भक्तिमान् पुत्र ही दुर्लभ पुत्र है, जो अपने चित्तको अपार संवित्-सुखसागर-परब्रह्ममें लीन करके कुलको पवित्र, माताको कृतार्थ और पृथ्वीको पुण्यवती बनाता है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

(स्क० माहे० कौ० खण्ड ४२। १४०)

श्रीतुलसीदासजी महाराजने ऐसे भगवद्भक्तको भगवान्‌से भी बढ़कर बतलाया है और कहा है कि जो भगवद्भक्त पुत्रको जन्म देती है, वही पुत्रवती युवती है, साधारण पुत्रोंको जनना तो पशु-मादाकी तरह व्यर्थ ब्यानामात्र है। वह कुल जगत्-पूज्य, सुपवित्र और धन्य है, जहाँ श्रीभगवान्‌के परायण विनीत पुरुष प्रकट होते हैं।

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥
सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीरपरायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

श्रीमद्भागवतमें धर्मराज युधिष्ठिरने संत विदुरजीसे कहा है—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(१। १३। १०)

'प्रभो! आप-जैसे भगवान्‌के प्रिय भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान् गदाधरके द्वारा तीर्थोंको महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं।' देवर्षि नारद तो यहाँतक कह देते हैं—

'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।' 'तन्मयाः मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति!'

(नारदभक्तिसूत्र ६९—७१)

ऐसे भक्त तीर्थोंको महातीर्थ, कर्मोंको सुकर्म और शास्त्रोंको सत्-शास्त्र बना देते हैं, क्योंकि वे भगवान्‌के साथ तन्मय हैं, ऐसे भक्तोंका आविर्भाव देखकर पितरगण प्रमुदित हो जाते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सनाथा हो जाती है। पद्मपुराणमें कहा है—

आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति॥

पितृ-पितामहगण अपने वंशमें भगवद्भक्तका जन्म हुआ देखकर यह हमारा उद्धार कर देगा, इस आशासे प्रसन्न होकर नाचने और ताल ठोंकने लगते हैं।

जिनके घर ऐसा भक्तिमान् पुत्र होता है, वे ही भाग्यवान् हैं, परंतु ऐसा भक्तिमान्, ज्ञानवान्, योगी पुत्र उन्हींके होता है, जो पवित्र, ज्ञानवान्, भक्त हों और जिनपर भगवान्‌की कृपा हो। भगवान्‌की कृपाके बिना ऐसा पुत्र नहीं हो सकता। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

संसारे यस्य सत्पुत्रा भक्तिमन्तः सदैव हि॥
सुशीला ज्ञानसम्पन्नाः सत्यधर्मरताः सदा।
सम्भवन्ति गृहे तस्य यस्य विष्णुः प्रसीदति॥

× × × ×

विना विष्णोः प्रसादेन दारान् पुत्रान् न चाप्नुयात्।
सुजन्म च कुलं विप्र तद्विष्णोः परमं पदम्॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड)

जिसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, उसीके घरमें सदा सुशील, ज्ञानवान् और सत्य-धर्मपरायण पुत्र होते हैं। संसारमें उसीको भक्तिमान् श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति हुई है, जिसपर भगवान्‌की कृपा है। (जैसे भगवत्-कृपा बिना सत्-पुत्र नहीं मिलता, वैसे

ही भगवत्कृपाके बिना उत्तम जन्म, उत्तम कुल भी नहीं मिलता। इसलिये वसिष्ठजी कहते हैं कि) 'भगवान् विष्णुकी कृपाके बिना कोई भी उत्तम स्त्री, उत्तम पुत्र, उत्तम जन्म, उत्तम कुल और श्रीविष्णुके परम धामको नहीं पा सकता।'

श्रेष्ठ पुत्रके लक्षण

उत्तम पुत्रके पवित्र लक्षण बतलाते हुए वसिष्ठजीने कहा है कि जिसका मन सदा पुण्यमें लगा हो, जो सदा सत्य-धर्मके पालनमें तत्पर रहता हो, जो बुद्धिमान्, ज्ञान-सम्पन्न, तपस्वी, श्रेष्ठ वक्ता, सब कर्मोंमें कुशल, धीर, वेदाध्ययनपरायण, सम्पूर्ण शास्त्रोंका व्याख्याता, देवता और ब्राह्मणोंका उपासक, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, ध्यानी, त्यागी, प्रिय वचन बोलनेवाला, भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर, नित्य शान्त, जितेन्द्रिय, सदा जप करनेवाला, पितृभक्तिपरायण, सदा सब स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाला, कुलका उद्धार करनेवाला, विद्वान् और कुलको संतुष्ट करनेवाला हो—ऐसे गुणोंसे युक्त सुपुत्र ही यथार्थ सुख देता है। इसके अतिरिक्त अन्य भाँतिके पुत्र तो सम्बन्ध जोड़कर केवल शोक और संताप ही देते हैं—

अन्ये सम्बन्धसंयुक्ताः शोकसंतापदायकाः।

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड १७। २०—२५)

विद्वान् एक पुत्र भी श्रेष्ठ है, बहुत-से गुणहीन पुत्रोंसे क्या लाभ; क्योंकि सुपुत्र एक ही वंशको तार देता है, दूसरे तो केवल संताप ही देते हैं—

एकः पुत्रो वरं विद्वान् बहुभिर्निर्गुणैस्तु किम्।
एकस्तारयते वंशमन्ये संतापकारकाः॥

(प०, भू० ११। ३९)

पाँच प्रकारके पुत्र

पुत्र पाँच प्रकारके होते हैं—१-धरोहर रखनेवाला, २-ऋण देनेवाला, ३-शत्रुता रखनेवाला, ४-उपकार तथा सेवा करनेवाला तथा ५-उदासीन।

(१) जिसने जिसकी जिस भावसे धरोहर हड़प ली है, वह उसी भावसे उसके यहाँ जन्म लेता है। धरोहरका मालिक रूपवान् और गुणवान् पुत्र होकर जन्म लेता है और धरोहर हरण करनेका बदला लेनेके लिये दारुण दुःख देकर चला जाता है।

(२) जिसने पिछले जन्ममें ऋण दिया था, वह ऋण चुकानेके लिये जन्म लेता है। वह सदा ही अत्यन्त दुष्टतापूर्ण बर्ताव करता है। गुणोंकी ओर तो वह कभी देखता ही नहीं। क्रूर स्वभाव और बड़ी निष्ठुर आकृति बनाये अपने स्वजनोंको डाँट-फटकार और गाली-गलौज सुनाया करता है। स्वयं सदा मीठी-मीठी वस्तुएँ खाया करता है। घरमें रहकर बलपूर्वक धनका उपभोग करता है, रोकनेपर क्रोध करता है और ऋण चुकानेके लिये यों दुःख देकर मर जाता है या स्वयं स्वामी बन जाता है।

(३) पूर्वकालका शत्रु बाल्यावस्थासे ही शत्रुओंका-सा बर्ताव करता है। खेल-कूदमें भी माता-पिताको बुरी तरह मार-मारकर भागता है और बार-बार हँसा करता है। क्रोधी स्वभावको लेकर ही बड़ा होता है और सदा वैरके काममें लगा रहता है। प्रतिदिन पिता-माताकी निन्दा करता है। नाना प्रकारसे धनका अपव्यय करता है। सब कुछ हथियाकर माता-पिताको पीटता है। उनके मरनेपर न श्राद्ध करता है और न कभी उनके लिये दान करता है।

(४) पूर्वकालमें उपकार पाया हुआ पुत्र बचपनसे ही माता-पिताका प्रिय कार्य करता है। बड़ा होनेपर भी उनको सुख पहुँचानेमें लगा रहता है और अपनी भक्तिसे सदा

माता-पिताको संतुष्ट रखता है। स्नेहसे, मधुर वाणीसे, प्रिय लगनेवाली बात-चीत और सेवासे उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् विधिवत् श्राद्ध और पिण्डदानादि कर्म करता रहता है तथा उनकी सद्गतिके लिये तीर्थ-यात्रा भी करता है।

(५) पाँचवाँ उदासीन बालक सदा उदासीनभावसे रहता है, वह न कुछ देता है, न लेता है, न रुष्ट होता है, न सन्तुष्ट होता है।

जिनकी धरोहर रख ली गयी हो, जिनके ऋणका धन हड़प कर लिया गया हो और जिनसे वैरभाव रखा गया हो ऐसे लोग बदला चुकानेके लिये पुत्र होकर सदा दुःख ही देते हैं। जिनका उपकार किया गया हो, वे सेवा करते—सुख पहुँचाते हैं और जिनसे कोई खास सम्बन्ध न रहा हो वे उदासीन होकर रहते हैं। पुत्रोंकी यही गति है। प्रायः ऋणानुबन्धसे ही यहाँ सम्बन्ध हुआ करते हैं। शास्त्र कहते हैं कि पुत्र ही नहीं, ऋणानुबन्धसे पिता, माता, पत्नी, पति, बन्धु-बान्धव, नौकर यहाँतक कि हाथी, घोड़े, भैंस, गाय आदि बनकर भी अपना-अपना बदला चुकानेका जीव-सम्बन्ध जोड़ा करते हैं।

वस्तुतः मनुष्यको मोक्ष या भगवत्प्राप्ति तो उसके अपने साधनसे ही प्राप्त होती है। पुत्र यदि पुण्यात्मा और भक्त होता है तो उससे भी सहायता मिलती है, परंतु पुत्रके मोहमें फँस जानेपर दुर्गति भी होती है। पुण्यात्मा और भक्तिमान् पुत्रकी प्राप्ति कठिन है ही, अतएव पुत्र न होनेपर दुःखी होना और अपनेको भाग्यहीन मानना कदापि बुद्धिमत्ता नहीं है। तथापि जिनको पुत्र न होता हो और पुत्रकी बड़ी प्रबल चाह हो—उनको शारीरिक रोगके लिये औषधोपचार करानेके साथ ही निम्न-लिखित कार्य करने चाहिये। पुत्रेष्टि-यज्ञसे तो यज्ञ यथार्थरूपसे

सम्पन्न होनेपर नवीन प्रारब्ध बनकर प्रायः पुत्र होता ही है, इन उपायोंसे भी सद्गुण-सम्पन्न पुत्रका उत्पन्न होना माना गया है।

पुत्र-प्राप्तिके साधन

(१) श्रद्धा-भक्तिके साथ पति-पत्नीको—दोनोंको मन लगाकर 'श्रीहरिवंशपुराण' मूल, अर्थसहित श्रवण करना चाहिये। कथावाचक पण्डित सात्त्विक प्रकृतिके, सदाचारी, वयोवृद्ध तथा भगवान्‌में एवं इस अनुष्ठानमें विश्वास करनेवाले होने चाहिये। उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा तथा सम्मान देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। एक बारमें फल न हो तो तीन बार श्रवण करना चाहिये। पुराणकथा-श्रवण समाप्त होनेपर द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रसे दशांश हवन तथा विधिपूर्वक तर्पण-मार्जन करके ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये।

(२) एक 'संतान-गोपाल' मन्त्र है—

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥

हो सके तो इस मन्त्रका जप श्रद्धा तथा विश्वासके साथ पति-पत्नी दोनोंको करना चाहिये। प्रातःकाल स्नान करके पुरुष अपने सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करने तथा स्त्री नियमित दैनिक जप-पाठ आदि करनेके बाद तुलसीकी मालासे मन्त्रका जप करें। जपके समय सामने किसी पवित्र धोयी हुई चौकीपर या दीवालपर भगवान् श्रीकृष्णका सुन्दर चित्रपट काँचमें मढ़ाया हुआ रखना चाहिये और भगवद्भावसे उस भगवान्‌के चित्रपटकी चन्दन, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, पान, इलायची आदिके द्वारा पूजा करनी चाहिये। फिर कपूरसे आरती करके पुष्प चढ़ाकर प्रणाम करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करनेके बाद भगवान्‌से कातर-प्रार्थना करनी चाहिये तथा

यह दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌की कृपासे सत्पुत्रकी प्राप्ति अवश्य होगी। प्रार्थनामें यह भाव होना चाहिये कि 'प्रभो! आप दयामय हैं, हमें पुत्र देनेकी कृपा करें। आपका दिया हुआ वह पुत्र सद्भाव-सम्पन्न, सात्त्विक, सुन्दर, सच्चरित्र, सदाचारी, दीर्घजीवी, मेधावी तथा आपका प्रिय भक्त हो।' इस प्रार्थनाके बाद तुलसीकी मालासे जप करना चाहिये। प्रतिदिन ५५ मालाका जप अवश्य होना चाहिये। इस प्रकार पूरे एक महीनेतक जप करनेपर जप सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इससे १,५०,००० जप तथा १५,००० दशांश होमके लिये कुल १,६५,००० जप पूरा हो जाता है। पत्नी न कर सके तो पतिको ही करना चाहिये। एक महीनेके बाद प्रतिदिन यथासाध्य नियमित रूपसे जप चालू रखना चाहिये। मन्त्र सिद्ध होनेके बाद जब पत्नी ऋतुस्नाता हो, तब शास्त्रानुसार शुभ मुहूर्तमें पुत्र-प्राप्तिके लिये कामभावसे नहीं, युग्म तथा अनिन्दित पर्ववर्जित रात्रिमें गर्भाधान करना चाहिये।

'श्रीरामचरितमानस' मन्त्रमय है। इसके भी बहुत-से सिद्ध प्रयोग हैं। निम्नलिखित दोहेके द्वारा सम्पुटित करके सात या इक्कीस नवाह्न-पारायण करनेसे सद्‌गुणी पुत्रकी प्राप्ति होती है। ऐसा कुछ सज्जनोंका अनुभूत कथन है।

दोहा यह है—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

'हरिः शरणम्' मन्त्रसे महामारी भाग गयी

कलकत्तेके स्वर्गीय श्रीरूढ़मलजी गोयनका बड़े प्रसिद्ध विद्वान् और भगवद्विश्वासी थे। भगवान्‌की लीलासे उनके घरमें कोई नहीं रह गया था। यों वे बड़े शौकीन थे और साथ ही बड़े विद्याव्यसनी थे। संस्कृतके विद्वानोंको उनके यहाँ बड़ा आश्रय मिलता था। वे अपने बड़तल्ला स्ट्रीटके मकानमें रहते थे।

उन दिनों कलकत्तेमें प्रायः प्रतिवर्ष प्लेगकी महामारी आया करती थी और बड़ा विनाश होता था। रूढ़मलजी भी प्लेगसे आक्रान्त हो गये। बहुत तेज ज्वर था और दोनों ओर गिल्टियाँ थीं। घरमें और तो कोई थे नहीं, उनके एक विश्वस्त सेवक थे। वे ही सब देखभाल करते थे। उस समय डॉ० सर कैलाशचन्द्र बोसका कलकत्तेमें बड़ा नाम था। उन्हें लोग 'विधाता' कहते थे। वे बड़े सफल चिकित्सक थे। दूरसे ही देखकर रोगका निदान कर देते थे, ऐसा माना जाता था। गोयनका परिवारमें वे फेमिली डॉक्टर थे। संध्याके समय वे रूढ़मलजीको देखने आये और कह गये कि 'इनको संनिपात हो गया है, रोग असाध्य है और रात्रिको किसी भी समय इनके प्राण जा सकते हैं।'

रूढ़मलजी सब सुन रहे थे। सर डॉक्टर कैलाशचन्द्रके लौट जानेके बाद उन्होंने अपने सेवकसे गंगाजल मँगवाया। उससे शरीर पोंछकर कपड़े बदले। भगवान् श्रीकृष्णका बड़ा सुन्दर एक चित्र था। उसको पलंगपर अपने सामने रखवा लिया और चारों तरफ तकिये लगवाकर वे बैठ गये। सेवकसे कहा—'तू किंवाड़ बंद कर लो और बाहर बैठ जाओ। डॉक्टर साहब रातको प्राणत्यागकी बात कह ही गये हैं। यदि प्राण रहेंगे तो मैं जब आवाज दूँ, तब किंवाड़ खोल देना। नहीं तो सबेरे किंवाड़ खोलकर परिवारके अन्य लोगोंको सूचना दे देना। वे अन्त्येष्टिकी व्यवस्था कर देंगे।' सेवकने

आज्ञानुसार बाहरसे किंवाड़ बन्द कर दिये। प्रातःकाल चार बजे उन्होंने आवाज देकर किंवाड़ खुलवाये और सेवकसे कहा कि मेरा शरीर स्वस्थ है। ब्राह्मण-भोजन करवाना है अतएव तू गंगाजीके घाटपर और अपने परिचित विद्वानोंके यहाँ जाकर सौ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे आओ। वे दस-ग्यारह बजे भोजनके लिये आ जायँ और तुम लौटकर ब्राह्मण-भोजनके लिये रसोईकी व्यवस्था करो। आदेशके अनुसार सारी व्यवस्था हो गयी। ब्राह्मण-भोजन भलीभाँति सम्पन्न हो गया। ब्राह्मण दक्षिणा पाकर लौट गये। उधर श्रीकैलाशबाबू गोयनका-परिवारके ही एक अन्य घरमें रोगी देखने गये थे। उन्होंने पूछा—बाबू रूढ़मलजीकी दाह-क्रिया करके आप लोग कब लौटे? उत्तरमें बताया गया कि वे तो जीवित हैं और स्वस्थ हैं। कैलाशबाबू आश्चर्यमें डूब गये और उन्हें देखनेके लिये उनके मकानपर गये। देखा, तो वे सदाकी भाँति रेशमी पीताम्बर पहने, तिलक लगाये आसनपर बैठे हैं और चौकीपर रखे हुए चाँदीके थालमें ब्राह्मणोंका प्रसाद पा रहे हैं। सर कैलाशने यह देखकर उनसे पूछा कि आप यह सब किसके कहनेसे खा रहे हैं। उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—'जिनकी दवासे अच्छा हुआ, उन्हींके कहनेसे।' भगवान्‌का विधान, सर कैलाशबाबूने यही निश्चय किया कि ये संनिपातमें हैं और जाते समय वे देख-रेख करनेवालोंसे कह गये कि ध्यान रखना किसी भी समय इनका शरीर जा सकता है।

तीन-चार दिन बीत गये। डॉक्टर कैलाशबाबूको कोई समाचार नहीं मिला, तब एक दिन वे स्वयं आये, पता लगा कि रूढ़मलबाबू स्वस्थ हैं। ये उनसे मिले और पूछा—'आप सर्वथा मरणासन्न थे, पर अब आप स्वस्थ हैं। आपने क्या दवा ली, क्या किया जिससे आप आश्चर्यजनकरूपसे स्वस्थ हो गये?' रूढ़मलजीने बताया कि उस दिन आप कह ही गये थे कि मेरे बचनेकी कोई आशा नहीं है। मैंने

भी आपके वचनोंके अनुसार यही समझा। मैंने मनमें विचार किया कि जब मरना ही है, तब भगवान्‌का स्मरण करते हुए क्यों न मरूँ? मैंने श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें पढ़ा था कि नारदजीने सनकादिसे कहा है—'आपको कालप्रेरित जरावस्था कभी बाधा नहीं पहुँचाती और आप सदा-सर्वदा पाँच वर्षकी आयुके और नित्य नीरोग इसलिये रहते हैं कि आप रात-दिन निरन्तर '**हरिः शरणम्**' मन्त्रका जप करते रहते हैं।' मैंने सोचा कि मैं भी इसी मन्त्रका जप करूँ। मैंने गंगाजलसे शरीर पोंछकर कपड़े बदलकर भगवान् श्रीकृष्णका यह सुन्दर चित्र (चित्र दिखाकर) सामने रखवा लिया। ज्वर तो बहुत तेज था ही, गिल्टियोंमें दर्द भी बड़ा भयानक था, पर मैं तीनों ओर तकिये लगवाकर किसी तरह बैठ गया और '**हरिः शरणम्**' मन्त्रका जप करने लगा। पता नहीं, कितनी देरतक होशमें रहा। जबतक होशमें रहा, जप चलता रहा। लगभग चार बजे बाह्य चेतना लौटी। मुझे अपना शरीर ठंडा और हलका मालूम दिया। दर्द नहीं था। मैंने हाथ लगाकर देखा कि दोनों ओरकी गाँठें बैठ चुकी हैं। मैंने सोचा—'कहीं बहम न हो।' मैं पलंगसे नीचे उतरकर कमरेमें इधर-उधर घूमा। न दर्द था, न ज्वर। मैंने समझा, यह '**हरिः शरणम्**' मन्त्रका चमत्कार है। ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। अतएव मैंने ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्था की और ब्राह्मणोंके भोजन करके लौट जानेके बाद मैं उस दिन उनका प्रसाद पा रहा था; उसी समय आप पधारे। मेरी दवा और मेरा डॉक्टर '**हरिः शरणम्**' मन्त्र ही था, जिसने मुझको आश्चर्यजनकरूपसे स्वस्थ कर दिया। डॉक्टर सर कैलाशचन्द्र यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये।

पापोंके अनुसार नारकीय गति

जीवको माताके गर्भमें अनेक जन्मोंकी बातें याद आती हैं, जिससे व्यथित होकर वह इधर-उधर फिरता और निर्वेद(खेद)-को प्राप्त होता है। अपने मनमें सोचता है—'अब इस उदरसे छुटकारा पानेपर मैं फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, बल्कि इस बातके लिये चेष्टा करूँगा कि मुझे फिर गर्भके भीतर न आना पड़े।' सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंका स्मरण करके वह इसी प्रकार चिन्ता करता है। तत्पश्चात् कालक्रमसे वह अधोमुख जीव जब नवें या दसवें महीनेका होता है, तब उसका जन्म हो जाता है। गर्भसे निकलते समय वह प्राजापत्य वायुसे पीड़ित होता है और मन-ही-मन दुःखसे व्यथित हो रोते हुए गर्भसे बाहर आता है। तदनन्तर वह जीव पहले तो बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर क्रमशः कौमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थामें प्रवेश करता है। इसके बाद मृत्युको प्राप्त होता और मृत्युके बाद फिर जन्म लेता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें वह घटीयन्त्र (रहट)- की भाँति घूमता रहता है। कभी स्वर्गमें जाता है, कभी नरकमें। कभी इस संसारमें पुनः जन्म लेकर अपने कर्मोंको भोगता है, कभी कर्मोंका भोग समाप्त होनेपर थोड़े ही समयमें मरकर परलोकमें चला जाता है। कभी स्वर्ग और नरकको प्रायः भोग चुकनेके बाद थोड़े-से शुभाशुभ कर्म शेष रहनेपर फिर इस संसारमें जन्म लेता है—

नारकी जीव घोर दुःखदायी नरकोंमें गिराये जाते हैं। पुण्यवान् स्वर्गमें जाते हैं। स्वर्गमें पहुँचनेके बादसे ही मनमें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि पुण्यक्षय होनेपर हमें यहाँसे नीचे गिरना पड़ेगा। साथ ही नरकमें पड़े हुए जीवोंको देखकर महान् दुःख होता है कि कभी हमें भी ऐसी ही दुर्गति भोगनी पड़ेगी।

यमराजके आदेशानुसार पापी जीव यातना-शरीर प्राप्त करके विविध नरकोंमें गिराये जाते हैं। फिर, विभिन्न दुःखद योनियोंमें भेजे जाते हैं। उनका कुछ विवरण यह है—

एक भयानक नरकका नाम है—'रौरव'। इस रौरव नरकका लम्बाई-चौड़ाई दो हजार योजनकी है। यह एक गड्ढेके रूपमें है। यह नरक अत्यन्त दुस्तर है। इसमें भूमिके बराबरतक अंगारोंके ढेर बिछे हैं। इसके भीतरकी भूमि दहकते हुए अंगारोंसे बहुत तपी होती है। सारा नरक तीव्र वेगसे प्रज्वलित होता रहता है। यमराजके दूत पापी प्राणीको इसीके भीतर डाल देते हैं। वह धधकती आगसे जब जलने लगता है, तब इधर-उधर दौड़ता है, किंतु पग-पगपर उसके पैर जल-भुनकर राख होते रहते हैं। वह दिन-रातमें कभी एक बार पैर उठाने और रखनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार सहस्रों योजन पार करनेपर वह इस नरकसे छुटकारा पाता है।

(यातना-देह उस देहको कहते हैं, जो नरककी पीड़ा भुगतानेको दिया जाता है। इसमें जलने-कटने आदिकी भयानक पीड़ा होती है, पर यह जल या कटकर नष्ट नहीं होता। पीड़ा भोगनेके लिये ज्यों-का-त्यों बना रहता है)।

अब 'महारौरव' का वर्णन सुनिये—इसका विस्तार सब ओरसे बारह हजार योजन है। वहाँकी भूमि ताँबेकी है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है। उसकी आँचसे तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजलीके समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है। उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयंकर है। यमराजके दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीवको उसके भीतर डाल देते हैं और वह लोटता हुआ आगे बढ़ता है। मार्गमें कौए, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं। उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार 'अरे बाप!

अरे मैया! हाय मैया! हा तात!' आदिकी रट लगाता हुआ करुण क्रन्दन करता है, किंतु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इस प्रकार उसमें पड़े हुए जीव, जिन्होंने दूषित बुद्धिके कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतनेपर उससे छुटकारा पाते हैं।

इसके सिवा 'तम' नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभावसे ही कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है। उसका विस्तार भी महारौरवके ही बराबर है, किंतु वह घोर अन्धकारसे आच्छादित रहता है। वहाँ पापी मनुष्य सर्दीसे कष्ट पाकर भयानक अन्धकारमें दौड़ते हैं और एक-दूसरेसे भिड़कर लिपटे रहते हैं। जाड़ेके कष्टसे काँपकर कटकटाते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं। भूख-प्यास भी वहाँ बड़े जोरकी लगती है। इसी प्रकार अन्यान्य उपद्रव भी होते रहते हैं। ओलोंके साथ बहनेवाली भयंकर वायु शरीरमें लगकर हड्डियोंको चूर्ण किये देती है और उनसे जो मज्जा तथा रक्त गिरता है, उसीको वे क्षुधातुर प्राणी खाते हैं। एक-दूसरेके शरीरसे सटकर वे परस्पर रक्त चाटा करते हैं। इस प्रकार जबतक पापोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्योंको अन्धकारमें महान् कष्ट भोगना पड़ता है।

इससे भिन्न एक 'निकृन्तन' नामक नरक है। उसमें कुम्हारकी चाकके समान बहुत-से चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। यमराजके दूत पापी जीवोंको उन चक्रोंपर चढ़ा देते और अपनी अँगुलियोंमें कालसूत्र लेकर, उसीके द्वारा उनके पैरसे लेकर मस्तकतक प्रत्येक अंग काटा करते हैं। फिर भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते। उनके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, किन्तु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षोंतक वहाँ काटे जाते हैं। यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापोंका नाश नहीं हो जाता।

अब 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकका वर्णन सुनिये, जिसमें पड़े हुए जीवोंको असह्य दुःखका अनुभव करना पड़ता है। वहाँ भी वे ही

कुलालचक्र होते हैं। साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी बने होते हैं, जो पापी मनुष्योंको दुःख पहुँचानेके लिये बनाये गये हैं। वहाँ कुछ मनुष्य उन चक्रोंपर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं। हजारों वर्षोंतक उन्हें बीचमें विश्राम नहीं मिलता। इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रोंमें बाँध दिये जाते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे रहटमें छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं। वहाँ बँधे हुए मनुष्य उन यन्त्रोंके साथमें जब घूमने लगते हैं तो बारंबार रक्त-वमन करते हैं। उनके मुखसे लार गिरती है और नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं। उस समय उन्हें इतना दुःख होता है जो जीवमात्रके लिये असह्य है।

अब 'असिपत्रवन' नामक अन्य नरकका वर्णन सुनिये। वहाँ एक हजार योजनतककी भूमि प्रज्वलित अग्निसे आच्छादित रहती है तथा ऊपरसे सूर्यकी अत्यन्त भयंकर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरकमें निवास करनेवाले जीव सदा संतप्त होते रहते हैं। उसके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर वन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं, किंतु वे सभी पत्ते तलवारकी तीखी धारके समान हैं। उस वनमें बड़े बलवान् कुत्ते भूँकते रहते हैं, जो दस हजारकी संख्यामें सुशोभित होते हैं। उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे व्याघ्रोंके समान भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँकी भूमिपर जो आग बिछी होती है, उससे जब दोनों पैर जलने लगते हैं, तब वहाँ गये हुए पापी जीव 'हाय माता! हाय पिता! आदि कहते हुए अत्यन्त दुःखित होकर कराहने लगते हैं। उस समय तीव्र पिपासाके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, फिर अपने सामने शीतल छायासे युक्त असिपत्रवनको देखकर वे प्राणी विश्रामकी इच्छासे वहाँ जाते हैं। उनके वहाँ पहुँचनेपर बड़े जोरकी हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवारके समान तीखे पत्ते गिरने लगते हैं। उनसे आहत होकर वे पृथ्वीपर जलते हुए अंगारोंके ढेरमें

गिर पड़ते हैं। वह आग अपनी लपटोंमें सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतलको चाटती हुई-सी जान पड़ती है। इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते वहाँ तुरंत ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए पापियोंके सब अंगोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं।

अब इससे भी अत्यन्त भयंकर 'तप्तकुम्भ' नामक नरक है। वहाँ चारों ओर आगकी लपटोंसे घिरे हुए बहुत-से लोहेके घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं। उनमेंसे किन्हींमें तो प्रज्वलित अग्निकी आँचसे खौलता हुआ तेल भरा रहता है और किन्हींमें तपाये हुए लोहेका चूर्ण होता है। यमराजके दूत पापी मनुष्योंको उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं। शरीरकी मज्जाका भाग गलकर पानी हो जाता है। कपाल और नेत्रोंकी हड्डियाँ चटककर फूटने लगती हैं। भयानक गृध्र उनके अंगोंको नोच-नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उन टुकड़ोंको उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेलमें मिल जाते हैं। मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं। तदनन्तर यमराजके दूत करछुलसे उलट-पुलटकर खौलते हुए तेलमें उन पापियोंको अच्छी तरह मथते हैं।

पौंसलेपर पानी पीनेको जाती हुई गौओंको जो वहाँ जानेसे रोक देता है और वे प्यासी रह जाती हैं, इससे उसको भयंकर नरकमें जाना पड़ता है, जो आगकी लपटें निकलती रहनेके कारण घोर दुःखदायी होता है। उसमें लोहेकी-सी चोंचवाले पक्षी रहते हैं, जो पापियोंको चोंचसे नोचा करते हैं। वहाँ पापियोंके शरीरको कोल्हूमें पेरनेसे उनके मुखसे रक्तकी धारा बहने लगती है, जिससे रक्त-कीचड़ जमा रहता है। तप्तबालुका और तप्तकुम्भ नरकोंमें उसे संतप्त किया जाता है।

जो नीच मनुष्य काम और लोभके वशीभूत हो, दूषित दृष्टि एवं

कलुषित चित्तसे परायी स्त्री और पराये धनपर आँखें गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखोंको ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी निकाल लेते हैं और पुनः-पुनः इनके नये नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्योंने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षोंतक ये नेत्रकी पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगोंने असत्-शास्त्रका उपदेश किया है तथा किसीको बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्रका उलटा अर्थ लगाया है, मुँहसे झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुकी निन्दा की है, उन्हींकी जिह्वाको ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयंकर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षोंतक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रोंमें फूट डालते हैं, पिता-पुत्रमें, स्वजनोंमें, यजमान और पुरोहितमें, माता और पुत्रमें, संगी-साथियोंमें तथा पति और पत्नीमें वैर करवा देते हैं, वे ही यहाँ आरेसे चीरे जाते हैं। आप इनकी दुर्गति देखिये। जो दूसरोंको ताप देते, उनकी प्रसन्नतामें बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदिका अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियोंको भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे अधम पापी तपायी हुई बालूमें पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो अपनी अनुचित बातोंसे साधु पुरुषोंके मर्मपर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसीकी चुगली करते हैं, उनकी जिह्वाके इस प्रकार तेज किये हुए छूरोंसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्दण्डतावश माता, पिता तथा गुरुजनोंका अनादर किया है, वे ही यहाँ पीब, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गड्ढोंमें नीचे मुख करके डुबाये जाते हैं। जो लोग देवता, अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पितर, अग्नि तथा पक्षियोंको अन्नका भाग

दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे ही दुष्ट यहाँ पीब और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़के समान विशाल होता है, किंतु मुख सूईकी नोकके बराबर रहता है। जो लोग पंक्तिमें बिठाकर भोजनमें भेद करते हैं, उन्हें यहाँ विष्ठा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदायमें साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्यको निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही यहाँ थूक और खखार भोजन करते हैं। जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक जूठे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारोंपर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखोंमें आग रखकर यमराजके दूत उसे धौंकते हैं। गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु तथा बड़े-बूढ़ोंका जो जान-बूझकर पैरोंसे स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैर यहाँ आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियोंसे जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अंगारोंके ढेरमें खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैरसे लेकर घुटनेतकका भाग जलता रहता है। जो नराधम अपने कानोंसे गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियोंके कानोंमें ये यमराजके दूत आगमें तपायी हुई लोहेकी कीलें ठोंक देते हैं। जो लोग क्रोध और लोभके वशमें होकर पौंसले, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर तथा देवालयके सभाभवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनके यहाँ आनेपर ये अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत इन तीखे शस्त्रोंसे शरीरकी खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चीखने-चिल्लानेपर भी ये दया नहीं करते। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनकी आँतोंको कौए गुदामार्गसे खींचते हैं। जो किसी एकको कन्या देकर फिर दूसरेके साथ उसका विवाह कर देता है; उसके शरीरमें बहुत-से घाव करके उसे खारे पानीकी नदीमें बहा दिया जाता है। जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा संकटकालमें

अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्गको अकिंचन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालनेमें लग जाता है वह भी जब इस लोकमें आता है तो यमराजके दूत भूख लगनेपर उसके मुखमें उसके ही शरीरका मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है। जो अपनी शरणमें आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्तिसे जीविका चलानेवाले मनुष्योंको लोभवश त्याग देता है, वह भी यमदूतोंद्वारा इसी प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेके कारण यन्त्रणा भोगता है। जो मनुष्य अपने जीवनभरके किये हुए पुण्यको धनके लोभसे बेच डालते हैं, वे इन्हीं पापियोंकी तरह चक्कियोंमें पीसे जाते हैं। किसीकी धरोहर हड़प लेनेवाले लोगोंके सब अंग रस्सियोंसे बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात कीड़े, बिच्छू तथा सर्प काटते-खाते रहते हैं। इसमें लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका विशाल वृक्ष है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अंग विदीर्ण हो जाते हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे ये लथपथ रहते हैं। नरश्रेष्ठ! परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले लोग यमराजके दूतोंद्वारा पात्रोंमें रखकर गलाये जाते हैं। जो उद्दण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बैठाकर और स्वयं ऊँचे आसनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी शिक्षा ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर शिलाका भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके मार्गमें वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ ढोनेकी पीड़ासे व्यथित होता रहता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, थूक और विष्ठाका त्याग किया है, वे ही लोग इस समय थूक, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे व्याकुल होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं; इन्होंने पूर्वकालमें अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया है। जिन लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियोंका परित्याग किया

पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें जाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और उनके धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे निस्सन्देह यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान करनेवाला मनुष्य उनके प्रति कटुवचन कहनेसे मैनाकी योनिमें जन्म लेता है। भाईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर होता है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें जन्म लेता है। जो मालिकका अन्न तो खाता है, किन्तु उसका अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य मरनेके बाद वानर होता है? धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखनेवाला पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वासघाती मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों,चना, मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े मुँहका चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य भयंकर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध, साँप, सूअर तथा कौएकी योनिमें जन्म लेता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला तथा कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न भोजन करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है। जो पिताके समान पूजनीय बड़े भाईका अपमान करता है, वह नरकसे निकलनेपर क्रौंच पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ सहवास करनेवाला शूद्र भी कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। यदि उसने ब्राह्मणीके गर्भसे संतान उत्पन्न कर दी हो तो वह काठके भीतर रहनेवाला कीड़ा होता है। उसके बाद क्रमशः सूअर,

कृमि, विष्ठाका कीड़ा और चाण्डाल होता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ एवं कृतघ्न होता है, वह नरकसे निकलनेपर कृमि, कीट, पतंग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और चाण्डाल होता है। शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करनेवाला मनुष्य गदहा होता है। स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवालेका कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। भोजनकी चोरी करनेसे मक्खीकी योनिमें जाना पड़ता है। साधारण अन्न चुरानेवाला मनुष्य नरकसे छूटनेपर बिल्लीकी योनिमें जन्म लेता है। तिल-चूर्णमिश्रित अन्नका अपहरण करनेसे मनुष्यको चूहेकी योनिमें जाना पड़ता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमककी चोरी करनेपर जलकागकी और दही चुरानेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। दूधकी चोरी करनेसे बगुलेकी योनि मिलती है। जो तेल चुराता है, वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला मनुष्य डाँस और पूआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्नकी चोरी करनेवाला छिपकली होता है।

लोहा चुरानेवाला पापात्मा कौआ होता है। काँसेका अपहरण करनेसे हारीत (हरियल) पक्षीकी योनि मिलती है और चाँदीका बर्तन चुरानेसे कबूतर होना पड़ता है। सुवर्णका पत्र चुरानेवाला मनुष्य कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है, रेशमी वस्त्रकी चोरी करनेपर चकवेकी योनि मिलती है तथा रेशमका कीड़ा भी होना पड़ता है। हरिणके रोएँसे बना हुआ वस्त्र, महीन वस्त्र, भेड़ और बकरीके रोएँसे बना हुआ वस्त्र तथा पाटम्बर चुरानेपर तोतेकी योनि मिलती है। रुईका बना हुआ वस्त्र चुरानेसे क्रौंच और अग्निके अपहरणसे बगुला अथवा गदहा होना पड़ता है। अंगराग और पत्तियोंका साग चुरानेवाला मोर होता है। लाल वस्त्रकी चोरी करनेवालेको चकवेकी योनि मिलती है। उत्तम सुगन्धयुक्त पदार्थोंकी चोरी करनेपर छछूंदर और वस्त्रका अपहरण करनेपर खरगोशकी योनिमें जाना पड़ता है।

फल चुरानेवाला नपुंसक और काष्ठकी चोरी करनेवाला घुन होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्र और वाहनका अपहरण करनेवाला पंगु होता है। साग चुरानेवाला हारीत और पानीकी चोरी करनेवाला पपीहा होता है। जो भूमिका अपहरण करता है, वह अत्यन्त भयंकर रौरव आदि नरकोंमें जाकर वहाँसे लौटनेके बाद क्रमशः तृण, झाड़ी, लता, बेल और बाँसका वृक्ष होता है। फिर थोड़ा-सा पाप शेष रहनेपर वह मनुष्यकी योनिमें आता है। जो बैलके अण्डकोषका छेदन करता है, वह नपुंसक होता है और इसी रूपमें इक्कीस जन्म बितानेके पश्चात् क्रमशः कृमि, कीट, पतंग, पक्षी, जलचर जीव तथा मृग होता है। इसके बाद बैलका शरीर धारण करनेके बाद चाण्डाल और डोम आदि घृणित योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य-योनिमें वह पंगु, अन्ध, बहरा, कोढ़ी, राज्ययक्ष्मासे पीड़ित तथा मुख, नेत्र एवं गुदाके रोगोंसे ग्रस्त रहता है। इतना ही नहीं, उसे मिरगीका भी रोग होता है तथा वह शूद्रकी योनिमें भी जन्म लेता है। गाय और सोनेकी चोरी करनेवालोंकी दुर्गतिका भी यही क्रम है। गुरुको दक्षिणा न देकर उनकी विद्याका अपहरण करनेवाले छात्र भी इसी गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य किसी दूसरेकी स्त्रीको लाकर दूसरेको देता है, वह मूर्ख नरककी यातनाओंसे छूटनेपर नपुंसक होता है। जो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित किये बिना ही उसमें हवन करता है, वह अजीर्णताके रोगसे पीड़ित एवं मन्दाग्निकी बीमारीसे युक्त होता है।

(मार्कण्डेयपुराणके आधारपर)

करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष दवा खरीदनेमें देशकी जनताको व्यय करने पड़ेंगे; करोड़-दो-करोड़ रुपये खर्च करके देशके लोगोंको वे साधन बताये जाते, स्वास्थ्यरक्षाके उन नियमोंका प्रचार किया जाता, स्वास्थ्यकर खान-पानकी वस्तुओंका प्रचार-प्रसार किया जाता, सफाई-संयमकी शिक्षा दी जाती और प्राकृतिक साधनोंकी व्यवस्था की जाती तो रोगोंकी उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। पर जैसे फिल्म-व्यवसाय धन कमानेको बना है, चाहे उससे देशके चरित्रका कितना भी पतन हो; जैसे शराब और तमाखूसे करोड़ों रुपयेकी सरकारको तथा व्यापारियोंको आमदनी होती है, चाहे उसका देशके स्वास्थ्यपर बुरे-से-बुरा प्रभाव पड़ता हो; वैसे ही इन दवाओंका यह विशाल व्यवसाय है। यह दवा-व्यवसाय उनसे कहीं अधिक भयानक है। उनकी तो बुराई बतायी जाती है, पर इनसे तो लाभ बताया जायगा और नये-नये आकर्षक विज्ञापनोंके द्वारा इन दवाइयोंके गुणोंका प्रचार-प्रसार किया जायगा। देशके बड़े-छोटे अस्पताल, लाखों छोटे-बड़े डॉक्टर तथा दवा बेचनेवाले इनके एजेंट होंगे; क्योंकि उनको बहुत बड़ी कमीशन मिलेगी। अपने व्यवसायकी उन्नति तथा अर्थ-प्राप्तिमें वृद्धिके लिये ये सभी चाहेंगे और जी-तोड़ प्रयत्न भी करेंगे, जिससे नये-नये रोग पैदा होते रहें—रोगियोंकी संख्या बढ़ती रहे और नये-नये नामों, नये-नये आकारोंमें आकर्षक शीशियों तथा लेबलोंकी पोशाकसे सज-धजकर दवाइयाँ बाजारमें चलती रहें। फिर, जितनी भी एंटीबायोटिक दवाएँ हैं, सभी प्रायः विष हैं। सभीपर प्रायः विष (Poison) का लेबल लगा रहता है। अतएव वे किसी एक रोगको दबाती हैं तो दूसरेको उसी समय या कालान्तरमें पैदा भी करती हैं। विषका प्रभाव तो होता ही है। अभी उस दिन एक खेतमें

कीटाणुनाशक दवा छिड़की गयी थी, उसके कुछ ही घंटों बाद वहाँ काम करनेवाले पचासों व्यक्ति बेहोश हो गये। उनको होशमें लानेके लिये बड़ी चिन्ता और उपाय करने पड़े। इसी प्रकार इन दवाओंका भी विषैला असर शरीरपर होता ही है। यह गहराईसे सोचनेका विषय है कि ये बड़े-बड़े एंटीबायोटिकके कारखाने देशमें रोगका विनाश करेंगे या विस्तार? और इनसे यदि रोगविस्तारकी सम्भावना हो तो सरकारको भी इसपर एक बार फिर विचार करना चाहिये। विचारशील पुरुष इस ओर ध्यान दें, इसीलिये ये पंक्तियाँ लिखी गयी हैं।

इसीके साथ-साथ बड़े-बड़े व्यवसायी उद्योगपतियोंसे भी यह प्रार्थना है कि वे पैसेके लोभसे हिंसाभरे तथा अपवित्र पदार्थोंके द्वारा विषैली दवाओंके निर्माणके लिये कारखाने खोलकर और देशभरमें उन दवाओंका प्रचार करके देशका तथा अपना मंगल कर रहे हैं या अमंगल? इसपर जरा ध्यान दें। पैसा ही सब कुछ नहीं है। यह बात याद रखनी चाहिये।

महामना मालवीयजीके कुछ संस्मरण

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय सन् १९०६ के लगभगसे है। उस समय मैं कलकत्तेमें रहता था। वे जब-जब पधारते, तब-तब मैं उनके दर्शन करता। उस समय वे कभी स्वर्गीय पण्डित सुन्दरलालजीके मकान हरीसन रोडमें ठहरते, कभी बड़तल्लामें श्रीशीतलप्रसादजी खडगप्रसादजीकी गद्दीमें। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनकी परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उनके साथ एक कुटुम्बका-सा सम्बन्ध हो गया। वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मैं उन्हें परम आदरणीय पितासे बढ़कर मानता। इस नाते मैं उन्हें पण्डितजी न कहकर सदा बाबूजी ही कहता। घरकी सारी बातें वे मुझसे कहते-करते। कुछ समय तो मैं उनके बहुत ही निकट सम्पर्कमें रहा, इसलिये मुझको उन्हें बहुत समीपसे देखने-समझनेका अवसर मिला। उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी और उनका कार्यक्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था। वे परम धार्मिक होनेके साथ ही बहुत सुलझे हुए राजनैतिक थे। शिक्षा-विस्तार—प्राचीन सनातनधर्मकी रक्षा करते हुए जनतामें सत्-शिक्षाका प्रसार तो उनके जीवनका प्रधान कार्य था। वे सुधारक होनेपर भी प्राचीन वर्णाश्रम-पद्धतिके संरक्षक थे, उदार होते हुए ही भोजनकी शुद्धिमें बड़े कट्टर थे; अर्वाचीन संस्कृतिसे लाभ उठानेवाले होकर भी प्राचीन संस्कृतिके प्रतीक थे। आततायी-वधका स्पष्ट उपदेश करनेवाले कठोरहृदय होते हुए भी वे एक क्षुद्रतम जीवकी हिंसासे डरते थे। नरम दलके माने जानेपर भी गर्मीके अवसरपर सबसे अधिक गरम थे; सबको प्रसन्न रखनेकी मधुर कलाके आकर होनेपर भी स्पष्टवादी थे;

एंटीबायोटिक दवाओंके कारखाने रोगनाशके लिये या विस्तारके लिये ?

जहाँ डॉक्टर-वैद्योंका व्यवसाय खूब चलता हो, दवाओंके कारखाने तथा बाजार उत्तरोत्तर प्रगति करते हों, दवा-व्यवसाय बहुत लाभदायक हो, वहाँ निश्चित ही बीमारोंकी तथा बीमारियोंकी संख्या बढ़ी हुई है और लोग संयमी न रहकर दवा-दास हो रहे हैं। हमारे भारतमें इस समय दवा-उद्योग उत्तरोत्तर उन्नत होता चला जा रहा है। आयुर्वेदिक औषध-निर्माणके बड़े-बड़े व्यवसाय चल ही रहे थे, अब करोड़ोंकी पूँजी लगाकर सरकार एंटीबायोटिक औषधोंके निर्माणके बहुत बड़े कारखाने खोलने जा रही है। जिनमें एक तो भारतकी प्रसिद्ध तपोभूमि ऋषिकेशमें खोला जानेवाला है। इनमें करोड़ों रुपयोंकी दवाइयाँ बनेंगी। कारखानोंमें अधिक-से-अधिक ओषधियोंका निर्माण (Production) होगा और अधिक-से-अधिक उनकी खपत तथा माँग होगी, तभी ये कारखाने लाभप्रद हो सकते हैं—तभी यह उद्योग (Industry) सफल हो सकता है। इसके लिये रोगी और रोगोंका बढ़ना आवश्यक है। ये कारखाने इसलिये तो बन ही नहीं रहे हैं कि देशमें लोग संयमी हो जायँ, रोगोंकी कमी हो जाय और इन कारखानोंको घाटा लगे। ये तो बनाये ही जाते हैं मुनाफेके लिये। अतएव स्वाभाविक इनका प्रचार-कार्य होगा—जिससे इनकी दवाएँ अधिक-से-अधिक बिकें। अतएव स्वाभाविक ही रोग और रोगियोंकी संख्या देशमें बढ़े—यही इच्छा और प्रयत्न इनका होगा, उसका प्रकार कुछ भी हो। इन करोड़ोंके कारखानोंके बदले—जिनके बननेपर

है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे बारंबार नीचे गिराये जाते हैं। पतितोंका दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे मनुष्य पत्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। जो कुटुम्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अंगारे चबाने पड़ते हैं। पीठ-पीछे बुराई करनेवाले पापी लोगोंकी पीठका मांस भयंकर भेड़िये प्रतिदिन खाया करते हैं।

उपकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता करनेवाले भूखसे व्याकुल तथा अन्धे, बहरे और गूँगे होकर भटकते हैं। मित्रोंकी बुराई करनेवाले तप्तकुम्भ नरकमें गिराये जाते हैं। इसके बाद चक्कियोंमें पीसे जाते, फिर तपायी हुई बालूमें भूने जाते हैं। उसके बाद कोल्हूमें पेरे जाते हैं। तत्पश्चात् असिपत्रवनमें यातना दी जाती है। फिर आरेसे यह चीरा जाता है। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जाता है। इसके बाद और भी बहुत-सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ती हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी—ये चारों प्रकारके महापापी नीचे और ऊपर धधकती हुई आगके बीचमें झोंककर सब ओरसे जलाये जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें कई हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फिर नरकमें जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरकसे लौटनेपर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्ततक उनके आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौकी हत्या करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीच-से-नीच नरकोंमें पड़ता है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जिन-जिन पातकके कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, उनका कुछ विवरण इस प्रकार है—

वाइसरायों, गवर्नरों तथा नरेशमण्डलसे समादृत तथा उनके प्रति प्रेम रखते हुए एवं उनसे मिलते रहनेवाले होनेपर भी उस समयके सरकारविरोधी गाँधीजीसे खुला स्नेह करते और उनका समादर करते थे। यहाँतक कि क्रान्तिकारी युवक भी उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे; स्त्री-शिक्षाके प्रसारक होनेपर भी वे स्त्रियोंकी प्राचीन मर्यादामें श्रद्धा रखनेवाले थे और वर्तमान युगके साहित्यका अध्ययन करनेवाले होकर भी प्राचीन महाभारत-भागवतादिका नित्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पारायण करते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय अपने ढंगकी एक ही शिक्षा-संस्था है, जो अपना जोड़ नहीं रखती और उनके धर्मप्रेमकी विजयध्वजा सदा फहराती रहेगी। विश्वविद्यालयमें विश्वनाथका मन्दिर उनके साहस, धर्मप्रेम तथा आस्तिकताका ज्वलन्त प्रमाण है। यहाँ उनके पवित्र जीवनके दो-चार संस्मरण संक्षेपमें लिखकर मैं अपनेको पवित्र करता हूँ।

(१) वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले— "भैया! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी, पर है महान् 'वरदानरूप'।" इस प्रकार प्रायः आध घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—'बाबूजी! जल्दी दीजिये, कोई आ जायँगे।'

तब वे बोले—'लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ मैंने उनसे यह

वरदान माँगा कि मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ—सफलता प्राप्त करूँ।'

"माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रखा और कहा—'बच्चा! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ तो जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।' मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—परम दुर्लभ वस्तु मेरी माताकी दी हुई तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।" यों कहकर महामना गद्‌गद हो गये।

मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया। अब तो ऐसा हो गया है कि घरभरमें सभी इसे सीख गये हैं, जब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी 'नारायण-नारायण' उच्चारण करने लगते हैं। इस प्रकार रोज ही—किसी दिन तो कई बार 'नारायण' की और साथ ही पूज्य मालवीयजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है।

(२) इसी यात्रामें वे आजमगढ़से मोटरमें आये थे। मैं राप्ती नदीके उस पार उन्हें लाने गया था। उनकी मोटरको नावसे पार उतारना था। मैं उस पार जाकर ठहर गया और श्रीमालवीयजीके आनेपर उनके चरण छूकर मैंने प्रणाम किया। उनके चेहरेपर उदासी छायी थी। सदा हँसमुख रहनेवाले महामनाके मुखपर गम्भीरता तथा उदासी देखकर मैंने कारण पूछा, तब आपने बताया कि 'मुझे इस बातसे बड़ा विषाद हो

चोखी सीख

आसक्ति करनी हो तो भगवान्‌के नामरूपमें करो॥
कामना करनी हो तो निर्मल भजनकी करो।
क्रोध करना हो तो अपने दुर्गुणोंपर करो॥
लोभ करना हो तो भगवान्‌के स्मरणका करो।
मोह करना हो तो भगवान्‌की लीलामें करो॥
मद करना हो तो भगवत्-प्रीतिका करो।
अभिमान करना हो तो भगवान्‌के दासत्वका करो॥
वैर करना हो तो अपने दुराचारोंसे करो।
हिंसा करनी हो तो अपने अज्ञानकी करो॥
समीप रहना हो तो भगवच्चरणोंके रहो।
दूर रहना हो तो बुरे संगसे रहो॥

हिंदू साधु-संन्यासियोंका नियन्त्रण

पिछले दिनों भारतीय लोकसभामें एक विधेयक प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक साधु या संन्यासीको रजिस्ट्री कराकर लाइसेंस प्राप्त करना होगा। इस विधेयकके अनुसार—

'साधु' अथवा 'संन्यासी' से तात्पर्य उस व्यक्तिसे है जो अपनेको किसी ऐसी धार्मिक संस्था, समाज या मठका सदस्य घोषित करता है, जिसकी स्थापना या निर्वाहका उद्देश्य हिंदुओंके किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी विभागके सिद्धान्तों अथवा परम्पराओंकी रक्षा या संवर्धन हो।

बिना सविधि कानूनी रजिस्ट्री कराये और लाइसेंस देनेवाले अधिकारीको प्रार्थना-पत्र देकर लाइसेंस प्राप्त किये कोई भी न तो अपनेको साधु अथवा संन्यासी नामसे विभूषित कर सकेगा, न घोषित ही कर सकेगा।

किसी व्यक्तिको साधु या संन्यासी होते ही तुरंत लाइसेंस देनेवाले अधिकारीके पास जाकर अपनी रजिस्ट्री करा लेनी होगी और एक लाइसेंस प्राप्त कर लेना होगा।

लाइसेंस देनेवाला अधिकारी किसी लाइसेंसको स्थगित या रद्द भी कर सकता है।

लाइसेंस न लेकर अपनेको साधु या संन्यासी कहनेवाला पाँच सौ रुपये (५०० रु०) तक जुर्माने, दो वर्षतकके कारावास तथा दोनोंके दण्डका भागी हो सकता है।

लाइसेंस लेकर भी विधानके नियमोंको न मानकर शर्तोंके विरुद्ध आचरण करनेवाला साधु या संन्यासी पाँच

सौ रुपये जुर्मानेके दण्डका भागी होगा और उसका लाइसेंस भी रद्द कर दिया जायगा।

विधेयकका कारण यह बताया गया है कि 'साधु-संन्यासियोंमें पापाचारी, भिखमंगे तथा समाज-विरोधी आचरण करनेवाले लोग बढ़ रहे हैं, उनका नियन्त्रण इससे हो जायगा। जिससे सच्चे साधु बदनामीसे बचेंगे।'

यह सत्य है कि आज बहुत-से दुराचारी, ठग साधु-संन्यासीका बाना पहनकर समाजके निरीह नर-नारियोंको ठग रहे हैं और धर्म तथा परमार्थके नामपर समाजमें दुराचार फैला रहे हैं। ऐसे 'साधु' नामको कलंकित करनेवाले धूर्तोंका नियन्त्रण आवश्यक भी है; परंतु इस विधेयकके कानून बन जानेपर उनका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, वे तो तिकड़म भिड़ाकर अपने नामकी रजिस्ट्री करवाकर साधुओंकी सूचीमें आ ही जायँगे। बचेंगे सच्चे साधु-संन्यासी, जिनका न तो किसी ऐसे कानूनके बन्धनमें रहना शास्त्रदृष्टिसे संगत है और न वे रहना ही चाहेंगे। साधु-संन्यासी तो सनातनधर्मके पवित्र चतुर्थाश्रमी हैं। वे देशके गौरव हैं, वे संसारके समस्त भोगोंको त्यागकर भगवान्के साथ एकात्मताका पावन जीवन बिताते हैं। ऐसे महात्माओंको घसीटकर कानूनके नियन्त्रणमें लाना तथा व्यापारियोंकी भाँति रजिस्ट्री कराकर लाइसेंस लेनेके लिये कहना सनातनधर्मकी एक महान् संस्थाका घोर अपमान करना है। भारतीय संस्कृतिमें साधु-संन्यासीका जो स्थान है, वह किसीका नहीं है। सुदूर अतीत कालसे बड़े-बड़े सम्राटोंसे लेकर सर्वथा दीन-हीन पुरुष साधु-संन्यासियोंके चरणोंमें पहुँचकर उनसे जीवनका असली प्रकाश पाते रहे हैं। ऐसे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, संसारकी मायासे मुक्त अथवा उसके लिये साधनामें प्रवृत्त साधुओंको

'साधु-संन्यासी' कहलानेके लिये लाइसेंस लेना पड़े, यह सोचना भी सर्वथा अनुचित है। इस प्रकारका विधेयक उपस्थित करनेमें जरा विचार करना चाहिये था। अब भी हमारी यह विनीत प्रार्थना है कि इस विधेयकको तुरंत वापस ले लिया जाय।

त्यागी महात्मा चाहे किसी भी देश-जातिके हों, सभी पूज्य हैं, पर यह विधेयक तो केवल हिंदू साधु-संन्यासीके लिये ही है। तो क्या पापाचारी और समाज-हितके विरोधी साधु हिंदुओंमें ही हैं? मुसलमान, फकीर या अन्यधर्मी सभी साधु दूधके धोये शुद्ध महात्मा ही हैं? विधेयकके निर्माताने इसका विचार न करके तो हिंदू-आदर्श और हिंदू-धर्मका भी अपमान किया है।

स्त्रियोंके लिये चार आवश्यक नियम

तीर्थयात्रा स्पेशलट्रेनके प्रसंगमें एक जगह एक सम्भ्रान्त कुलकी महिलाने आकर मुझसे कहा—'मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ। मैं चार चीजोंसे परहेज करती हूँ—(१) किसी महात्माका जूँठा प्रसाद नहीं खाती, (२) किसी महात्माका चरण धोकर नहीं पीती, (३) किसी महात्माका चरण-स्पर्श नहीं करती और (४) किसी भी परपुरुषको माला या हार नहीं पहनाती। मेरे साथकी बहिनें तथा भाई इसको मेरा बहुत बड़ा दोष बतलाते हैं और कहते हैं कि तुम यह पाप करती हो। तुम्हारी शरीरपर दृष्टि है, तुम आत्माका महत्त्व नहीं मानती इत्यादि।' उस बहिनने यह कहकर पूछा कि 'क्या यह पाप है? क्या मैं ऐसा करके दोष करती हूँ?'

मैंने उस बहिनसे कहा कि 'तुम्हारी चारों ही बातें आदर्श और शास्त्रसम्मत हैं। इनमें कोई भी दोष या पाप नहीं है। हाँ, इनके विपरीत करना दोष या पाप अवश्य हो सकता है। किसी भी पुरुष या स्त्रीका जूँठन खाना और उसका चरणधोवन पीना उचित नहीं है। इससे नाना प्रकारके रोग फैलते हैं; अनाचारका प्रचार होता है। मिथ्यावादी तथा ढोंगी लोगोंको सीधे-सादे नर-नारियोंको फुसलाकर अनुचित लाभ उठानेका अवसर मिलता है।'

रहा चरण-स्पर्श और माला पहनाना, सो माता-पिताका चरण-स्पर्श करना, अपने स्वामीका चरण-स्पर्श करना तथा पत्नीकी हैसियतसे पतिको माला पहनाना अथवा आशीर्वादरूपसे पुत्रको माला पहनाना दोषकी बात नहीं है। बहिन भाईको भी माला पहना सकती है, परंतु आर्यनारीका आदर्श यही है कि वह न किसी परपुरुषका

कभी स्पर्श करे, न किसी परपुरुषको माला ही पहनाये। ये भी अनाचारके सहायक सिद्ध हुए हैं।

अतएव इन चारोंका परहेज करके तुम बहुत ही श्रेष्ठ आदर्श उपस्थित कर रही हो और अपने धर्मका पालन कर रही हो।

रही शरीरदृष्टिकी बात। सो शरीरदृष्टि तो असलमें गलेमें माला पहनने, चरण-स्पर्श कराने, चरणधोवन पिलाने तथा जूँठन खानेको देनेमें ही है; क्योंकि कण्ठ, चरण तथा मुख—ये अपवित्र, विनाशी तथा पांचभौतिक शरीरके ही अंग हैं।

मेरी इन बातोंसे बाई बहुत प्रसन्न हुई और फिर कई बाइयोंने इस बाईका अनुकरण करनेका नियम लिया। मैं समझता हूँ 'कल्याण' की पाठिका प्रत्येक माता-बहिनको इन चारों नियमोंको ग्रहण करना चाहिये—

१-परपुरुषका चरण-स्पर्श न करे।

२-परपुरुषका चरणधोवन न पीवे।

३-किसीकी भी जूँठन न खाय।

और

४-परपुरुषके गलेमें हार न पहनावे।

दोष देखना दोष है

मनुष्य दूसरोंको सुधारनेके लिये उनके दोष देखता है और आलोचना करता है, परिणाम यह होता है कि दूसरोंके दोषोंका सुधार तो होता नहीं, दोषोंका लगातार चिन्तन करनेसे वे दोष संस्काररूपसे उसके अपने अंदर घर कर लेते हैं, इससे पहलेके रहे दोषोंकी पुष्टि होती है, उन्हें बल मिल जाता है। फिर अपने दोषोंका दीखना बंद हो जाता है; बल्कि कहीं-कहीं तो उनमें गौरवबुद्धि हो जाती है। जिससे पतनका पथ प्रशस्त हो जाता है।

× × × ×

जब मनुष्य दूसरेको सुधारनेके लिये उसके दोष देखता है, तब स्वाभाविक ही वह मानता है कि मुझमें दोष नहीं हैं, गुण हैं। इससे गुणोंका अभिमान बढ़ जाता है और दोष बढ़ते रहते हैं। जहाँ अपने दोष देखनेकी आदत छूटी कि फिर उसका जीवन ही दोषमय बन जाता है।

दहेजका बढ़ा हुआ पाप

अभिभावकों और लड़कोंसे अपील

कानपुरका एक समाचार पटनाके 'आर्यावर्त' में छपा है। कानपुरके खोया बाजारमें एक ब्राह्मण सज्जनने अपनी पुत्री कुमारी राधाके विवाहकी एक जगह बात की।

'कहा जाता है कि लड़केके पिताने आठ हजार रुपयेका दहेज माँगा। लड़कीका पिता पाँच हजार रुपये देनेको तैयार था, पर लड़केके पिताने इसे स्वीकार नहीं किया। कहा जाता है, लड़की और लड़केका भी एक-दूसरेसे परिचय कराया गया था और दोनों अपने माता-पिताकी जानकारी बिना विवाह कर लेनेको राजी हो गये थे, किंतु जिस समय लड़कीको यह ज्ञात हुआ कि लड़केके पिताद्वारा माँगी जानेवाली रकम उसके पिताद्वारा न दे सकनेके कारण विवाह स्वीकृत न हो सका, तब उसने लड़केके पास जाकर प्रस्तावित विवाह कर लेनेका आग्रह किया। लड़केने भी साफ इन्कार कर दिया। इसपर लड़कीने अपने वस्त्रोंमें आग लगाकर अपने जीवनकी बलि दहेजप्रथापर चढ़ा दी।'

इस प्रकारकी दुःखद घटनाएँ समाजमें कितनी हो रही हैं, कुछ कहा नहीं जाता। मैं ऐसे बहुत-से माता-पिताओंको जानता हूँ, जिनकी कन्याएँ युवती हो गयी हैं और जिनका दहेजके अभावमें विवाह नहीं हो पाता। बड़े अच्छे सम्भ्रान्त कुलोंकी कन्याएँ हैं। मेरे पास ऐसे सैकड़ों पत्र आते हैं, जिनमें कन्याओंके माता-पिताओंकी दुर्दशाका वर्णन रहता है। यह बहुत बड़ा पाप है। 'कल्याण' में कई बार अपील की गयी है। पता नहीं हमारी मनोवृत्ति कितनी नीची हो गयी है। मुझे

बड़ा आश्चर्य होता है, जब कॉलेजोंके सुशिक्षित प्रगतिशील युवक गरीब कन्याके पितासे दहेजके लिये अड़ जाते हैं। रुपया इतनी बड़ी चीज बन गया कि उसके सामने ईश्वर, धर्म और मनुष्यत्व कुछ भी नहीं रह गया। क्या देशमें दया, धर्म और मानवता इतनी उठ गयी कि जिससे आज पैसोंके अभावसे हजारों-लाखों कन्याओंको क्वारी रहना पड़ रहा है, माता-पिताके दु:खको देखकर सयानी कन्याएँ आत्मघात कर लेती हैं और कहीं-कहीं तो माता-पिता भी मर जाते हैं। बेचारे जीवनभर ऋणभार भोगते और अत्यन्त अभावका जीवन बिताते हैं सो तो प्रत्यक्ष ही है। मैं ईश्वर और मानवताके नामपर देशके लोगोंसे, लड़कोंसे और उनके अभिभावकोंसे अपील करता हूँ कि वे दहेज न लेनेकी प्रतिज्ञा करें और अपनेको तथा समाजको इस बढ़ते हुए पाप और दु:खसे बचावें। बिना दहेजके विवाह करनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले लड़के अपने नाम, जाति तथा पता लिखें।

जर्मन विद्वान्‌का हिंदी और भारतीय संस्कृतिसे प्रेम

भारत अपनी पवित्र आदर्श संस्कृति, पवित्र आचरण, उच्च आध्यात्मिक ज्ञान, विविध ज्ञानके भण्डार सत्साहित्य, अनन्त विचित्र कला-कौशल, प्राकृतिक शोभा आदिके कारण जगत्‌के सभी लोगोंके लिये आकर्षणकी वस्तु रहा है। देवता भी भारतके लिये ललचाते रहते हैं।

दुःख है, आज वह भारत नहीं रहा। भारतकी संस्कृति वही है, तत्त्वज्ञान वही है, साहित्य वही है, परंतु उस महान् संस्कृति, तत्त्वज्ञानके जानने-माननेवाले आदर्श पुरुष बहुत कम रह गये। इसीसे विश्वगुरु भारतवर्ष आज परमुखापेक्षी और परानुकरणपरायण होकर अपने स्वरूपको भूल रहा है। इसीसे अमेरिका और यूरोपसे आनेवाले ज्ञानपिपासुओं और आचरण-शिक्षार्थियोंको भारत आज अपने तत्त्वज्ञान और आदर्श आचरणसे संतुष्ट नहीं कर सकता और उनमेंसे अधिकांशको भग्नमनोरथ होकर निराश लौटना पड़ता है, वरं कुछ तो हमारे अशिष्ट और अनुचित व्यवहारके कारण बड़ा कटु अनुभव लेकर लौटते हैं। यह हमारे लिये बहुत विचारणीय विषय है।

इतना होनेपर भी विदेशी महानुभाव आज भी भारतीय संस्कृति और भारतीय धर्मग्रन्थोंके प्रति कितने आकर्षित हैं, इसका अनुमान निम्न प्रकाशित एक जर्मन सज्जनके हिंदीमें लिखे हुए पत्रसे लग सकता है, जो कुछ ही दिनों पूर्व गीताप्रेसमें आया है। कितने सुन्दर अक्षर और कैसी अच्छी भाषा है; और भारतीय शैलीका कितना अनुसरण है। अपने हस्ताक्षरमें भी के. जी. न लिखकर क. ग. लिखते हैं।

लिखनेकी एक-दो गलतियोंके सिवा और कोई भूल नहीं है। कहाँ तो विदेशी सज्जन सुन्दर हिंदीमें पत्र लिखते और धर्म-ग्रन्थ पढ़ना चाहते हैं और कहाँ हम अपने ही देशमें अंग्रेजीमें पत्र-व्यवहार करते और अपने ही धर्म-ग्रन्थोंमें अरुचि रखते हैं। हमें इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

पत्रका छाया-चित्र

म० १२.२.५५।

आदरणीय गोयंका जी,

आपके प्रेस द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ - श्रीमद्भगवद्गीता प्राप्त हुआ - प्रति दिन मैं इसे पढ़ता हूं।

पिछले ३ वर्षों से मैं हिन्दी का अभ्यास कर रहा हूं। इसके अतिरिक्त मेरी भारतीय संस्कृति में बहुत रुचि है। मेरा विचार है कि मैं एक बार भारतीय धार्मिक ग्रन्थ पढूं। यदि संभव हो तो कृपया आप अपने यहां के प्रकाशित कुछ ग्रन्थ निम्न लिखित पते पर भेजें।

Karl - G. Gesch
Gambrinus - Str. 5
Mannheim - Sandhofen
Germany

मेरी रुचि विशेषकर रामायण, महाभारत और पुराणों में है। यदि संस्कृत - ग्रन्थ हिन्दी टीका सहित हों तो बहुत सुन्दर रहेगा।

यदि मेरे योग्य कोई सेवा हो तो लिखें।

भवदीय

क. ग. गेश

समझने-सीखनेकी चीज

बड़ोंका अपमान करना, उनका वध करना और अपने मुँह अपनी बड़ाई करना आत्महत्या करना है।

महाभारत युद्धकी घटना है। अर्जुन संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहे थे। इस अवसरपर महावीर कर्णने भार्गवास्त्रके द्वारा पाण्डवसेनाको अत्यन्त व्याकुल कर दिया। धर्मराज युधिष्ठिरका कवच, रथकी ध्वजा, धनुष, बाण, शक्ति और घोड़े नष्ट कर डाले। अन्तमें कर्णके बाणोंसे घायल होकर वे छावनीपर चले गये। उनके शरीरमें बड़ी पीड़ा हो रही थी।

यह समाचार पाकर भगवान् श्रीकृष्णके साथ अर्जुन महाराज युधिष्ठिरको देखने छावनीपर आये और धर्मराजको सकुशल देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। धर्मराजने समझा—अर्जुन कर्णका वध करके आये हैं, अतएव वे अर्जुनके बल-पौरुषकी सराहना करने लगे। इसपर अर्जुनने कहा कि 'मैंने जब सुना कि क्रूर कर्णने आपको बहुत घायल कर दिया है, तब मैं एक बार आपके दर्शन करनेको शीघ्रतासे यहाँ चला आया। अब जाकर मैं सेनासहित कर्णका संहार करूँगा। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।'

युधिष्ठिर कर्णके बाणोंके आघातसे बहुत कष्ट पा रहे थे। अर्जुनके मुखसे कर्णके जीवित होनेका समाचार सुनकर उनको बड़ा क्षोभ हुआ और वे अर्जुनको बहुत कुछ बुरा-भला सुनाकर अन्तमें कह गये कि 'यदि तुम आज युद्धमें कर्णका सामना करनेकी शक्ति नहीं रखते तो जो कोई तुमसे अस्त्रबलमें बड़ा हो, उसे अपना गाण्डीव धनुष दे दो। धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीवको, धिक्कार है तुम्हारी

भुजाओंके पराक्रमको और धिक्कार है तुम्हारे असंख्य बाणोंको तथा अग्निदेवके दिये हुए रथ और ध्वजाको।'

इतना सुनते ही क्रोधमें भरकर अर्जुनने तुरंत म्यानसे तलवार निकाल ली। सबके हृदयकी जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके मनकी बात ताड़ ली और वे बोले—'अर्जुन! क्या करने जा रहे हो? यहाँ कौन तुम्हारा शत्रु है, जिसका वध करना चाहते हो? कहीं सनक तो नहीं गये? बताओ तुम क्या करना चाहते हो?'

श्रीकृष्णके यों पूछनेपर क्रोधावेशमें ही अर्जुनने कहा—'गोविन्द! मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई मुझसे यह कह देगा कि तुम अपना गाण्डीव दूसरेको दे डालो, मैं उसका सिर काट लूँगा। महाराजने आपके सामने ही मुझसे ऐसा कहा है। अतः इनका वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये ही मैंने तलवार उठायी है। आप भूत-भविष्यको जानते हैं। आप जो आज्ञा देंगे मैं वही करूँगा।'

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको धिक्कार देते हुए कहा कि 'तुम धर्मके रहस्यको नहीं जानते। तभी तो तुमने नासमझ बच्चेकी तरह पहले प्रतिज्ञा कर ली थी और आज प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके बहाने मूर्खतावश धर्मके नामपर अधर्मयुक्त कार्य करनेको तैयार हो गये हो! बताओ तो तुम धर्मके दुर्बोध और सूक्ष्म स्वरूपका भलीभाँति विचार किये बिना ही अपने धर्मात्मा बड़े भाईका खून करनेके लिये कैसे दौड़ पड़े? अज्ञानवश अपनेको धर्मका जाननेवाला मानकर जो तुम धर्मकी रक्षा करने चले हो, उसमें तो हिंसाका पाप भरा है, यह बात तुम्हारे-जैसे धार्मिकके ध्यानमें नहीं आयी?'

इसके बाद भगवान्ने बलाक और कौशिकमुनिकी कथा सुनाकर अर्जुनको सत्यका रहस्य समझाते हुए यह उपदेश दिया कि 'जिसमें

हिंसा न हो, वही सत्य है' और अन्तमें पूछा कि 'बताओ, क्या अब भी तुम युधिष्ठिरको मारना धर्म समझते हो?'

भगवान् श्रीकृष्णका भाषण सुनकर अर्जुनका क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने नम्रतासे कहा—'श्रीकृष्ण! आपने वही बात बतायी है, जिसके आचरणसे हमारा कल्याण हो। आप हमलोगोंके माता-पिताके तुल्य हैं। आप ही हमारी परम गति हैं। तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसे आप न जानते हों। आप ही परम धर्मको यथार्थ तथा पूर्णरूपसे जानते हैं। अब मैं महाराज युधिष्ठिरको मारनेयोग्य नहीं समझता। पर मेरी प्रतिज्ञाका क्या होगा? आप अनुग्रह करके कोई ऐसी बात बतलाइये जिससे मेरी प्रतिज्ञाका भी पालन हो जाय और महाराजका भी बाल बाँका न हो।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि 'धर्मका पालन आगे-पीछेकी सारी बातें सोचकर ही करना चाहिये। अर्जुन! तुम्हें यहाँ अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना हो, तो जिस उपायसे धर्मराज जीवित रहते ही मरेके समान हो जायँ, तुम्हें वही करना चाहिये। वह मैं तुम्हें बताता हूँ। युधिष्ठिर तुम्हारे गुरुजन हैं, तुमने सदा उनका सम्मान किया है। आज तुम उनका तनिक-सा अपमान कर दो। गुरुजनको 'आप' न कहकर 'तू' कह देना उनका वध करनेके समान ही माना जाता है। श्रुतिने भी कहा है कि बड़ेको 'तू' कह देना उसे बिना मारे ही मार डालना है। अतएव धर्मराजके लिये तुम अपने मुखसे 'तू' शब्दका प्रयोग करो। बस, इसीमें उनका मरण हो जायगा। इसके बाद तुम उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे अपनी अनुचित बातके लिये क्षमा माँग लेना। इस प्रकार तुम मिथ्या भाषण और भ्रातृवधके पापसे बच जाओगे।'

भगवान् श्रीकृष्णकी शुभ सम्मति सुनकर अर्जुनने उनकी

बड़ी प्रशंसा की और धर्मराजके प्रति कुछ ऐसे कटु शब्दोंका प्रयोग किया जैसा पहले कभी नहीं किया था।

अर्जुन बड़े धर्मभीरु थे। युधिष्ठिरकी निन्दा कर तो गये पर यह जानकर कि मुझसे बहुत बड़ा पाप बन गया, मैंने धर्मराज-सदृश पूजनीय ज्येष्ठ भ्राताका अपमान किया, उन्हें बड़ा खेद हुआ और उन्होंने बार-बार लम्बी श्वास खींचते हुए फिर म्यानसे तलवार निकाल ली। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! यह फिर क्यों तुमने तलवार उठा ली। अब क्या करना चाहते हो?' अर्जुनने बहुत दुःखी होकर कहा—'भगवन्! मैंने हठवश धर्मराजका अपमान करके घोर पाप कर डाला है। इस प्रकारके पापी शरीरको मैं नहीं रखना चाहता। अब इसको नष्ट करनेके लिये ही मैंने तलवार उठायी है।' भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'अर्जुन! एक पापसे बचे तो अब धर्मके नामपर दूसरे पापके लिये प्रस्तुत हो गये। भाईका वध करनेसे जिस नरककी प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नरक आत्महत्या करनेपर मिलता है। मैं तुम्हें आत्महत्याका एक और साधन बताता हूँ। वह है—अपने मुँहसे अपने गुणोंका बखान करना। जो अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करता है, वह आत्महत्या करता है।' इस रहस्यको समझकर अर्जुनने अपनी बड़ाई की और फिर धर्मराजसे क्षमा माँगी। इसपर धर्मराज क्षुब्ध होकर वन जानेको तैयार हो गये। तब श्रीकृष्णने अर्जुनकी प्रतिज्ञाका रहस्य बतलाया और समझाकर युधिष्ठिरको प्रसन्न किया।

रेशमी कपड़ा अपवित्र क्यों है?

'कल्याण' के मईके अंकमें 'रेशमी कपड़ा न पहनने' के सम्बन्धमें लिखा गया था। इसपर कुछ पत्र आये हैं, जिनमें 'रेशमी कपड़ा शास्त्रसम्मत है, फिर उसे क्यों नहीं पहनना चाहिये'—पूछा है। उत्तरमें हमें यह बताया गया है कि 'पूर्वकालमें रेशमी कपड़ा सर्वथा अहिंसापूर्ण होता था, अतः वह पवित्र माना गया था। रेशमके कीड़े होते हैं, उस कालमें वे रेशम बनाकर कोएसे बाहर निकल जाते थे, तब उन कीड़ोंसे रहित कोएको उबालकर सूत निकाला जाता था— उसमें कीड़ा मरता नहीं था, पर वह सूत मोटा होता था तथा बहुत मजबूत एवं लम्बा नहीं होता था। अब भी इस तरह कीड़ेके निकलनेके बाद कहीं-कहीं कोए उबालकर रेशम निकाला जाता है, वह पवित्र है—उसे पहननेमें कोई आपत्ति नहीं है, जो लोग कीड़े निकल जानेके बाद अपने सामने कोए उबाले हुए रेशमके कपड़े पहनते हैं, वे पहनें। पर आजकल अधिकांशमें रेशमका सूत महीन हो, लम्बा हो तथा मजबूत हो—इसलिये कीड़े रहते ही कोए उबाले जाते हैं—जिसमें वे कीड़े भी उबलकर बुरी तरह मर जाते हैं—इसलिये आजकलका यह रेशम अपवित्र तथा त्याज्य है। यह पता लगाना कठिन होता है कि कौन-सा रेशम पहले कोए उबालकर निकाला हुआ है और कौन-सा पीछे। अतएव प्राचीन कालमें रेशम हिंसारहित पवित्र होनेपर भी वर्तमानमें अधिकांशमें हिंसायुक्त होनेके कारण अपवित्र है, अतः त्याज्य है।'

दो मित्रोंका आदर्श प्रेम

एक देशमें दो आदमी दुर्भाग्यसे गुलाम बन गये थे। एकका नाम एन्टोनिओ था और दूसरेका नाम रोजर। दोनों एक ही जगह काम करते, खाते-पीते तथा उठते-बैठते थे। धीरे-धीरे उनमें परस्पर घना प्रेम हो गया। छुट्टीके समय दुःख-सुखकी बातें करनेसे उनको गुलामीका असह्य दुःख कुछ कम जान पड़ता था।

वे दोनों समुद्रके किनारे एक पर्वतके ऊपर रास्ता खोदनेका काम प्रतिदिन करते थे। एक दिन एन्टोनिओने एकदम काम छोड़ दिया और समुद्रकी ओर नजर करके एक लम्बी साँस छोड़ी। वह अपने मित्रसे कहने लगा—'समुद्रके उस पार मेरी बहुत-सी प्यारी वस्तुएँ हैं। हर एक क्षण मुझे ऐसा लगता है कि मानो मेरी स्त्री और लड़के समुद्रके किनारे आकर एक नजरसे इस ओर देख रहे हैं और यह निश्चय करके कि मैं मर गया हूँ, रो रहे हैं। मेरी इच्छा होती है कि मैं तैरकर उनके पास पहुँच जाऊँ।' एन्टोनिओ जब भी उस जगह काम करने जाता, तभी समुद्रकी ओर दृष्टि डालते ही उसके मनमें ये विचार उत्पन्न होते थे। बादमें एक दिन एक जहाजको जाते देखकर उसने रोजरसे कहा—'मित्र! इतने दिनों बाद अब हमारे दुःखोंका अन्त आ गया है। देखो, वह एक जहाज लंगर डालकर खड़ा है। यहाँसे दो-तीन कोससे अधिक दूरीपर नहीं है। हम समुद्रमें कूद पड़ें तो तैरते-तैरते उस जहाजतक पहुँच सकते हैं। यदि नहीं पहुँच सकेंगे और मर जायँगे तो इस दासत्वकी अपेक्षा वह मौत भी सौगुनी अच्छी होगी।'

यह सुनकर रोजरने कहा—'तुम इस तरह अपनेको बचा सको तो इससे मैं बड़ा खुश होऊँगा। तुम देशमें पहुँच जाओगे तो मुझे भी अधिक दिन दुःख नहीं भोगना पड़ेगा। यदि तुम सही सलामत

इस दुःखसे छूटकर घर पहुँच जाओ तो मेरे घर जाकर मेरे माँ-बापकी खोज करना। बुढ़ापेके कारण तथा मेरे शोकसे शायद वे मर गये हों। पर देखना, यदि वे जीते हों तो उनसे कहना कि....इतना कहते-कहते एन्टोनिओने उसे रोक दिया और वह बोला—'तुम ऐसा क्यों सोच रहे हो कि मैं तुमको इस अवस्थामें अकेला छोड़कर जाऊँगा? ऐसा कभी नहीं हो सकता, तुम और मैं जुदा नहीं। या तो हम दोनों छूटेंगे या दोनों ही मरेंगे।' एन्टोनिओकी बात सुनकर रोजर बोला—'तुम जो कहते हो, वह ठीक है; पर मैं तैरना नहीं जानता, इसलिये तुम्हारे साथ कैसे जा सकता हूँ?' एन्टोनिओने कहा—'इसके लिये न घबराओ। तुम मेरी कमर पकड़ लेना। मैं तैरनेमें कुशल हूँ, इसलिये बिना किसी हरकतके तुमको लेकर जहाजतक पहुँच जाऊँगा।' रोजरने कहा—'एन्टोनि! इसमें कोई आपत्ति नहीं, पर कदाचित् भयभीत होकर मैं तुम्हारी कमर छोड़ दूँ या खींचतान करके तुमको भी डुबा दूँ। इसलिये ऐसा करना जरूरी नहीं है। मेरे भाग्यमें जो होना होगा, वह होगा। तुम अपने बचावका उपाय करो और व्यर्थ समय न गँवाओ। आओ, हम अन्तिम भेंट कर लें।'

इतना कहकर रोजरने आँसूभरी आँखोंसे एन्टोनिओका आलिंगन किया। तब एन्टोनिओने कहा—'दोस्त! यह रोनेका समय नहीं, बार-बार ऐसा अवसर न प्राप्त होगा।'

एन्टोनिओने इतना कहकर अपने मित्रका उत्तर सुननेकी बाट न जोहते उसको ढकेलकर समुद्रमें गिरा दिया और अपने भी उसके पीछे कूद पड़ा। रोजरने समुद्रमें गिरते ही घबराकर जीवनकी आशा छोड़ दी, पर एन्टोनिओने उसको हिम्मत दिलाकर बहुत मेहनतसे अपनी कमर पकड़ा दी और वह तैरते हुए जहाजकी ओर जाने लगा।

उस जहाजके आदमियोंने इन दोनोंको पहाड़परसे कूदते हुए देखा था, पर इतनेमें ऐसा मालूम हुआ कि गुलामोंकी सँभाल

रखनेवाले आदमी उनको पकड़नेके लिये नौका लेकर आ रहे हैं। रोजर इससे घबराकर बोला—'मित्र एन्टोनि! तुम मुझे छोड़कर अकेले चले जाओ। वह नाववाला मुझे पकड़ने लगेगा, इतनेमें तुम बिना हरकत जहाजपर पहुँच जाओगे। इसलिये अब तुम मेरी आशा छोड़कर अपना ही बचाव करो। नहीं तो वे हम दोनोंको पकड़कर वापस ले जायँगे।'

इतना कहकर रोजरने एन्टोनिओकी कमर छोड़ दी। पर उत्तम प्रेमका प्रभाव देखिये! एन्टोनिओने उसको कमर छोड़कर पानीमें डूबते हुए देखा और तुरंत ही उसको पानीसे बाहर निकालनेके लिये डुबकी मारी। थोड़ी देरतक वे दोनों पानीके धरातलपर दीख न पड़े। इससे नौकावाले आदमी यह निश्चय न करके कि किधर जायँ? रुक गये। जहाजके आदमी डेकसे इस अद्‌भुत घटनाको देख रहे थे। उनमेंसे कुछ खलासी भी एक नावको समुद्रमें डालकर उनकी खोज करने लगे। उन्होंने थोड़ी देरतक चारों ओर बेकार प्रयत्न किया। फिर देखा कि एन्टोनिओ एक हाथसे रोजरको मजबूतीसे पकड़े हुए है और दूसरे हाथसे नौकाकी ओर जानेके लिये बहुत मेहनत कर रहा है। खलासियोंने यह देखकर दयासे गद्‌गद होकर अपनेमें जितना बल था उतने डाँड़ मारना शुरू किया। देखते-देखते वे वहाँ पहुँच गये और उन दोनोंको पकड़कर उन्होंने नावमें बैठा लिया।

उस समय एन्टोनिओ इतना थक गया था कि मिनटभर और देर लगती तो वे दोनों पानीमें डूब जाते। 'तुम मेरे मित्रको बचाओ'—कहते-कहते वह अचेत हो गया। रोजर भी तबतक अचेत था, परंतु उसने कुछ ही क्षणोंमें आँखें खोलीं और एन्टोनिओको अचेत अवस्थामें पड़ा देखकर वह बहुत ही व्याकुल हो गया। एन्टोनिओके अचेतन शरीरका आलिंगन करके वह आँसू बहाते हुए कहने लगा—'मित्र! मैंने ही तुम्हारा वध किया है। तुमने मेरी गुलामी छुड़ाने और मेरा

प्राण बचानेके लिये इतनी मेहनत की, पर मेरी ओरसे उसका यही बदला मिला। मैं बहुत ही नीच हूँ। नहीं तो, तुम्हें मरा देखकर मैं क्यों जी रहा हूँ? तुमको खोकर अब मेरे जीनेसे क्या लाभ?'

इस प्रकार शोकातुर होकर वह एकदम खड़ा हो गया और यदि खलासी उसे बलपूर्वक रोक न लेते तो वह समुद्रमें कूद पड़ा होता। फिर वह बहुत ही विलाप और पश्चात्ताप करके कहने लगा—'क्यों तुम लोग मुझे रोकते हो? मेरे ही कारण इसके प्राण गये हैं।' इतना कहकर वह एन्टोनिओके शरीरके ऊपर पड़कर कहने लगा—'एन्टोनि! मैं जरूर तुम्हारा साथी बनूँगा। प्यारे खलासियो! तुम्हें परमेश्वरकी शपथ है। तुम अब मुझको न रोको। मुझे अपने मित्रका साथी बनने दो।' पर इतनेमें ही एन्टोनिओने एक लम्बी साँस ली। रोजर उसे देखकर आनन्दसे अधीर हो उठा और उच्च स्वरसे बोला—'मेरा मित्र जीवित है। मेरा मित्र जीवित है। जगदीश्वरकी कृपासे अबतक इसके प्राण नहीं गये हैं।' खलासी उसको होशमें लानेके लिये बहुत प्रयत्न करने लगे। थोड़ी देरके बाद एन्टोनिओने आँखें खोलकर अपने मित्रकी ओर दृष्टि डालते हुए कहा—'रोजर! तुम्हारी प्राणरक्षा हो गयी—इसके लिये जगदीश्वरको धन्यवाद दो।' उसके अमृत-जैसे वाक्य सुनकर रोजर इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

थोड़ी देरमें वह नाव जहाजपर पहुँच गयी। जहाजके सभी आदमी खलासियोंके मुँहसे सारी बातें सुनकर उनके ऊपर बहुत स्नेह दिखलाने लगे। वह जहाज माल्टाकी ओर जा रहा था। वहाँ पहुँचनेपर दोनों मित्रोंको किनारे उतार दिया गया और वहाँसे वे अपने-अपने घर गये और सुखसे रहने लगे।

गुरुजीका उपदेश

आज अष्टमीका दिन है, पढ़ाई बंद है; परंतु गुरुजीका यह नियम था कि वे अष्टमीकी छुट्टीके दिन सब लड़कोंको एक घंटे अपने घर बुलाकर कुछ उपदेश सुनाया करते थे। गुरुजी बड़े स्नेहसे उपदेश करते थे और उपदेशके बाद सब बच्चोंको ठाकुरजीका प्रसाद बाँटा करते थे। इससे बच्चे खुशी-खुशी छुट्टीके दिन भी गुरुजीके घर आते थे। आज भी सब बच्चे आये और बारी-बारीसे गुरुजीके चरणोंमें माथा टेककर उनका आशीर्वाद पाकर अपनी-अपनी जगह बैठ गये। गुरुजीने भगवान्‌की स्तुति गायी। बच्चे भी उनके पीछे-पीछे गाते रहे।—

दीनन दुख हरन देव संतन सुखकारी।
अजामील गीध ब्याध, इनमें कहो कौन साध,
पंछीहू पद पढ़ात, गनिका-सी तारी॥ दीनन०॥
ध्रुवके सिर छत्र देत, प्रह्लादको उबार लेत।
सीता हेतु बाँध्यो सेत, लंकपुरी जारी॥ दीनन०॥
तंदुल देत रीझ जात, साग-पात सों अघात।
गिनत नाहिं जूँठे फल, खट्टे मीठे खारी॥ दीनन०॥
गज कों जब ग्राह ग्रस्यो, दुःसासन चीर खस्यो।
सभा बीच कृष्ण कृष्ण, द्रौपदी पुकारी॥ दीनन०॥
इतने में हरि आइ गए, बसनन आरूढ भए।
सूर कूर द्वारे ठाढ़ो, आँधरो भिखारी॥ दीनन०॥

फिर गुरुजी उपदेश करने लगे। उन्होंने कहा—'बच्चो! भगवान्‌ने तुम्हें तीन चीजें दी हैं कि यदि तुम इनको साफ और पवित्र रख सको तो तुम्हारा बहुत बड़ा काम और नाम हो जाय।

बुद्ध, शंकराचार्य आदि बड़े-बड़े महापुरुषोंको आजतक लोग इसीलिये पूजते हैं कि उन्होंने इन तीनों चीजोंको सदा साफ और पवित्र रखा था। तुम भी वैसे ही महापुरुष बन सकते हो अगर तीनोंको साफ और पवित्र रखो। ये तीन चीजें हैं—शरीर, वचन और मन। शरीरकी सफाई और पवित्रताके लिये इन बातोंपर ध्यान रखो।

'शरीरपर गंदगी मत रहने दो, रोज नहाओ। कपड़ोंपर गंदगी न लगने दो, कपड़े सदा साफ रखो, अपने हाथसे उन्हें धोनेकी आदत डालो। कुछ भी खा-पीकर पहननेके कपड़ेसे कभी हाथ-मुँह मत पोंछो। कहीं बैठो तो जगह झाड़कर बैठो। सादे और साफ कपड़े पहनो। रोज समयपर शौच जाओ। खाने-पीनेमें जीभके स्वादके वश मत होओ। भूखसे ज्यादा कभी न खाओ। बहुत मीठी, बहुत खट्टी और बहुत चटपटी चीजें मत खाओ। दिनमें तीन बारसे ज्यादा मत खाओ। दूसरेकी चीज कभी चुराओ मत। किसीको मारो मत। घरमें माता, पिता, ताऊ, चाचा, बड़े भाई आदि जो तुमसे बड़े हों, सबको रोज सबेरे प्रणाम करो। भगवान्‌की मूर्तिको रोज प्रणाम करो। गरीबों और दुःखियोंकी सेवा करो; बड़ोंकी सेवा करो। किसी भी जीवको तकलीफ मत दो। ऐंठकर मत बैठो। अकड़कर न चलो। अच्छे खेल खेलो।

'चिल्लाकर मत बोलो, किसीका मजाक न उड़ाओ, किसीको गाली मत दो, किसीकी चुगली मत करो, निन्दा मत करो, झूठ मत बोलो, कड़वे मत बोलो। जो बोलो, सच बोलो, मीठे बोलो। दूसरेका भला हो ऐसी बात कहो। भूलकर भी ऐसी बात न कहो जिससे किसीका जी दुखे या किसीका बुरा हो। नियमसे रोज भगवान्‌के नामका कीर्तन करो, उनकी स्तुति-प्रार्थन गाओ और अच्छे-अच्छे भजन गाओ। घमंडके वचन मत बोलो।

नरमीसे बात करो। माता-पिता, गुरु वगैरहके सामने बहुत विनयसे बात करो। सभीके साथ प्रेमसे हँसकर बोलो। रूखी-तीखी वाणी मत बोलो। गरीबोंके साथ विशेष स्नेहसे बात करो। वाणीसे सभीका सम्मान करो।

'मनसे सबका भला चाहो, दूसरोंका भला होता देखकर सुखी होओ। किसीको दुःखमें देखकर दया करो। किसीसे डाह मत करो। सदा प्रसन्न रहो। फालतू बातें मत सोचा करो। मनमें कोई बुरी बात आवे तो उसे रोको। मनसे भगवान्‌को याद करो। भक्तोंकी तथा महात्माओंकी बातें याद करो। किसीसे वैर मत रखो। कभी ऐसा मत खयाल करो कि धनके कारणसे या और किसी कारणसे मैं बड़ा हूँ, और लोग छोटे हैं। मनमें किसीको छोटा मत मानो। भगवान् सबमें हैं, इसलिये सभीका मन-ही मन सम्मान करो। रोज सबेरे मन-ही-मन भगवान्‌की स्तुति करो।'

सब बच्चे बड़े चावसे उपदेश सुन रहे थे। उपदेश समाप्त होनेपर गुरुजीने सबको प्रसाद बाँटा। सब लोग गुरुजीको प्रणाम करके प्रसन्न होकर अपने-अपने घरोंको लौटे।

माँ-बेटेकी बातचीत

'माँ! ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके करनेसे तुम्हारी ही तरह सब लोग मुझसे प्रेम करने लगेंगे?' माँने बड़े प्यारसे अपने पुत्रको दुलारते हुए कहा—'बेटा! तुम्हारी यह इच्छा बड़ी अच्छी है। मुझे तो तुम यों ही बड़े अच्छे लगते हो, परंतु इसमें मेरी ममता भी कारण हो सकती है। जब तुम्हारे अंदर अच्छे-अच्छे गुण आ जायँगे, तब तो सभी लोगोंकी दृष्टिमें तुम अच्छे हो जाओगे। सब लोग तुम्हारा सम्मान करेंगे और तुम्हारे मनमें भी बड़ी प्रसन्नता होगी। देखो, मेरे पड़ोसीका लड़का ध्रुव कितना अच्छा बालक है। उससे सब लोग खुश रहते हैं। उसकी बातका सब विश्वास करते हैं। वह कभी झूठ नहीं बोलता। उसके मुँहसे कभी किसीने कड़वी बात नहीं सुनी। जरूरत न होनेपर वह सच्ची बात भी नहीं कहता चुप रह जाता है। समय देखकर किसीकी भलाईकी बात तब कहता है जब उसकी समझमें वह बात ठीक-ठीक बैठ जाती है। इसीसे बड़े-बड़े लोग भी उसकी बात बड़े ध्यानसे सुनते हैं। यदि तुम भी बोलनेमें हमेशा थोड़ा बोलने, सच बोलने, मीठा बोलने तथा दूसरेकी भलाईकी बात कहनेका खयाल रखोगे तो सब लोग तुम्हें भी उसी तरह मानेंगे।

'बेटा! सच बोलनेका इतना ही लाभ नहीं है कि लोग उसकी बात मानें और उसका सम्मान करें। जो सत्य बोलनेका नियम ले लेते हैं, वे सच्ची बात जाननेकी चेष्टा भी करते हैं और सावधान रहते हैं कि कहीं मेरे मुँहसे झूठ न निकल जाय, कहीं मैं गलती न कर बैठूँ। इससे उनके मनमें सचाई जाननेकी इच्छा बढ़ती है और वे सत्यस्वरूप परमात्माको जान लेते हैं। सत्यकी खोज और सत्य वाणीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं और उसकी

मुँहमाँगी चीज दे देते हैं। यहाँतक सुना गया है कि जो बारह वर्षतक सच ही बोलता है, कभी अनजानमें भी झूठ नहीं बोलता, उसकी वाणी सिद्ध हो जाती है और वह यदि कभी किसी वस्तुके बारेमें असावधानीसे भी कुछ कह देता है तो वह वैसी ही हो जाती है।'

'माँ! तुम तो कहती हो कि सच बोलना चाहिये; परंतु मेरे कई साथी तो झूठ बोलते हैं, छल करते हैं और लोग उनका ही आदर करते हैं। तब मैं कैसे मानूँ कि सच बोलना अच्छा है?'

'बेटा! उन लोगोंकी चालाकी तभीतक चलती है, जबतक उनकी पोल नहीं खुलती। जब सब लोग जान जायँगे कि ये झूठ बोलते हैं, तब उनकी सच्ची बातका भी विश्वास नहीं करेंगे। जो लोग झूठ बोलते हैं, वे भी झूठोंका विश्वास नहीं करते। उन्हें किसी बातका पता लगाना होता है, तब वे झूठोंसे नहीं पूछते, सच्चे लोगोंसे ही पूछते हैं। इससे सिद्ध होता है कि झूठे लोग भी सचाईका महत्त्व स्वीकार करते हैं। झूठ भी सचकी आड़में ही चलता है। यदि सत्यका परदा न हो तो झूठ चल ही नहीं सकता; परंतु सत्य बिना झूठके परदेके भी चलता है, इससे भी सत्यका ही गौरव सिद्ध होता है। इसलिये बेटा! तुम्हें हमेशा सच ही बोलना चाहिये।'

'माँ सच बोलनेपर कई बार डाँट-फटकार भी सहनी पड़ती है। यदि मैं पिताजीसे कह दूँ कि मेरे पैसे अमुक काममें खर्च हुए हैं तो वे नाराज होते हैं और कभी-कभी दण्ड भी देते हैं; परंतु यदि वही बात छिपा लेता हूँ, तब वे कुछ नहीं बोलते, फिर मैं उनसे सच-सच कैसे कहूँ?'

'बेटा! तुम्हारे पिता बड़े समझदार हैं, उन्होंने दुनिया देखी है, उनका बड़ा अनुभव है; वे जिस कामसे रोकते हैं, वह तुम्हें

कभी नहीं करना चाहिये। वे जब चाहते हैं कि तुम उन कामोंमें फिजूल पैसे न खर्च करो और तुम कर देते हो, तब उन्हें नाराज होना ही चाहिये। वे तुम्हारे भलेके लिये ही तुमपर नाराज होते हैं। तुम वैसा काम ही न करो, जिससे वे नाराज हों। झूठ बोलकर छिपाना तो बड़ा पाप है, इससे तुम्हारी आदत बिगड़ जायगी और तुम्हारे अंदर बहुत-सी बुराइयाँ आ जायँगी। जब उन्हें मालूम होगा कि तुमने झूठ बोलकर उन्हें धोखा दिया है, तब तो उनकी नाराजगी और भी बढ़ जायगी। एक झूठको सच बनानेके लिये सौ-सौ बार झूठ बोलना पड़ता है। झूठ बोलनेसे ही मनमें तरह-तरहके पाप आ बसते हैं। यदि तुम अपनी बातें सच-सच बतला दिया करोगे तो तुम्हारे सब पाप, तुम्हारी बुराइयाँ स्वयं ही छूट जायँगी।

'बेटा! तुम्हारे जो साथी झूठ बोलते हैं, उनसे अलग रहना ही अच्छा है; क्योंकि वे झूठके बलपर अपनी बहुत-सी बुराइयाँ छिपाये रखते हैं। उनके साथ रहने और हेल-मेल करनेसे वे दोष अपने अंदर भी आ जाते हैं और उसी तरह झूठ बोलकर दोष छिपानेकी आदत पड़ जाती है। तुम केवल वैसे लोगोंमें ही रहा करो, जो सच बोलते हों और जिनका चरित्र पवित्र हो। चरित्र ही सब कुछ है। जिसका आचरण ठीक है, उसकी बुद्धि बड़ी तेज होती है, वह किसीसे डरता नहीं, उसका चेहरा चमकता रहता है। शरीरके सुगठित, बलवान् और सुन्दर होनेके लिये, मनके निर्भय और ज्ञानसम्पन्न होनेके लिये चरित्रकी रक्षा परम आवश्यक है। चरित्रकी रक्षाके लिये सत्य सबसे बड़ा सहारा है।

'सत्यके साथ-साथ पहले कही हुई बातोंका भी ध्यान रखनेसे सबका प्यार और सबसे बढ़कर परमात्माका प्यार प्राप्त हो जाता है। उन बातोंको फिरसे याद कर लो।

१-सत्य ही बोला जाय।

२-कड़वी बात न कही जाय, मीठा बोला जाय।

३-भलाईकी ही बात कही जाय।

४-जहाँतक हो सके, थोड़ेमें ही अपनी बात पूरी कर दी जाय।

५-बिना मौके कोई बात न कही जाय।

आशा है तुम इन गुणोंको अपनाओगे। जब ये गुण तुम्हारे अंदर आ जायँगे, तब सब लोग तुम्हें अपना समझने लगेंगे। क्या तुम इनका अभ्यास करोगे?' माँने पूछा। 'हाँ माँ! मैं अवश्य करूँगा।' पुत्रने बड़े आदरसे कहा।

क्या मत करो और क्या करो

ऐसा कोई काम मत करो, जिससे दूसरे किसीका अपमान होता हो और ऐसा तो कभी विचार ही मत करो, जिससे दूसरोंके हितकी हानि होती हो। दूसरोंको मान दो, स्वयं मान मत चाहो। दूसरोंके अहितमें अपना हित कभी मत समझो और यथासाध्य सबका हित करो, उसीमें अपना हित समझो। ऐसा कुछ भी मत करो, जिससे अपना मिथ्या अहंकार बढ़ता हो और कर्तव्यकी विस्मृति होती हो। ऐसा कुछ भी मत करो, जिससे दूसरोंका न्याय्य अधिकार छिनता हो। दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करो और अपने कर्तव्यका पालन करो।

रहा है कि थोड़ी ही दूरपर इस मोटरसे दबकर एक गिलहरी मर गयी। मैं जबतक प्रायश्चित्त न कर लूँगा, मुझे शान्ति नहीं होगी।' मैं क्या कहता। उन्होंने गोरखपुर पहुँचनेके बाद शिवके षडक्षर 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका जप करके प्रायश्चित्त किया और गिलहरीकी सद्गतिके लिये भगवान् महेश्वरसे प्रार्थना की। जीवदया और ब्राह्मणके सदय हृदयका कैसा उदाहरण है।

(३) महामनाके एक पुत्र बड़े अर्थसंकटमें थे। उनको महामनाने तारमें लिखा—'तुम आर्त होकर विश्वाससे गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो, इससे तुम्हारा संकट दूर हो जायगा।' फिर एक पत्रमें उनको लिखा—'भगवान्पर विश्वास रखो, धैर्य मत छोड़ो और गजेन्द्रस्तुतिका आर्तभावसे विश्वासपूर्वक पाठ करो।* मैं एक बार नाकतक ऋणमें डूब गया था, गजेन्द्रस्तुतिके पाठसे मैं ऋणमुक्त हो गया था, तुम भी इसका आश्रय लो।' अपने कष्टमें पड़े पुत्रको बिना पूर्ण विश्वासके कौन पिता ऐसा लिख सकता है?

(४) बम्बईमें महामना मालवीयजी पधारे थे। श्रीरामेश्वरदासजी बिड़लाके सैंडहर्स्ट रोडके भवनमें ठहरे थे। रात्रिका समय था। बम्बईके एक प्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० रमापतिजी मिश्रसे उनकी बातचीत हो रही थी। श्रीमिश्रजीने कहा—'मालवीयजी! आप मुझे सौ गाली देकर देख लीजिये, मुझे क्रोध नहीं आयेगा।' इसपर हँसकर मालवीयजी बोले—'महाराज! आपके क्रोधकी परीक्षा तो सौ गालियोंके पश्चात् होगी, परंतु मेरा मुँह तो पहली ही गालीमें गंदा हो जायगा।' मालवीयजीके इस उत्तरको सुनकर मिश्रजी महाराज चकित दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए नतमस्तक हो गये।

---

* श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धका तीसरा अध्याय यह स्तुति है गीताप्रेससे अलग भी प्रकाशित हो चुकी है।

महामनाका अन्तिम लेख नोवाखालीमें होनेवाले हिंदुओंपर भयानक अत्याचारसे पीड़ित हृदयका आर्तनाद तथा सबके लिये महान् उपदेशप्रद एवं पथप्रदर्शक था। वह लेख 'कल्याण' के लिये ही लिखा गया था। मेरे सम्मान्य मित्र—महामनाके भक्त डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र उसको लिखवाकर लाये थे। उसे पढ़ना चाहिये।

महामनाकी शती-जयन्ती मनायी जा रही है। यह बहुत अच्छी बात है। उनकी असली जयन्ती तो उनके मार्गका अनुसरण करनेपर ही मनायी जा सकती है। उनके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाये हुए, देशभरमें फैले हुए हजारों विद्वान् तथा महामनाके उपकारोंके ऋणसे दबी हुई भारतकी जनता उनके मार्गका अनुसरण कर अपनी सच्ची श्रद्धाका परिचय दे—यह सबसे मेरी विनीत प्रार्थना है।

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)
050	पदरत्नाकर
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन
058	अमृत-कण
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
333	सुख-शान्तिका मार्ग
343	मधुर
056	मानव-जीवनका लक्ष्य
331	सुखी बननेके उपाय
334	व्यवहार और परमार्थ
514	दुःखमें भगवत्कृपा
386	सत्संग-सुधा
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल
347	तुलसीदल
339	सत्संगके बिखरे मोती
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति
350	साधकोंका सहारा
351	भगवच्चर्चा
352	पूर्ण समर्पण
353	लोक-परलोक-सुधार
354	आनन्दका स्वरूप
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
356	शान्ति कैसे मिले?
357	दुःख क्यों होते हैं ?
348	नैवेद्य
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
336	नारीशिक्षा
340	श्रीरामचिन्तन
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
345	भवरोगकी रामबाण दवा
346	सुखी बनो
341	प्रेमदर्शन
358	कल्याण-कुंज
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
361	मानव-कल्याणके साधन
362	दिव्य सुखकी सरिता
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
364	परमार्थकी मन्दाकिनी
366	मानव-धर्म
526	महाभाव-कल्लोलिनी
367	दैनिक कल्याण-सूत्र
369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष	381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
370	श्रीभगवन्नाम	379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
373	कल्याणकारी आचरण	382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
374	साधन-पथ—सचित्र	344	उपनिषदोंके चौदह रत्न
375	वर्तमान शिक्षा	371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	384	विवाहमें दहेज—
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय	809	दिव्य संदेश..........
378	आनन्दकी लहरें		
380	ब्रह्मचर्य		

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	1214	मानस-स्तुति-संग्रह
819	श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य	1344	सचित्र-आरती-संग्रह
207	रामस्तवराज—(सटीक)	1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	208	सीतारामभजन
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
231	रामरक्षास्तोत्रम्	576	विनय-पत्रिकाके पैंतीस पद
1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	225	गजेन्द्रमोक्ष
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	1505	भीष्मस्तवराज
054	भजन-संग्रह	699	गंगालहरी
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	1094	हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
142	चेतावनी-पद-संग्रह	228	शिवचालीसा
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	232	श्रीरामगीता
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	851	दुर्गाचालीसा
		236	साधकदैनन्दिनी

लगा ही रहता है, उस राज्यलक्ष्मीकी ओर ध्यान ही नहीं देता; वही पुरुष वास्तवमें भगवद्भक्त वैष्णवमें अग्रगण्य है, सबसे श्रेष्ठ है।'

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा-
नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः॥

(११। २। ५४)

'निखिल सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान्‌के चरणोंके अंगुलि-नखकी मणि-चन्द्रिकासे जिन शरणागत भक्तजनोंके हृदयका संताप एक बार दूर हो चुका है, उनके हृदयमें वह ताप फिर कैसे आ सकता है, जैसे चन्द्रोदय होनेपर सूर्यका ताप नहीं लग सकता।'

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा-
द्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥

(११। २। ५५)

'विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण पापराशिको नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते हैं; क्योंकि उसने प्रेमकी रस्सीसे उनके चरणकमलोंको बाँध रखा है, वास्तवमें ऐसा पुरुष ही भगवान्‌के भक्तोंमें प्रधान है।'

इस श्रेष्ठ वैष्णवताकी प्राप्तिके लिये नीचे लिखे साधन करने चाहिये—

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥

(११। ३। २३)

इंग्लैंडके एक प्रसिद्ध डॉक्टरने कुछ समय पूर्व लिखा था कि 'इंग्लैंडमें कैंसरके रोगी दिनोदिन बढ़ते जा रहे हैं। अकेले इंग्लैंडमें इस भयानक रोगसे तीन हजार मनुष्य प्रतिवर्ष मरते हैं, यह रोग मांसभक्षणसे होता है। यदि मांसाहार इसी तेजीसे बढ़ता रहा तो इस बातका भय है कि भविष्यकी संतानमें ढाई करोड़ मनुष्य इस रोगके शिकार होंगे।'

मांसाहारजनित प्राणिवध-पापसे आयु तो नष्ट होती ही है—

यस्माद् ग्रसति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते।
तस्माद् विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद् भूतिमात्मनः॥

(महाभारत, अनुशासन०)

'हिंसाजनित पाप हिंसकोंकी आयुको नष्ट कर देता है। अतएव अपना भला चाहनेवाले लोगोंको मांसका व्यवहार सर्वथा छोड़ देना चाहिये।'

'कैटिल प्रॉब्लम इन इण्डिया' नामक पुस्तकमें बताया गया है—

१-मांसभक्षण अनावश्यक, अस्वाभाविक तथा अहितकर है।

२-यह अन्नसे कम पुष्टिकर है।

३-निरामिष आहारकी अपेक्षा यह मनुष्यमें सहिष्णुता, शक्ति, स्फूर्ति तथा सामर्थ्य बहुत ही कम उत्पन्न करता है।

४-दाँतोंकी सफेदीपर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

५-यह आयुको घटानेवाला है।

६-यह आलस्य, भारीपन तथा प्रातःकाल शारीरिक श्रममें अरुचि उत्पन्न करता है।

७-यह सौमें निन्यानबे मनुष्योंका सफाया कर देता है।

८-यह क्षुद्र, 'अहम्' के प्रति प्रेमका विस्तार करके जगत्‌के प्रति हमारे विचारोंको संकीर्ण बना देता है।

९-यह राष्ट्रकी स्वार्थपरायणता, लोलुपता, अवनति, ह्रास तथा विनाशकी जड़ है।